शंकर और श्रीअरविंद के मायावाद का तुलनात्मक और आलोचनात्मक अध्ययन

SHANKAR AUR SRIAUROBINDO KE MAYAVAD KA TULANATMAK AUR ALOCHANATMAK ADHYAYAN

(डी० फिल० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबध)

पर्यवेक्षिका
डॉ० मृदुला आर० प्रकाश
रीडर एव अध्यक्ष दर्शनशास्त्र विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

शोधकर्ता
तुहिना पाण्डेय
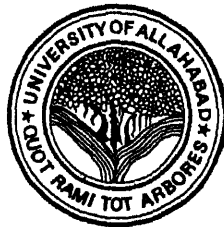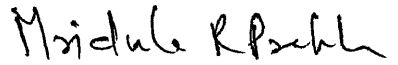
दर्शनशास्त्र विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
2003

पर्यवेक्षिका का प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोध प्रबध **शकर तथा श्रीअरविद के मायावाद का तुलनात्मक और आलोचनात्मक अध्ययन** (SHANKAR AUR SRIAUROBINDO KE MAYAVAD KA TULANATMAK AUR ALOCHANATMAK ADHYAYAN) विषय पर कु तुहिना पाण्डेय ने मेरे निर्देशन मे लिखा है। शोधकर्ता ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद द्वारा निर्धारित सभी नियमो एव शर्तो का परिपालन किया है।

यह शोध प्रबध इनके मौलिक चितन एव अध्ययन का परिणाम है। मै इसे डी फिल उपाधि हेतु परीक्षणार्थ प्रस्तुत करने के लिए अग्रसारित करती हूँ।

Mridula R Prakash

डॉ० मृदुला आर० प्रकाश

पर्यवेक्षिका

रीडर एव अध्यक्ष

दर्शनशास्त्र विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

अनुक्रम

प्राक्कथन

भारतीय चितन परपरा मे अद्वैत वेदात का महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रुति, स्मृति एव तथ्यो की तर्कपूर्ण प्रस्तुति के कारण इसका दार्शनिको और विचारको पर तो गहरा असर पड़ा ही, जनमानस भी इससे बहुत प्रभावित हुआ। समस्त श्रुतियो का अतिम लक्ष्य आत्म-ज्ञान देना एव पारमार्थिक सत् का बोध कराना है। कितु कही कही अतर्विरोधपूर्ण युक्तियो के कारण श्रुतियो द्वारा स्थापित तथ्यो पर सदेह प्रगट किया जाने लगा। अनिश्चय और सशय की इस स्थिति मे वेदो और उपनिषदो को तार्किक आधार पर सिद्ध करने और सशयात्मक सदर्भो का निराकरण करने की आवश्यकता थी। अपने समय के लब्धप्रतिष्ठ दार्शनिक और दृष्टिसपन्न विचारक शकराचार्य ने इस महान कार्य को पूरा किया। उन्होने अद्वैत वेदात की स्थापना की। इस मत के अनुसार ब्रह्म एकमात्र और पारमार्थिक सत् है। शकराचार्य ने ब्रह्म के अलावा जीव-जगत को परमार्थत माया एव मिथ्या बताकर इनके वास्तविक स्वरूप का बोध कराया।

माया अद्वैतवाद का केद्रीय तत्त्व है। कहा जाय कि 'मायावाद ही अद्वैत वेदात की पहचान है। इसके अभाव मे अद्वैतवाद तर्कत खण्डित हो जाता है। 'माया' शब्द का प्रयोग प्राय सभी दर्शनो मे मिलता है कितु 'मायावाद मूलत अद्वैत वेदात का सिद्धात है। मायावाद का दार्शनिक सिद्धात ही वास्तव मे माया' के अर्थ का प्रवृत्ति-निमित्त है। अद्वैत वेदात से भिन्न जितने भी दर्शन है वे 'माया' का प्रयोग इद्रजाल, भ्रम, असत्, स्वप्न, रहस्य मोह आदि अर्थो मे करते है। अद्वैत वेदात मे माया का प्रयोग मुख्यत तीन अर्थो मे हुआ है 1 तुच्छ, 2 अनिर्वचनीय 3 वास्तविक। पारमार्थिक दृष्टि से जगत असत् है, क्योकि एकमात्र ब्रह्म ही परमार्थत सत् है। व्यावहारिक दृष्टि से जगत सत् है और जगत का अस्तित्व भ्रम या स्वप्न के समान नही है। इसीकारण शाकर-वेदात मे तीन प्रकार के सत् की सत्ता स्वीकार की गयी है 1 प्रातिभासिक सत्, 2 व्यावहारिक सत्, 3 पारमार्थिक सत्।

यदि ब्रह्म सत् है तो जगत मिथ्या है', इस दृष्टि से परमार्थत मात्र ब्रह्म को ही सत् माना जा सकता है तथा ब्रह्मेतर समस्त वस्तुओ को मिथ्या माना जा सकता है। अद्वैत वेदातिक 'मिथ्या का अर्थ सही ढग से न समझ पाने के कारण इसकी बहुत आलोचना की गयी। वास्तव मे मिथ्यात्त्व एक पारिभाषिक शब्द बन गया है, जोकि असत् या असत्य का पर्याय नही है। मिथ्यात्त्व तो माया का पर्याय है। जगत असत् या भ्रम है इसका अर्थ है कि

1 ब्रह्म की अपेक्षा जगत असत् है।

2 ब्रह्म-ज्ञान होने पर जगत का ज्ञान निवृत्त हो जाता है।

3 जगत को तर्कत न असत् कहा जा सकता है और न सत्। वह सदसद् विलक्षण है।

4 जगत की सत्ता त्रैकालिक निषेध का प्रतियोगी है।

5 जगत की सत्ता स्वाश्रयनिष्ठ अत्यताभाव का प्रतियोगी है।

उपर्युक्त अर्थो के अलावा अद्वैत वेदात मे माया अथवा मिथ्यात्त्व', का कोई अन्य अर्थ नही है। यदि कोई अन्य अर्थ करता है तो केवल अपनी तर्क-भावना की सतुष्टि करता है या स्वय को दार्शनिक दिखाना चाहता है याकि जनमानस को भ्रमित करना चाहता है अथवा यह कहा जाय कि वह अर्थातर कल्पना दोष से ग्रस्त है।

अर्थातर कल्पना दोष से ग्रस्त होने के कारण ही शकराचार्य के अनुवर्ती दार्शनिको ने उनके अद्वैतवाद तथा मायावाद को ठीक से नही समझा और उनकी आलोचना भी की। शाकर-मायावाद की प्रतिक्रिया मे आगे चलकर रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद, निंबार्क का द्वैताद्वैतवाद, मध्व का द्वैतवाद तथा वल्लभ का शुद्धाद्वैतवाद जैसे सिद्धातो का उदय हुआ। वर्तमान मे भी ऐसी ही प्रतिक्रिया स्वामी विवेकानद, लोकमान्य तिलक, डॉ॰ राधाकृष्णन् के मतो मे दिखायी देती है। इनके मतो का सदर्भगत विवेचन प्रस्तुत शोध-ग्रथ मे किया गया है।

वर्तमान समय मे श्रीअरविंद द्वारा शाकर-मायावाद का खण्डन कई दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण माना गया है। देखा जाय तो शकर के मायावाद का श्रीअरविंद जैसे महान दार्शनिक और गभीर विचारक द्वारा आलोचना किया जाना बहुत सगत नही जान पड़ता है।

श्रीअरविद की प्रसिद्ध कृति द लाइफ डिवाइन की पृष्ठ सख्या 95 पर दृष्टि डाली जाय तो स्पष्ट होता है कि अद्वैत वेदातिक माया का अर्थ और श्रीअरविंद का अर्थ लगभग समान है। कालक्रम मे यह अर्थ-सदर्भ बदल गया और एक दूसरे प्रकार का अर्थ विकसित हो गया और वही प्रचलित भी हुआ। वास्तव मे अपने मूल अर्थ मे माया सच्चिदानद के अनुरूप ही है। उसे एक क्रियात्मक सर्जन-शक्ति के रूप मे अवधारित किया गया जो असीम को भी सीमित करने और अव्यक्त को भी व्यक्त करने मे सक्षम है। किंतु माया का यह मूल अर्थ धीरे-धीरे क्षीण होता गया और माया शब्द भ्रम या मिथ्या का पर्याय बन गया। यही माया का दूसरा प्रचलित अर्थ हो गया। श्रीअरविद इस दूसरे, सकुचित अर्थ को महत्त्व नही देते। वे माया के पहले और मूल अर्थ को ही स्वीकार करते है। किंतु इनके मायावादिक मतव्यो मे शाकर मत से भिन्नता और समानता दोनो दिखायी देती है।

अध्ययन काल से ही मेरे मन मे यह बात उठती रही है कि शकराचार्य तथा श्रीअरविद के मतो का, विशेष करके इनकी मायावाद' सबधी अवधारणाओ का, सम्यक् और विस्तृत आकलन होना चाहिए। इस आकलन से यह भी निर्धारित हो सकेगा कि इनमे अतर और समानता के बिंदु कहॉ है तथा किसका मत अधिक सगत और सही है। प्रस्तुत शोध प्रबध के पीछे मूल प्रेरणा यही रही है। शकराचार्य के 'मायावाद की समीक्षा करते हुए श्रीअरविद द्वारा मायावाद के सबध मे उठायी गयी आपत्तियो का भरसक युक्तिसगत परीक्षण इस शोध प्रबध मे है, साथ ही दोनो के 'मायावाद' का तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे शकर के मायावाद का पुनर्आकलन और श्रीअरविद से उसकी तुलना इसे एक नया आयाम दे सकता है। एक ओर शकराचार्य ब्रह्म को पारमार्थिक सत् तथा जीव और जगत को ब्रह्ममय मानते है, वही दूसरी ओर श्रीअरविद जीव और जगत की वास्तविकता को महत्त्व देते है। श्रीअरविद ने ब्रह्म की पारमार्थिक सत्यता को स्वीकार करने के साथ-साथ जीव और जगत को भी सत् माना है। किंतु ध्यान देने की बात यह है कि शकराचार्य ने जीव और जगत का निराकरण ब्रह्म से भिन्न सत्ता के रूप मे ही किया है। इसका यह अर्थ कथमपि नही है कि जीव और जगत आकाश-कुसुम के समान असत् है। सभवत श्रीअरविद से शाकर मायावाद के अतर्भूत मतव्य को समझने मे चूक हो गयी है। वैसे, यह पहले कहा जा चुका है कि शकराचार्य और श्रीअरविद के दर्शन मे बहुत-सी बाते

समान है। इन दोनो दार्शनिको मे प्रमुख अतर यह माना जा सकता है कि शकर ब्रह्म से जीव और जगत की ओर चलते है। ब्रह्म के अलावा अन्य कोई सत्ता उन्हे मान्य नही है। इसके विपरीत श्रीअरविद अपने दर्शन मे जीव और जगत से ब्रह्म की ओर अग्रसर होते है। वे शकराचार्य से लगभग वैचारिक समानता रखते हुए ब्रह्म की सत्यता को स्वीकार करते है और व्यावहारिक जगत को ब्रह्म की अभिव्यक्ति के रूप मे, उसी के भीतर समाहित कर लेते है।

शकराचार्य उद्भट दार्शनिक तो थे ही, अपने समय के समाज को व्यवस्थित आधार देनेवाले महान मानव भी थे। उनकी विचारधारा के निर्माण मे उस समय के बौद्ध धर्म के पतनशील स्वरूप, समाज मे वेद और उपनिषद् से बढ़ती हुई दूरियो तथा भौतिकवाद का प्रमुख योगदान रहा है। उन्होने समाज मे सतुलन बनाने के लिए भौतिकवादी बाह्य जगत का निषेध किया। जगत के मिथ्या स्वरूप से दूर रहने की बात कही। श्रीअरविद ने भी इसे स्वीकार करते हुए कहा कि ब्रह्म से अलग करके जगत के मिथ्या होने की बात तो दूर है, जगत का नाम भी सभव नही है। शकर एव श्रीअरविद दोनो के मत अपने-अपने ढग से मौलिक है। रेखाकित करने की बात यह है कि श्रीअरविद के मत का मूल आधार शाकर-मायावाद ही है।

शकराचार्य के अद्वैतवाद के बारे मे फैली भ्रातियो को दूर करके उनके दर्शन को श्रीअरविद ने अपने दर्शन मे नये ढग से स्थापित किया जोकि परोक्ष रूप से शकर के दर्शन की पुनर्व्याख्या कही जा सकती है। अत निष्कर्ष यही निकलता है कि श्रीअरविद ने शाकर-मायावाद की आलोचना द्वारा एक तरह से उनके मत का मण्डन और पोषण ही किया है। इस शोध प्रबध के माध्यम से मैने शाकर-मायावाद को वैचारिक परिप्रेक्ष्य मे मूल्याकित किया है इसके साथ ही श्रीअरविद की वैचारिक पृष्ठभूमि मे मायावाद' का तुलनात्मक अध्ययन भी किया है। मेरा लक्ष्य मायावाद के महत्त्व को समकालिक भारतीय सास्कृतिक परिवेश के आलोक मे प्रस्तुत करना है। इसी मे मेरे अध्ययन की सफलता निहित है।

शकराचार्य का मायावाद दर्शन और विचार के क्षेत्र मे एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। यद्यपि शकर के आलोचक 'मायावाद' को अवैदिक मानते हुए बौद्ध महायान से इसका स्रोत सिद्ध करते है। इस सदर्भ मे विधुशेखर भट्टाचार्या, राहुल साकृत्यायन तथा डॉ सुरेन्द्रनाथ दासगुप्ता के विचारो का सदर्भ लेते हुए इस पर समीक्षात्मक शोध किया जा सकता है।

शकर के जगत मिथ्यात्त्व के सदर्भ मे पाश्चात्य दार्शनिक ब्रैडले के आभास एव सत् (अपीयरेस एण्ड रीयलिटी) का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए एक नया परिमार्जित शोध-प्रबध भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

इस शोध-प्रबध की परिपूर्णता मे प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से अनेकानेक गुरुजनो, विद्वतजनो परिजनो एव शुभेच्छुओ का अपार सहयोग मुझे मिला है। इन सबके प्रति आभार व्यक्त करना मेरे मानसिक तोष के लिए आवश्यक है। सबसे पहले मै इस शोध प्रबध की निर्देशिका एव दर्शनशास्त्र विभाग की अध्यक्ष परम श्रद्धेय डॉ श्रीमती मृदुला आर॰ प्रकाश के प्रति नतमस्तक हूँ। उत्तम बुद्धि और सही निर्णय की क्षमता अच्छे गुरु के सानिध्य से ही मिलती है। यह मैने उनके साथ काम करते हुए अनुभव किया है। उन्होने मुझे एक शोध-छात्र के रूप मे कभी नही देखा, मेरे लिए तो वे ममता और ज्ञान की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। उनके आशीर्वाद अनुग्रह एव प्रेरणा से ही यह शोध प्रबध अपने वर्तमान स्वरूप मे सामने आ पाया है।

विभाग के अन्य श्रद्धेय गुरुजनो स्व डॉ सगमलाल पाण्डेय (पूर्व अध्यक्ष), प्रोफे एस के सेठ डॉ डी एन द्विवेदी (पूर्व अध्यक्ष) ने यथासमय अपने परामर्शो एव सुझावो से मेरा काम आसान किया है। मै इनकी चिर-कृतज्ञ हूँ। आदरणीय डॉ॰ हरिशकर उपाध्याय एव डॉ नरेन्द्र कुमार सिह की स्नेह छाया मुझे छात्र-जीवन से ही मिलती रही है। शोध प्रक्रिया मे वह स्नेह और विकसित होकर मेरे लिए लाभकारी सिद्ध हुआ है। विषय-विश्लेषण की समस्याओ का निराकरण करके इन्होने मेरी हर सभव सहायता की है। डॉ॰ नरेन्द्र कुमार सिह ने, अपने पसद का विषय होने के कारण, अनेक उपयोगी सुझाव दिया है और पुस्तके भी उपलब्ध कराया है। इन गुरुजनो के प्रति मेरे मन मे सहज कृतज्ञताजन्य सम्मान है। शोध के सदर्भ मे दी गयी सहायता हेतु डॉ जटाशकर त्रिपाठी, डॉ गौरी बनर्जी, डॉ आशालाल के प्रति कृतज्ञ हूँ। डॉ राममूर्ति पाठक ने अतिव्यस्त रहते हुए भी मेरे शोधकार्य को व्यवस्थित करने मे पर्याप्त समय दिया है। मै उनकी आभारी हूँ।

श्री गोप राजू प्राचार्य, प गगानाथ झा केद्रीय शोध सस्थान इलाहाबाद के प्रति मै आभार व्यक्त करना चाहूँगी, जिन्होने सस्थान से तथा व्यक्तिगत रूप से भी मुझे शोध-सामग्री उपलब्ध कराया है। इनके अलावा दर्शन विभाग पुस्तकालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय,

केंद्रीय पुस्तकालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद सग्रहालय, हिदी साहित्य सम्मेलन पुस्तकालय, भारतीय दार्शनिक अनुसधान परिषद् पुस्तकालय, काशी हिदू विश्वविद्यालय पुस्तकालय से भी मुझे शोधकार्य मे बहुत सहयोग मिला है। इन पुस्तकालयो के अध्यक्षो एव अधिकारियो के प्रति आभार प्रगट करना मेरा धर्म है।

यह शोधकार्य मेरे पिता, डॉ धनजय से मिले सस्कारो की फलश्रुति है। जीवन मे हमेशा कुछ नया, मौलिक और श्रेष्ठतर करते रहने का सस्कार और सकल्प देकर उन्होने मुझे आगे बढाया है। उनकी प्रेरणाएँ मेरे लिए सर्वदा प्रकाश रेखा जैसी रहेगी। आपदा-विपदा का वलय हरेक के जीवन मे घूमता रहता है किंतु निरापद रहकर मै अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकूँ, इसका भरसक प्रयास उन्होने किया है। शोध प्रबध मे भाषिक कमियो को दूर करने तथा अभिव्यक्ति को सक्षम-समर्थ बनाने की दिशा मे उनका सहयोग बहुमूल्य है। मा शैलबाला चतुर्वेदी मेरी आदि गुरु भी है। उनके गुरुत्व और मातृत्व दोनो के बीच से मेरा व्यक्तित्व विकसित हुआ है। मातृत्व-भाव बाहरी आतप को झेलकर सतान का सबल और रक्षक कैसे बन जाता है, इस अनुभव का अर्जन मैने मा के साथ रहकर किया है। इस पडाव तक पहुँचाने मे उनकी भूमिका के लिए मै ऋणी हूँ।

शोधकार्य पूरा होने पर आज बडी दीदी स्व डॉ रचना पाण्डेय और जीजा स्व० श्री विनय कुमार नागपाल की स्मृतियाँ विह्वल-व्यथित कर देती है। भाग्य ने अल्पायु मे दोनो को अपने अकरुण हाथो से उठा लिया। दोनो की ऑखो मे मुझे एक सुनिश्चित लक्ष्य तक पहुँचाने का सपना पल रहा था। शोधकार्य पूरा करके उनके सपने को कुछ हद तक साकार कर पा रही हूँ। एक तरह से यह उन्हे मेरी प्रणामाजलि है। दीदी वदना पाण्डेय अपनी चिता कम, मेरी अधिक करती है। स्वाभाविक रूप से यह उनका दायित्व-बोध है। सभवत इसी नाते वह मुझे प्रबोध देती रहती है, साथ ही सहज और अथोर स्नेह भी। शोधकार्य सपन्न करने मे यह सब तत्त्व मेरे बडे काम के रहे है। मै दीदी वदना को धन्यवाद नही, विश्वास और भरोसा देती हूँ। शोध प्रबध को वर्तमान रूप देने मे अग्रज-तुल्य भैया अशोक सिद्धार्थ ने जो सहयोग दिया, उस हेतु आभार।

तुहिना पाण्डेय

विजयादशमी, 5 अक्टूबर, 2003 **तुहिना पाण्डेय**

इलाहाबाद

प्रथम अध्याय

शंकराचार्य तथा श्रीअरविंद के दर्शन में मायावाद की संकल्पना

माया के अवधारणात्मक विकास का निरूपण

अ शकराचार्य के दर्शन मे माया का स्वरूप

(1) मायावाद के पक्ष मे शकर के विभिन्न दृष्टिकोण
(अ) तात्त्विक (ब) तार्किक (स) मूल्यात्मक

(11) माया के लक्षण

(111) माया के कार्य

(1V) माया और अविद्या

ब श्रीअरविंद के दर्शन मे माया का स्वरूप

(1) श्रीअरविंद और माया

(11) माया का अर्थ

(111) माया द्वारा सृजित सत्ता के दो स्तर

(1V) माया के दो रूप

प्रथम अध्याय

शंकराचार्य तथा श्रीअरविंद के दर्शन में मायावाद की संकल्पना

माया के अवधारणात्मक विकास का निरूपण

भारतीय वाड्मय मे माया की अवधारणा दार्शनिको के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय रही है, क्योकि भारतीय मनीषियो ने माया को ही आधार बनाकर यथार्थ सत्ता एव जगत का सम्यक् निरूपण किया है। शकराचार्य के अद्वैत वेदात मे मायावाद को जगत के निरूपण मे केंद्रीय स्थान दिया गया है। उन्होने अपने अद्वैत वेदात मे मायावाद के दो कार्य बताये है – परम सत्ता के यथार्थ का प्रतिपादन एव जगत की आभासिता का निरूपण। मायावाद के सिद्धात की स्थापना मे शकराचार्य वेदो एव उपनिषदो मे निहित अवधारणा को ही तार्किक रूप से प्रतिपादित किया है। भारतीय वाड्मय मे 'माया शब्द का कोई निश्चित अर्थ नही मिलता है। वैदिक साहित्य मे 'माया' का प्रयोग अनेक अर्थो मे हुआ है। सभवत इसीकारण भारतीय दर्शन मे 'माया शब्द को लेकर दार्शनिको के बीच मतवैभिन्य रहा है। कुछ लोग माया का अर्थ वास्तविक अबोधगम्य शक्ति या परमसत् की शक्ति मानते है, जिसके द्वारा नामरूपात्मक जगत की रचना सभव हो पाती है। कुछ लोगो का मानना है कि माया समग्र अनुभवो का वह समूह है, जिसके द्वारा सत्ता एव वस्तु मे भेद का प्रारभ होता है। एक ओर तो कतिपय विचारक अनुभव जगत को ही माया कहकर सबोधित करते है, दूसरी ओर, माया को 'असीमित पहेली की मॉ' भी कहा गया है। निस्सदेह माया अनेकात्मक सिद्धात की जन्मदात्री है।

यह भी विलक्षण बात है कि समग्र मानवीय ज्ञान, विचार और तर्क माया मे ही समाहित है। जब माया आभासित होती है तब मानव विश्व के एकत्व को समझने मे असमर्थ

होता है। वस्तुत माया भ्रम है, जो नाम रूपात्मक प्रपच-जगत को उपस्थित करती है।

'माया शब्द की व्युत्पत्ति सस्कृत की मूल धातु मा से हुई है जिसके विभिन्न अर्थ है। जैसे मापना बनाना जानना आदि। परतु इसमे सबसे महत्वपूर्ण अर्थ है–मापना। मापने से तात्पर्य है माया का सपूर्ण जगत मे भ्रम और आभास का मापन। इसीतरह बनाना का अर्थ भी सपूर्ण विश्व के आभास को बनाने से है। भारतीय दर्शन मे माया शब्द के विभिन्न अर्थ प्रचलित रहे है। माया का उल्लेख वेद, स्मृति उपनिषद्, ब्राह्मण और आरण्यक ग्रथो मे मिलता है। शकराचार्य के अद्वैत वेदात मे माया के प्रयोग को लेकर मुख्यत चार प्रकार के विचार मिलते है। पहले विचार के अनुसार शकराचार्य ने स्वय शुद्ध अनमोल माया सिद्धात का गठन किया है। दूसरी मान्यता के अनुसार माया-सिद्धात को शकराचार्य ने बौद्ध दर्शन से प्रभावित होकर विकसित किया है। तीसरी मान्यता है कि माया सिद्धात को शकराचार्य ने पूर्णत उपनिषद् से लेकर अपने दर्शन मे रखा है। चौथे विचार के अनुसार, माया-सिद्धात का उदय प्राचीन वेदो से होता है, जिसका चिंतनपूर्ण विकास उपनिषद् मे मिलता है। आगे चलकर गौडपाद और फिर शकराचार्य के दर्शन मे उसका व्यापक रूप से विवेचन होता है। शकराचार्य ने तकनीकी ढग से उसका विस्तारण किया है।

सत्य सदैव उन पदो का अनुगामी होता है जो आगे चलकर किसी सिद्धात विशेष का रूप ग्रहण कर लेते है। जिस 'माया शब्द का लबे समय के अतराल से मायावाद सिद्धात के आधार रूप मे प्रयोग, उदय और विकास हुआ, उसका प्रचलन वैदिक काल से ही चला आ रहा था। शकराचार्य द्वारा प्रतिपादित 'मायावाद' विचारधारा के विकास-क्रम मे 'माया' शब्द के प्रयोग और इतिहास का अन्वेषण कर लेना आवश्यक है।

सहिताओ मे माया' शब्द के प्रयोग मे विविधता मिलती है। ऋग्वेद सहिता मे माया शब्द का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। इसलिए 'माया' शब्द के इतिहास का यही से आरभ मानना उचित होगा। ऋग्वेद मे 'माया' शब्द का प्रयोग मुख्यत 75 मत्रो मे हुआ है। इन मत्रो मे यह शब्द प्राय – माया , मायया, मायाभि , माया और मायाम् के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। माया ' शब्द चौबीस बार मिलता है।[1] तृतीयात मायया का ऋग्वेद मे बीस

1 ऋग्वेद सहिता 1 मण्डल 32 सूक्त 4 मत्र 1 117 3 2 11 10 2 27-16, 3 20-3, 3 53 8 5 2 9 5 31 7 5 40 6 5 40 8 6 18 9 6 20 4 6 22 9 6 44 22 6 45-9 6 58 1 7 1 10 7 99 4 8 41 8 10 53 9 10 73 5 10 99 2 10 111 6

बार प्रयोग हुआ है।[2] प्रभुदत्त शास्त्री ने मायया' का उन्नीस बार प्रयोग किये जाने की बात कही है।[3] माया के तृतीयात बहुवचन रूप मायाभि का तेरह बार[4], प्रथमात 'माया का तीन बार[5] और मायाम्'[6] का भी तीन बार प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त मायी मायिन , मायिनम् मायिनाम् मायिनी, मायिनि मायिना मायाविना, मायाविनम्, मायाविन तथा मायावान् शब्दो का प्रयोग भी मिलता है।

ऋग्वेद मे विभिन्न स्थानो पर माया' शब्द के अर्थ भी भिन्न-भिन्न मिलते है। वैदिक साहित्य के प्राचीनतम कोश निघण्टु मे माया को प्रज्ञा के ग्यारह पर्यायो मे स्वीकार किया गया है, जो कत , केतु , चेत चित्रम्, कृतु , असु , धी , शची , माया, वयनम् तथा अभिख्या है।[7] निरुक्तकार यास्क ने भी माया का अर्थ 'प्रज्ञा ही लिया है। ऋग्वेद मत्र विश्वा हि माया अवसि[8] की टिप्पणी मे यास्क ने पूषा को प्रजारक्षक कहा है।[9] निरुक्तकार सायण ने 'यद्वा की उक्तियो मे माया के मुख्य अर्थो मे कपट विशेष[10], प्रज्ञा[11], ज्ञान[12],

---

2 ऋग्वेद सहिता 1 80 7 1 44 1 1 160 3 2 17 5 3 27 7 4 30 12 4 30 21 5 63 3 5 63 6 5 63 7 6 22 6 7 104 24 8 23 15 8 41 3 9 73 5 9 73 9, 9-83 3 10 71 5 10 85 18 10 177 1

3 पी डी शास्त्री द डाक्ट्रिन ऑफ माया पृष्ठ 7

4 ऋग्वेद सहिता 1 11 7 1 33 10 1 151 5 1 151 9 3 34 6 3 60 1 5 30 6 5 44 2 5 78 6 6 47 18 6 63 5 8 14 14 10 148 2

5 वही 3 61 7 5 63 4 10 54 2

6 वही 5 85 5 5 85 6 10 88 6

7 निघण्टु 3 9 सपा सीताराम शास्त्री

8 ऋग्वेद 6 58 1

9 सर्वाणि प्रज्ञानान्यवस्यन्नवन भाजनवती ते पूसन्निहदतिरस्तु निरुक्त 12 17

10 मायाभि तत्प्रतिकूलै कपटविशेषै सायणभाष्य ऋग्वेद 1 11 7 (वैदिक सशोधन मण्डल पूना सस्करण)

11 यद्वा तद्वद्योपाय गोचर प्रज्ञाभि अवातिर हिंसितवानसि – वही 1 11 7

12 वही 6 47 18

कर्मविषयविज्ञान[13] कर्म[14], शक्ति[15] तथा प्रभा[16] आदि लिया है। सायण द्वारा दी गयी माया शब्द की व्युत्पत्ति भी प्रज्ञा अर्थ की ही पोषक है। उन्होने माया को मानार्थक तथा शब्दार्थक याड् धातु से कर्ता अथवा कर्म मे य प्रत्यय के द्वारा निष्पन्न सिद्ध किया है।

यजुर्वेद सहिता मे 'माया शब्द का प्रयोग विभिन्न स्थानो पर विभिन्न अर्थो मे हुआ है। परतु प्रमुख रूप से सबका प्रज्ञा अर्थ ही निकलता है। इसमे माया को आसुरी कहा गया है।[17] उव्वट ने अपने भाष्य मे आसुरी माया को प्राणसबधिनी प्रज्ञा[18] कहते हुए उसके दो अर्थ स्वीकार किये है – पहला, प्राण सबधिनी प्रज्ञा, दूसरा, अचिंत्य रचना के रूप मे विचित्र वस्तु।[19] यजुर्वेद के एक स्त्रोत मे अग्निदेव की प्रार्थना मे मही तथा साहनी रूपा आसुरी माया का नाश न करने को कहा गया है।[20] उव्वट ने महीम्' तथा साहस्त्रीम्' शब्दो को क्रमश महतीम् और सहस्रोपकार क्षमाम् के पर्याय मे लिया है।[21] इनके अतिरिक्त अनेक स्थलो पर यजुर्वेद मे माया को प्रज्ञा और बुद्धि के अर्थ मे प्रयुक्त किया गया है।[22]

---

13 यद्वा तद्वधोपाय गोचर प्रज्ञाभि अवातिर हिंसितवानसि –वही 3 27 7

14 सायण भाष्य ऋग्वेद 3 60 1

15 इद्रो मायया स्वीकीययया शक्त्या। –वही 4 30 21 5 30 6

16 वही 3 61 7

17 यजुर्वेद 11 69

18 यत आसुरी माया असु प्राण रेफ उपजन प्राणसबधिनी माया प्रज्ञा।

–उव्वट भाष्य यजुर्वेद 11-69

19 कस्मात त्वमिदमुच्यसे स्वाधयान्नेन निमित्तेन त्वमासुरी माया प्राण सबधिनी प्रज्ञा कृतासि। यद्वा असुर सबधिनी माया अचिंत्य रचनारूप चित्र वस्तु भूत्वा यद्वत् प्रतिभाति तद्वतत्वमपि रचनायुक्ता निष्पन्नासीत्यर्थ।

–महीधर भाष्य यजुर्वेद 11 69

20 यजुर्वेद 13 44

21 मही महती साहस्री सहस्त्रोपकारक्षमाम्।

–उव्वट भाष्य, यजुर्वेद, 13 44

22 महीधर भाष्य यजुर्वेद 23 52

अथर्ववेद मे भी अनेक जगहो पर अनेक रूपो मे माया शब्द आया है, जिनमे माया[23] एक बार मायया[24] दस बार मायिन[25] दो बार, मायाम्[26] तीन बार माया[27] चार बार, माये[28] एक बार, मायया[29] दो बार, मायाभि[30] तीन बार मायी[31] एक बार, मायिनाम्[32] एक बार और मायिनम्[33] एक बार प्रयुक्त है।

अथर्ववेद मे अर्थ की दृष्टि से माया हृदय को कल्याणप्रद वस्तुओ से तृप्त करने वाली है। यही पर रोगी और निरोगी स्त्री पुरुषो को माया धारण कर रस पीने का उपदेश भी दिया गया है[34] जो माया को प्रज्ञा और बुद्धि के अर्थ मे प्रगट करती है। अथर्ववेद के एक मत्र मे ईश्वर से प्राप्त की जाने वाली आसुरी माया को अज्ञान, अविद्या अथवा कपट के अर्थ मे नही ग्रहण किया गया है।[35] वहॉ माया प्रज्ञा है। कुछ स्थानो पर माया को प्रवचना के रूप मे लिया गया है।[36]

ब्राह्मण ग्रथो मे भी माया का वर्णन अनेक बार मिलता है। इनमे प्रयुक्त माया शब्द

---

23 अथर्ववेद सहिता 8 काण्ड 9 सूक्त 5 मत्र

24 वही 4 38 3 6 72 1 7 86 1 8 4 24 10 8 34 13 2 3 13 2 11 14 1 23 19 68 1 20 36 6

25 वही 19 27 5 19 27 6 19 66 1

26 वही 2 29 6 8 13 3 8 13 4

27 वही 4 23 5 8 3 24 20 26 9 20 87 5

28 वही 8 10 1

29 वही 8 9 5

30 वही 2 1 8 20 11 6 20 29 4

31 वही 5 11 5

32 वही 20 11 3

33 वही 20 21 4

34 वही 2 29 6

35 वही 4 23 5

36 वही 20 29 4

के रूप – माया[37], मायाम्[38], मायया[39] मायायाम्[40] आदि मिलते है। इसके अतिरिक्त मायावत्त मायावतार, माये आदि शब्दो का प्रयोग भी किया गया है।[41] यहॉ माया के अर्थो मे भी विभिन्नता है। ऐतरेय ब्राह्मण मे माया का प्रयोग अद्भुत तथा ऐद्रजालिक चातुरी के अर्थ मे है।[42] तैत्तिरीय ब्राह्मण मे दैवी शक्ति के अर्थ मे है।[43] शतपथ ब्राह्मण मे यह अद्भुत शक्ति है।[44] वाजसनेय सहिता मे प्रज्ञा और बुद्धि के अर्थ मे है।[45]

भारतीय दर्शन के आधारस्तभ उपनिषद् है। इनमे भी माया का वर्णन है। अब तक 120 उपनिषद् प्राप्त है, कितु इनमे प्राचीन और प्रामाणिक कुल दस – ईशोपनिषद्, केनोपनिषद्, कठोपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद् माण्डूक्योपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, ऐतरेयोपनिषद्, छादोग्योपनिषद् और वृहदारण्यकोपनिषद् है। इन पर शकराचार्य ने भाष्यरचना की है जिनमे माया' शब्द दो बार ही प्रयुक्त हुआ है। वृहदारण्यकोपनिषद् मे माया शब्द का प्रयोग एक बार रहस्यमयी शक्ति के अर्थ मे[46] है, जबकि प्रश्नोपनिषद् मे इस शब्द का प्रयोग एक बार ही, लेकिन आचार की कुटिलता के अर्थ मे किया गया है।[47]

उत्तरकालिक उपनिषद् श्वेताश्वतर मे माया, मायाम्, मायिनम्, मायी तथा मायया शब्दो का प्रयोग हुआ है।[48] यहॉ 'माया को प्रकृति और परमेश्वर को मायी कहा गया

---

37 वाजसनेय सहिता 11 63

38 वही 13 44 ऐतरेय ब्राह्मण 8 23

39 वाजसनेय सहिता 23 52 ऐतरेय ब्राह्मण 6 36 तैत्तिरीय ब्राह्मण 3 10 8 2

40 वही, 30 7

41 मायावत्त ऐतरेय ब्राह्मण 8 23 मायावतार ऐतरेय ब्राह्मण 8 23 माये शतपथ ब्राह्मण 3 2 4 1

42 ऐतरेय ब्राह्मण 8 23

43 तैत्तिरीय ब्राह्मण 3 10 8 2

44 शुक्ल यजुर्वेद 3 2 4 1 13 5 4 12

45 पी डी शास्त्री द डाक्ट्रिन ऑफ माया पृष्ठ 15 16

46 वृहदारण्यकोपनिषद 2 19

47 प्रश्नोपनिषद, 1 16

48 श्वेताश्वतर उपनिषद, माया 1 10 मायाम मायिनम 4 10 मायी मायया 4 9

है।[49] इसमे विश्व माया से निवृत्ति का उल्लेख भी है[50] जो निश्चित रूप से शकराचार्य के मायामात्रभिरदैतम् के अधिक निकट है। नृसिंह पूर्वतापनीयोपनिषद् मे माया को शक्ति[51] तथा अविद्या[52] के रूप मे रखा गया है। जबकि सर्वसारोपनिषद् ने अप्रत्यक्षत माया को अनिवर्चनीय कहा है।[53] गोपीचदनोपनिषद् मे माया' के वर्णन के सदर्भ मे कृष्ण और गोपियो द्वारा ब्रह्म और महामाया का उल्लेख है।[54] कठरुद्रोपनिषद् मे ससार को माया[55] तथा जीव और ईश्वर से माया का सबध इगित किया गया है। कृष्णोपनिषद् मे माया त्रिगुणात्मिका है।

इसप्रकार प्राचीन दस तथा अन्य उपनिषदो मे भी माया का वर्णन है। इन सभी मे माया के अविद्यात्मक तथा अनिर्वचनीय स्वरूप की ध्वनि उभरती है। परमेश्वर की शक्ति के रूप मे माया है, किंतु इन उपनिषदो की प्रामाणिकता मे सशय के कारण इन्हे दर्शन के क्रमिक विकास मे नही लिया जा सकता है।

भगवद्गीता मे कही ईश्वर की माया शक्ति[57] और कही त्रिगुणात्मिका प्रकृति[58] के अर्थ मे प्रयुक्त है। यहॉ दार्शनिक विवेचन की दृष्टि से वादरायण का ब्रह्मसूत्र भी प्रमुख है। इसमे 'माया' शब्द का प्रयोग मात्र एक बार ही हुआ है।[59] वहॉ माया का तात्पर्य स्वाप्निक प्रपच के मिथ्यात्व से है। इस माया से शकराचार्य के दर्शन की व्यवहार-योग्य

---

49 श्वेताश्वतर उपनिषद माया 1 10, मायाम मायिनम 4 10 मायी मायया 4 10

50 वही 1 10

51 नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषद 3 1

52 नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषद 5 1

53 सर्वसारोपनिषद, 41

54 गोपीचदनोपनिषद 2

55 कठरुद्रोपनिषद 10

56 कृष्णोपनिषद 4

57 गीता 18 61

58 वही 7 14

59 मायामात्र तु कात्स्न्येंनानभिव्यक्त स्वरूपत्वात् ब्रह्मसूत्र 3 2 3

माया की दिशा अलग है।[60] इसलिए माया के इस अर्थ को मायावाद से जुड़ा हुआ नही मानना चाहिए।

पुराण साहित्य दर्शन, धर्म और सामाजिक परपराओ के सग्रह है। इनमे भी माया शब्द का प्रयोग मिलता है। विष्णु पुराण मे माया' शब्द का प्रयोग विष्णु की माया हेतु मुख्यत किया गया है। मोहनी रूपधारी भगवान विष्णु माया से दानवो को मोहित करके उनसे अमृत कलश लेकर देवताओ को दे देते है।[61] इसके अलावा विष्णु के माया-मोह उत्पन्न करने का भी वर्णन मिलता है।[62] श्रीमद्भागवत पुराण मे माया की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि जिस वस्तु के न होने पर भी अस्तित्व की प्रतीति होती है और जो आत्मा मे प्रतीत नही होती उसे आत्मा की माया समझना चाहिए।[63] यह माया, आभास एव तम के सदृश है। दशम् स्कध मे भगवान की माया से मोहित होकर मनुष्यो के स्त्री-पुत्रादि मे आसक्त होने और दुख के अपार सागर मे डूबने-उतराने का वर्णन प्राप्त होता है।[64] वराह पुराण मे कपिल तथा जैजीषव्य मुनि के, माया के द्वारा अनेक रूप धारण करने का वर्णन है। यहॉ माया आश्चर्यात्मिका शक्ति के रूप मे स्थित है।[65] अग्निपुराण मे माया का प्रयोग भगवती दुर्गा के नामो के लिए किया गया है।[66] महानारदीय पुराण मे दैत्यो के लिए

---

60 डॉ थिवाउत इट्रोडक्शन एस बी ई Vol XXXIV, PXC VII

61 मायया मोहयित्त्वा तान विष्णु स्त्रीरूपसस्थित ।
दानवेभ्यस्तदादाय देवेभ्य प्रददौ प्रभु ।।
विष्णुपुराण 9 109

62 वही 3 17 41

63 ऋतेऽर्थयत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो माया यथाभासो यथातम ।।
श्रीमद्भागवत पुराण 2 9-3

64 वही 10 63 40

65 वराह पुराण, 4 26

66 अग्निपुराण 137 78

मायिन विशेषण है।[67] यह आसुरी माया का एक रूप है। इस स्थल पर दैत्यो के देवता रूप ग्रहण करने की कथा भी आती है। ब्रह्माण्ड पुराण मे 'माया का प्रयोग अनाचार सूचक अर्थ मे किया गया है।[68]

इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पुराणो मे माया के आसुरी, जगन्मोहिका, अनैतिक तथा शक्तिरूपिणी स्वरूप प्राप्त होते है। प्रत्यक्षत दर्शन ग्रथ होने पर भी पुराणो के और शकराचार्य द्वारा प्रतिपादित माया के स्वरूप मे पर्याप्त साम्य है। यद्यपि आज भी पुराणो की प्रामाणिकता मे सदेह है।

तत्र के विपुल साहित्य मे माया की चर्चा अनेक स्थानो पर हुई है। तात्रिक दर्शन का सर्वस्व महामाया होने के कारण तत्रसाहित्य मे माया का विशद् चित्रण स्वाभाविक ही है। शिवसूत्र मे माया का अविद्या के अर्थ मे उल्लेख है।[69] विशालकाय ग्रथ तत्रलोक मे माया को कही ससार के सविकल्प होने के कारण मायामय कहा गया है,[70] तो कही मायापाश कहा गया है।[71] लक्ष्मीतत्र मे माया के लक्ष्मी [72] शक्ति[73] तथा त्रिगुणात्मक[74] रूपो की प्रधानता है। शारदातिलक तत्र मे लक्ष्मण देशिकेन्द्र ने माया को लक्ष्मी की माया[75] और मायाबीज[76] के अर्थ मे लिया है। महानिर्वाणतत्र मे माया आद्या शक्ति काली के समान ही अनेक रूप धारण

---

67 दुरत वत्तप श्रुत्वा दैत्येया मायिनोदितिम्।

महानारदीय पुराण पूर्वखण्ड 10 38

68 ब्रह्माण्ड पुराण पूर्वभाग अनुषगवाद 19 105

69 शिवसूत्र 3 3

70 सविकल्पतया मायामयमिच्छादि वस्तुत ।

तत्रालोक 1 214

71 वही 4 33

72 मायानाम महालक्ष्मी '।

लक्ष्मीतत्र 20 26 अडयार 1959

73 लक्ष्मीतत्र 6 3

74 वही, 35 10

75 शारदातिलकतत्र 2 43

76 वही 2 73 2 77

करने मे सक्षम है[77] तथा आधार शक्ति है,[78] किंतु माया के लिए बीजमत्र शब्द का प्रयोग सर्वाधिक मिलता है।[79] अपभ्रश ग्रथ डाकार्णव' मे माया को प्रज्ञा'[80] और बीजमत्र[81] के अर्थ मे प्रयुक्त किया गया है।

तत्र साहित्य मे माया सबधी वर्णन मे विभिन्नता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। यहॉ माया भगवती महामाया शक्तिरूपिणी माया, अविद्यात्मिका माया और प्रज्ञात्मिका माया के रूप मे अधिकाशतया प्रस्तुत की गयी है, जो माया के शक्ति तत्त्व का सीधा सकेत है। कितु तत्र साहित्य की शक्तिरूपा माया और शकराचार्य द्वारा स्थापित शक्ति-माया मे विभेद है। जो शक्ति-माया शकराचार्य दर्शन मे जड तथा मिथ्या सनातनी है, वही तत्र दर्शन मे चिद्रूपिणी महामाया है। शकराचार्य की माया की अनिर्वचनीयता भी तत्र की माया से भिन्न है।[82] इन दोनो माया-स्वरूपो मे स्पष्ट भेद है।

बौद्ध दर्शन मे भी माया के विभिन्न स्वरूप प्राप्त होते है। प्राचीन पालि के बौद्ध-लेखो मे माया का प्रयोग प्रवचना' के अर्थ मे किया गया है।[83] अश्वघोष ने माया को इद्रजाल के अर्थ मे रखा है, जबकि लकावतार सूत्र मे माया को असत् कहा गया है।[84] इसी मे ससार को 'माया स्वप्नोपम भी कहा गया है।[85] लकावतार मे ही माया, केशोण्डुक और मृगतृष्णा

---

77 साकारापि निराकारा माययाबहुरूपिणी ।

महानिर्वाणतत्र 4 34

78 वही 5 187

79 वही 5 83 5 119 6 35 9 103

80 मायिसहावइ अच्छसि तुम्म तिहुअण सल्ल उतारअ जिम्म ।
सस्कृत रूपातर माया स्वभावेऽसित्त्व त्रिभुवनस्य सकलस्य उत्तारको यथा –डाकार्णव 1 6
(शोध ग्रथ के रूप मे इसका सपादन डॉ नगेन्द्र नारायण चौधरी ने किया)

81 अपउ कहननु गहइओ माइरूअ सवरो एआर जुतओ हेतउ तिहुयणभनति।

वही 1 5

82 महामाया पृष्ठ 24

83 दासगुप्ता इडियन फिलासफी भाग 1 पृष्ठ 470

84 लकावतार सूत्र 10 88

85 वही 10 56

को एक ही कोटि मे रखा है,[86] जहॉ माया इद्रजालरूपिणी है। इसमे भ्रम आदि उत्पन्न करने की शक्ति नही है। मिथ्या जगत के सबध मे होने वाले समस्त भ्रमो का कारण अज्ञानी मनुष्य का चित्त ही होता है। इसीलिए ज्ञानी को भ्रम नही होता है।[87] स्पष्ट है कि शकराचार्य की माया-शक्ति तथा बौद्ध दर्शन की माया मे भी पर्याप्त अतर है।

योगवासिष्ठ मे माया के सबध मे मत व्यक्त करते हुए उसे तमोमाया[88], आश्चर्यात्मिका[89] और ससारमाया[90] के अर्थो मे ग्रहण किया गया है। इनके अलावा शकराचार्य के पूर्ववर्ती साहित्य मे गौडपादाचार्य की कृति 'माण्डूक्य कारिका प्रमुख है। इसमे माया शब्द का बाइस बार प्रयोग मिलता है।[91] इन कारिकाओ मे माया शब्द का प्रयोग आत्मा की माया[92], स्वप्नमयता[93] आदि अर्थो मे किया गया है। यह सत्य है कि गौडपादाचार्य के मायावाद की शक्तिरूपिता, अनादिता भावरूपता तथा अनिर्वचनीयता आदि विशेषताओ का प्रभाव शकराचार्य के मायावाद मे देखा जा सकता है, किंतु गौडपादाचार्य और शकराचार्य के मायावाद मे कुछ अतर भी है। गौडपादाचार्य ने शकराचार्य के समान स्वप्न और जाग्रत अवस्था मे समानता न मानकर भेद किया है, जिससे दोनो के मायावादी दृष्टिकोण मे अतर परिलक्षित होता है। गौडपादाचार्य ने माया को स्वानिक कहा है, शकराचार्य ने मायिक विषयो की बाह्य सत्ता को स्वीकार किया है। शकराचार्य गौडपादाचार्य की माया सबधी अवधारणा से प्रभावित अवश्य थे, किंतु मायावाद का सिद्धात उनकी मौलिक स्थापना है।

---

86 लकावतार सूत्र 10 95 10 443

87 डी टी सुजुकी स्टडीज इन लकावतार सूत्र पृष्ठ 121

88 योगवासिष्ठ 5 48 44

89 वही 6 108 1

90 वही 5 49 22

91 माण्डूक्य कारिका 1 7 16 17 2 12 19 31 3 10 19 24 27 28 29 4 44, 58 59, 61, 69

92 वही 2 12 2 19

93 वही 3 10

अ शकराचार्य के दर्शन मे माया का स्वरूप

अद्वैत वेदात के प्रमुख दार्शनिक शकराचार्य ने एकमात्र ब्रह्म को ही पारमार्थिक दृष्टि से सत्य माना है। उनकी दृष्टि मे ब्रह्म या आत्मा ही मूल तत्त्व है। नामरूपात्मक जगत भ्रम है। इसी का विवेचन कठोपनिषद् मे मृत्यो स मृत्युम् आप्नोति य इह नानेव पर यति के रूप मे मिलता है। शकराचार्य ब्रह्म को यथार्थ सत्ता मानते हुए भी माया की अवधारणा के लिए गुजाइश रखते है और एक नये प्रारूप की रचना करते है। मान ले कि क और 'ख दो वस्तुएँ है जिनके बीच हम सबध स्थापित करना चाहते है। इसके लिए तीन विकल्प मौजूद है। या तो दोनो वस्तुएँ एक दूसरे से स्वतत्र है या एक-दूसरे पर आश्रित है या उनमे से एक स्वतत्र है और दूसरी वस्तु पहली पर पूरी तरह आश्रित है। यदि प्रथम को माने तो दोनो वस्तुएँ एक-दूसरे से पूर्णत स्वतत्र होगी और दोनो के बीच किसी प्रकार के सबध की कल्पना असभव है। दूसरी दृष्टि मे, दोनो एक-दूसरे पर पूर्णतया आश्रित है, तो दोनो मे भेद असभव होगा। यह भी किसी सबध को सूचित नही करती है। तीसरी अवस्था मे, 'क' वस्तु स्वतत्र है तथा ख', 'क के ऊपर पूरी तरह आश्रित है। यही एक अवस्था है जिसमे दोनो के बीच सबध स्थापित किया जा सकता है। शकराचार्य के दर्शन मे ब्रह्म क और माया 'ख है। माया के ब्रह्म पर पूरी तरह आश्रित होने से ब्रह्म की स्वतत्रता मे किसी प्रकार का व्याघात नही उत्पन्न होता है। यही ब्रह्म और माया के अस्तित्व मे विश्वास करने का तर्क है। शकराचार्य कहते है कि माया ईश्वर की बीज शक्ति है, जिसके द्वारा वह जगत की सृष्टि करता है। परमेश्वर की यह बीज शक्ति अविद्यात्मक अव्यक्त शब्द के माध्यम से व्यक्त की गयी है। इसे महासुषुप्ति' भी कहते है क्योकि ससारी जीव अपने यथार्थ स्वरूप को भूलकर इसकी प्रगाढ़ निद्रा मे सोये रहते है।[94] जिसप्रकार कोई जादूगर अपनी माया से दर्शको को तो प्रभावित कर लेता है, पर वह स्वय अपनी माया से प्रभावित नही होता,

---

94 न हि तया बिना परमेश्वरस्य स्रष्टत्व सिद्धयति। अविद्यात्मिका हि बीजशक्ति अव्यक्त शब्दनिर्देश्या परमेश्वराश्रया मायामयी महासुषुप्ति यस्या स्वरूपप्रतिबोधरहिता शेरते ससारिणो जीवा ।

शारीरक भाष्य, 1-4 3

उसीप्रकार ब्रह्म अपनी माया से जीवो को तो प्रभावित कर देता है, पर वह स्वय अपनी माया से तनिक भी प्रभावित नही होता है।[95]

वास्तविकता यह है कि माया शब्द का प्रयोग प्राय सभी दर्शनो मे हुआ है किंतु मायावाद का तार्किक रूप से प्रतिपादन केवल अद्वैत वेदात मे मिलता है। वेदात मे माया का प्रयोग विशिष्ट अर्थ मे किया गया है जिसमे माया के मुख्यत तीन अर्थ बताये गये है। इसका वर्णन विद्यारण्य स्वामी ने पचदशी मे इसप्रकार किया है

तुच्छा निर्वचनीया च वास्तवी चेत्यसौ त्रिधा।

ज्ञेया माया त्रिभिबौधै श्रोतयोक्तिक लौकिकै ।।

उपर्युक्त श्लोक से स्पष्ट होता है कि माया को तुच्छ, अनिर्वचनीय और वास्तविक समझना चाहिए। श्रुति से ज्ञात होता है कि माया तुच्छ है युक्ति से ज्ञात होता है कि माया अनिर्वचनीय है अर्थात् सत्-असत् से विलक्षण है और प्रत्यक्ष से ज्ञात होता है कि माया वास्तविक है। इसप्रकार माया की अवधारणा मे (1) तुच्छता अर्थात् अलीकता या नितात असत् (2) अनिर्वचनीयता या सत् असत् से विलक्षणत्त्व और (3) वास्तविकता, ये तीन लक्षण दृष्टिगोचर होते है। पारमार्थिक दृष्टि से जगत असत् है, क्योकि इस दृष्टि से ब्रह्म ही सत् है। इसके विपरीत व्यावहारिक दृष्टि से जगत सत् है और जगत का अस्तित्व भ्रम या स्वप्न के समान नही है।

अद्वैत वेदात मे शकराचार्य ने तीन प्रकार के सत् बताया है – (1) प्रातिभासिक सत् (2) व्यावहारिक सत् और (3) पारमार्थिक सत्। प्रातिभासिक सत् भासित तो होता है, लेकिन परवर्ती अनुभवो द्वारा उसका बोध हो सकता है। स्वप्न और भ्रम के विषय प्रातिभासिक सत् है, क्योकि वह आभासित तो होता है किंतु अन्य अनुभवो द्वारा खण्डित भी हो जाता है। जगत मे विद्यमान वस्तुओ का व्यावहारिक स्तर है, क्योकि उनमे प्रतीयमान होने के साथ-साथ एक नियम और निरतरता है। उनमे कार्य-कारण सबध भी है। परतु वे

95 यथा स्वय प्रसारितया मायया मायावी त्रिष्वपि कालेषु न सस्पृश्यते अवस्तुत्वात एव परमात्मापि ससारमायया न सस्पृश्यते इति।

शारीरक भाष्य 2 1 9

विनाशी और अनित्य है। उनके मूल मे एक सत्ता है, जो अविनाशी और नित्य है। यही परम ब्रह्म की सत्ता है। ब्रह्म का ही अस्तित्व नित्य और एकरस है। परतु जगत अनित्य और विनाशी है। इसीकारण ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या है। शकराचार्य ने जगत के मिथ्या होने की स्थापना माया के माध्यम से की है और यह दिखाया है कि जगत ब्रह्म का विवर्त है। उनके अनुसार ब्रह्म से भिन्न जो कुछ भी है, वह मिथ्या है। मिथ्या के पॉच अर्थ उन्होने ने अपने दर्शन मे दिया है, जो इसप्रकार है–

1 मिथ्या का अर्थ सत् से भिन्न है।

2 मिथ्या का अर्थ ज्ञान से निवर्त्यत्त्व है।

3 मिथ्या का अर्थ सत्- असत् से विलक्षणत्त्व है।

4 मिथ्या का अर्थ कुछ उपाधियो के रहते त्रैकालिक निषेध का प्रतियोगित्त्व है।

5 मिथ्या का अर्थ स्वाश्रयनिष्ठ अत्यताभाव का प्रतियोगित्त्व है।

वस्तुत मिथ्या शब्द माया का पर्यायवाची है। शकराचार्य के जगत को मिथ्या कहने का अर्थ यही है कि ब्रह्म की अपेक्षा जगत असत् है। ब्रह्मज्ञान होने पर जगत का ज्ञान निवृत्त हो जाता है। तर्क के आधार पर जगत न तो सत् है, न असत्, बल्कि इन सबसे विलक्षण है। जगत की सत्ता त्रैकालिक निषेध का प्रतियोगी है, साथ ही इसकी सत्ता स्वाश्रयनिष्ठ अत्यताभाव का भी प्रतियोगी है। इन अर्थो के अतिरिक्त शकराचार्य के अद्वैत वेदात मे माया या मिथ्या का कोई दूसरा अर्थ नही है। यदि माया या मिथ्या का कोई अन्य अर्थ किया जाता है तो उसमे अर्थातर कल्पना का दोष उत्पन्न हो जायगा।

'मायावाद' शकराचार्य के अद्वैत वेदात का जगतविषयक सिद्धात है। उन्होने जगत का वर्णन करते हुए जन्माद्यस्य यत' सूत्र के भाष्य मे कहा है कि यह जगत नामरूप मे बॅटा हुआ है, अनेक कर्त्ता-भोक्ता से सयुक्त है, देशकाल और निमित्त मे प्रतिनियत है, क्रियाफल का आश्रय है और इसकी रूप रचना जटिल है। परतु इस जगत की उत्पत्ति तत्त्वत सिद्ध नही की जा सकती है। गौडपाद का मानना है कि किसी वस्तु की उत्पत्ति सत् या असत् से तत्त्वत नही हो सकती है। यदि सत् से उनकी उत्पत्ति तत्त्वत मानी जाय तो आत्माश्रय दोष तथा अनवस्था दोष होगे और यदि असत् से मानी जाय तो असभावना

नामक दोष होगा। यद्यपि किसी वस्तु की उत्पत्ति तत्त्वत नही होती है फिर भी हमे वस्तु की उत्पत्ति आभासित तो होती ही है। इसलिए उत्पत्ति एक ऐसा तथ्य है जो सत् और असत् से विलक्षण है। यह प्रतीयमान है किंतु सत्य नही है।[96] इसीकारण गौडपाद ने इस व्याख्या को अजातिवाद या मायावाद के नाम से अभिहित किया है। शकराचार्य के अनुसार परम सत् से जब माया सयुक्त होती है, तो इस जगत की उत्पत्ति होती है। इसी आधार पर उन्होने समस्त जागतिक विषय को माया कहा है। जगत अनुभव का विषय होने के कारण सत्य नही है। मायावाद वस्तुत जगत की व्याख्या और विषयानुभव की व्याख्या है।

मायावाद के पक्ष मे शकर के विभिन्न दृष्टिकोण

शकराचार्य ने मायावाद को तीन दृष्टियो से प्रतिपादित किया है, जिसे वे माया का स्वरूप लक्षण कहते है। मायावाद की विवेचना मे जिन तीन तर्को का सहारा लेते है, वे इस प्रकार है–

1 तात्विक दृष्टि

तात्विक दृष्टि से एक और अद्वितीय ब्रह्म सत् है। उससे भिन्न सब कुछ मिथ्या है। अत मायावाद तर्क के सहारे ब्रह्मवाद को सत्यापित करता है। कुछ वेदाती यह मानते है कि शकर के अनुसार पहले ब्रह्म का अनुभव होता है, तदनतर जगत के मिथ्यापन की सिद्धि होती है। किंतु कुछ लोगो का मानना है कि पहले जगत के मिथ्यापन की सिद्धि होती है, उसके बाद ब्रह्म का अनुभव होता है। इन सबसे भिन्न कुछ लोग ब्रह्म की अनुभूति तथा जगत के मिथ्यापन की अनुभूति दोनो को साथ साथ रखते है।

---

96 सतो हि मायया जन्म युज्जते न तु तत्त्वत ।
तत्त्वतो जायते यस्य जातस्तस्यहि जायते ।।
असतो मामया जन्म तत्त्वतो नैव युज्यते ।
बध्यापुत्रो न तत्त्वेन मायया वापि जायते ।।
गौडपाद कारिका पृष्ठ सख्या

2 तार्किक दृष्टि

तार्किक दृष्टि से शकराचार्य ने जगत की व्याख्या करते हुए यह सिद्ध किया है कि जगत न तो सत् है और न ही असत्। वह अनिर्वचनीय है। ब्रह्म को शकराचार्य अनिर्वचनीय नही मानते है। उनकी दृष्टि मे ब्रह्म से भिन्न जो कुछ है वह सब अनिर्वचनीय है। यह अनिर्वचनीयता माया है, क्योकि माया सत् और असत् की कोटियो से भिन्न है।

शकराचार्य ने सपूर्ण जगत मे परमसत् ब्रह्म की सत्ता की ही अनुभूति की है। उनके अनुसार, जगत के जितने विषय है, वस्तुत वे सत् के विवर्त मात्र है। सद् रूप मे वह सत् है तथा सद् से भिन्न रूप मे असत् है। इसलिए जगत को अनिर्वचनीय, मिथ्या या माया कहा गया है। सत् को भी तत्' सर्वनाम द्वारा सबोधित किया गया है। तत्पदार्थ का विवेचन करना जगत की व्याख्या का लक्ष्य है। 'तदर्थ हमारे प्रत्येक वाक्य या परमार्थ का उद्देश्य रहता है और किमर्थ विधेय। इसीलिए सभी किमर्थ को मायिक कहते है।

3 मूल्यात्मक दृष्टि

मूल्यात्मक दृष्टि से जगत की अपेक्षा आत्मा का महत्त्व है, क्योकि जगत नश्वर है और आत्मा अनश्वर है। समस्त प्रिय वस्तु आत्मा के लिए प्रिय है। अनात्मा को कोई अनात्मा के लिए नही चाहता है। इसलिए जगत के मिथ्यात्त्व और आत्मा के सतत्त्व का अर्थ है आत्मचितन से आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करना। जगत के बारे के चितन करने से कोई लाभ नही है। जगत दु ख रूप है, आत्मा आनद रूप। जगत को साधन माना जा सकता है, यदि जगत पर चिंतन करने से उसके भीतर व्याप्त तत्पदार्थ का बोध हो। इसप्रकार मायावाद एक मूल्य-सिद्धात है। यह व्यक्ति को दु ख से आनद की ओर, असत् से सत् की ओर मृत्यु से अमरत्त्व की ओर तथा अधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है। माया का अर्थ नि सारत्त्व या असारत्त्व है और मायावाद का अर्थ सारसर्वस्व है।

माया के लक्षण

शकराचार्य ने माया के कुछ तटस्थ लक्षण भी माने है जिनसे माया का बोध होता है। उन्होने माया को नामरूपात्मिका बताया है। नाम और रूप माया है और वे जिसके नाम और रूप है वह सत् है। वह है (अस्ति) प्रकाशित होता है (भाति) और आनद है (प्रियम्)। यह ब्रह्म के लक्षण है। इसी को सत्य ज्ञान अनत ब्रह्म कहा जाता है। इसका निरूपण अनेक नामो और रूपो मे होता है। नाम और रूप परिच्छेद है और ब्रह्म अपरिछिन्न है। देश, काल और वस्तु से अपरिछिन्न होने के कारण उसे अनतम् कहते है।

वस्तुत समस्त सासारिक वस्तुओ का नाम और रूप दोनो होता है। इन्ही से जगत का आभास होता है। इन्ही नामरूपो का विश्लेषण देशकाल, निमित्त आदि के द्वारा किया जाता है। जगत के नाम और रूप को स्पष्ट करने वाली इन विधाओ को मायावाद मानता है और इन सबके अत मे वह कारण-कार्य भाव को रखता है। उसकी दृष्टि मे कार्य सस्थान मात्र है इसलिए वह कारण को सत् और कार्य को उसका विवर्त मानता है। कारण-कार्य की मीमासा करने पर परम कारण अततोगत्त्वा ब्रह्म सिद्ध होता है, जो अज और अमर है तथा सभी कार्य उसके सस्थान मात्र होने के कारण विवर्त सिद्ध होते है। अत मायावाद ब्रह्मविवर्तवाद' है।

शकराचार्य ने माया को त्रिगुणात्मिका कहा है। वह सत्त्व रजस् और तमस् से युक्त है अर्थात् वह साख्य की प्रकृति से साम्य रखती है। श्वेताश्वर उपनिषद् मे कहा गया है – माया तु प्रकृति विद्यात् मायिन तु महेश्वरम्।' अर्थात् ब्रह्म को महेश्वर और माया को प्रकृति समझना चाहिए। माया, ब्रह्म की देख-रेख मे ही जगत की रचना करती है। मायावाद शक्तिपरिणामवाद है। वह जगत का उपादान कारण है।

माया ब्रह्म की शक्ति है। माया मे समस्त वस्तुओ को घटित करने की क्षमता भी मौजूद है। इसीलिए इसे रहस्यमय, अचित्य, विचित्र और अनिर्वचनीय कहा गया है। इस शक्ति के तीन रूप है – आवरण, विक्षेप और मल। माया ब्रह्म की उपाधि शक्ति है। उपाधि से युक्त होने के कारण वह ब्रह्म से सबधित न होते हुए भी सबधित ही दिखती है। उपाधि

का सप्रत्यय मायावाद का केद्रबिन्दु है। उसके बिना मायावाद को समझना कठिन है। उपाधि का अर्थ है – जब कोई पदार्थ अपने मे विद्यमान गुणो की तरह उनका आरोप अपने सबधी मे करता है तब उस पदार्थ को उपाधि कहते है। इसी दृष्टि से माया ब्रह्म की उपाधि है। वह अपने गुणो का आरोप ब्रह्म मे कर देती है। इस आधार पर ब्रह्म के दो रूप माने गये है – (1) मायामुक्त ब्रह्म (2) मायासहित ब्रह्म। ब्रह्म और माया का सबध उपाधिभूत है अर्थात् दोनो मे ससर्ग अवश्य है किंतु यह ससर्ग न तो स्वाभाविक है और न पारमार्थिक। यह सयोग या सयोग का आभास मात्र है। यह सब ब्रह्म की लीला है। लीलावाद मायावाद का विरोध नही, अपितु उसको सुदृढता देने वाला विचार है।

शकराचार्य के अनुसार माया ज्ञान-निरस्या है। अर्थात् जहॉ माया है, वहॉ ज्ञान नही और जहॉ पर ज्ञान है वहॉ माया नही है। मायायुक्त जगत मानव को अयथावत दिखता है। ब्रह्म शाश्वत निर्विकार एव अनत है। माया से युक्त जीव ब्रह्म को नामरूपात्मक जगत मे ही देखने की चेष्टा करता है। इसीकारण शकर ने ब्रह्मज्ञान हेतु माया के बधन को काटना आवश्यक माना है।[97]

माया भाव रूप भी है। इसके माध्यम से सपूर्ण ससार का विकास होता है। मायायुक्त ब्रह्म नामरूपात्मक ससार की सृष्टि करता है। सपूर्ण जगत माया के कारण ही सभव है इसलिए पूर्ण ज्ञान न होने तक इसकी स्थिति बनी रहती है। शकराचार्य ने माया को त्रिगुणात्मिका नाम दिया है।[98]

उन्होने ससार मे नाशवान (क्षर) और अनाशवान (अक्षर) दो प्रकार के पुरुष माने है। क्षर पुरुष का बीज रूप अक्षर है। अक्षर को शकराचार्य ने माया नाम से अभिहित किया है। अक्षर पुरुष के रूप मे माया को कुटिलता, बधना आदि नामो से सबोधित किया है।

---

97 द्वद्वमोहेन निर्मुक्ता भजते मा परमात्मन ।
श्रीमदभगवदगीता शाकर भाष्य 7 28

98 अव्यक्त नाम्नी परमेशशक्ति अनादिऽविदया त्रिगुणात्मिका परा ।
कार्यानुमेया सुधियैव माया या जगत्सर्वमिद प्रसूयते ।।
विवेक चूड़ामणि पृष्ठ 108

इसतरह शकर माया को बधना रूप जगत के बीज यानि कि अक्षर पुरुष के रूप मे मानते है।[99]

माया के कार्य

शकराचार्य ने पुरुष को द्रष्टा माना है। त्रिगुणात्मिका माया के माध्यम से वह जगत की सृष्टि करता है। यह चराचर जगत इसी त्रिगुणात्मिका माया का परिणाम है।[100] माया की दो शक्तियॉ है – आवरण तथा विक्षेप।

आवरण शक्ति तमोगुण प्रधान है। यह जीव के समक्ष अधकार प्रस्तुत करती है, उसे ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नही होने देती है और जीव मोहयुक्त हो जाता है।[101] शरीर युक्त आत्मा अविद्या के कारण ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को नही देख पाती है। शकराचार्य के अनुसार ब्रह्म इस माया से प्रभावित नही होता। ईश्वर या ब्रह्म की ही शक्ति होने के कारण माया उसे प्रभावित नही कर सकती।[102] माया द्वारा जीवात्मा के लिए ब्रह्म का अनत एव सच्चिदानद स्वरूप छिपा लिया जाता है। यह माया की आवरण शक्ति का कार्य है।[103]

माया की द्वितीय शक्ति विक्षेप है। यह रजोगुण प्रधान होती है। जब आवरण द्वारा

---

99 कूटस्थ कूटोराशी राशि इव स्थित अथवा कूटो माया बधना जिह्मता कुटिलता इति पर्याया। अनेकमायादि प्रकारेण स्थित कूटस्थ ससार बीजानन्त्याद न क्षरति इति अक्षर उच्यते।

श्रीमदभगवदगीता शकर भाष्य 15 16

100 मया सर्वतो दृशिमात्रस्वरूपेण विक्रियात्मना अध्यक्षेण मम माया त्रिगुणात्मिका अविद्यालक्षण प्रकृति सूयते उत्पादयति सचराचर जगत।

वही 9

101 अज्ञानेन आवृत ज्ञान विवेकज्ञान तेन मुहयन्ति करोमि कारयामि भोक्ष भोजयामि इति एव मोह गच्छन्ति अविवेकिन ससारिणो जन्तव । वही, 5 15

102 न असौ योगमाया मदीया सती मम ईश्वरयस्थ मायाविनो ज्ञान प्रतिवध्नाति।

वही 7-25

103 अज्ञान परीच्छिन्नमप्यात्मानमपरिच्छिन्नम ससारिणमवलोकयितु बुद्धि विधायक तप्राच्छदयतीव तादृश सामर्थ्यम्।

वेदातसार, 10

जीवात्मा हेतु ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप छिप जाता है तब माया अपनी विक्षेप शक्ति के माध्यम से ब्रह्म मे नाना प्रकार के नामरूपात्मक जगत की रचना करती है। जिसप्रकार अज्ञानता के कारण रज्जु का वास्तविक स्वरूप नही दिखायी पडता है और अधकार के कारण सर्प का विक्षेप होता है। उसीप्रकार ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप के लुप्त होने के साथ ही नामरूपात्मक जगत का विक्षेप भी होता है। विक्षेप शक्ति आकारादि की सृष्टि करती है।[104]

विवेक चूडामणि मे शकराचार्य द्वारा निरूपित माया की इन दोनो शक्तियो का मनोवैज्ञानिक वर्णन किया गया है। उसके अनुसार, जिसप्रकार दुर्दिन मे मेघो द्वारा सूर्य के छिप जाने पर शीतयुक्त वायु के झोके प्राणियो को व्यथित करते है, उसीप्रकार आवरण एव विक्षेप शक्तियॉ क्रमश ब्रह्म को ढॅककर जगत को भ्रात कर देती है।[105] इसप्रकार अज्ञानी मानव राग-द्वेष आदि दोषो से युक्त होकर नामरूपात्मक जगत मे धर्म और अधर्म युक्त कर्मों को करते हुए जन्म और मृत्यु को प्राप्त करता है। देहादि से युक्त मानव-ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले पुरुषो के धर्म-अधर्म विषयक कर्मो का नाश होता है और उनकी प्रवृत्तियॉ शात हो जाती है। अततोगत्वा वे मुक्त हो जाते है। केनोपनिषद् के अनुसार, यहॉ यह ज्ञान हो गया तो ठीक, अन्यथा अनिष्ट है।[106] ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है।[107] प्रातिभासिक जगत मे कुश-कटकमय गड्ढे से अगम रास्ते मे विवेकी पथिक सकुशल चलता जाता है, किंतु अविवेकी परेशान और व्यथित होता है। इसीप्रकार माया के वास्तविक स्वरूप को न जानने वाला मानव सासारिक गमनामन चक्र मे फॅसा रहता है। वास्तविक स्वरूप को

---

104 विक्षेप शक्ति आकाशादि प्रपचमुदभावयति तादृश सामर्थ्यम ।

वेदातसार 10

105 कवलित दिननाथे दुर्दिने साद्रमेधैर्व्यथयति हिमझझावायुरूगो यथैतान ।
अविरततमसात्मन्यावृते मूढबुद्धि क्षपयति बहुदु खैस्तीव्र विक्षेपशक्ति ।।

विवेक चूडामणि

106 इह चेदवेदीदश सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टि ।

केनोपनिषद 2 5

107 ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति ।

मुण्डकोपनिषद 3 2 9

जानने वाला ब्रह्म के सिवा ससार मे किसी अन्य को नही देखता है। शकराचार्य के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत् है, वह सपूर्ण जगत का निमित्त कारण है। माया या अज्ञानता के नष्ट होने के साथ ही पूर्ण ज्ञान की अवस्था प्राप्त हो जाती है और ब्रह्म की सत्यता का ज्ञान होता है। इसप्रकार सिद्ध हुआ कि ब्रह्म ही एकमात्र सत् है।[108]

माया और अविद्या

शकराचार्य ने माया के लिए अविद्या शब्द का भी प्रयोग किया है। ससार की वस्तुगत व्याख्या से माया का व्यवहार होता है तथा कर्ता की दृष्टि से आत्मा के विमोहित होने की प्रक्रिया अविद्या है। अत माया और अविद्या एक-दूसरे के पर्यायवाची अर्थ मे प्रयुक्त होने के बावजूद अपनी विशिष्टता बनाये रखते है। सासारिक धर्मो से आत्मा का सबध उपाधियो के कारण है। जिन हेतुओ से सासारिक धर्म बढता है, उसे अविद्या कहते है।[109] शकराचार्य के परवर्ती कुछ दार्शनिको ने माया और अविद्या मे भेद किया है।

शकराचार्य ने अध्यास को ही अविद्या कहा है। ब्रह्म के अतिरिक्त जो कुछ प्रतीत है वह अविद्या है। प्रत्यक्ष आदि प्रमाण भी अविद्यामूलक है। शकराचार्य के अनुसार, सत् और असत् से विलक्षण (अनिर्वचनीय) ससार प्रपच के बीजभूत, नाम और रूप, जो अविद्या कल्पित है सर्वज्ञ ईश्वर के मानो आत्मभूत है। इन्ही को ईश्वर की माया शक्ति और प्रकृति आदि नामो से श्रुतियो तथा स्मृतियो मे अभिहित किया गया है।[110]

व्यावहारिक जगत मे आत्मा का लिप्त होना अविद्या के कारण है। आत्मा जब अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान कर ब्रह्म मे विलीन हो जाती है तब मोक्ष प्राप्त होता है।

---

108 ओकार एवेद सर्वम ।

छादोग्य उपनिषद 2 23 3

109 यन्निमित्तचास्य परोपाधिकृत ससार धर्मित्वम सा च विद्या।

वृहदारण्यक उपनिषद शाकरभाष्य पूर्व पक्ष 4 3 20

110 सर्वज्ञस्येश्वरस्यात्मभूत इवाविद्याकल्पिते नामरूपे तत्त्वान्यत्वायामनिर्वचनीये ससार प्रपचबीजभूते सर्वज्ञस्येश्वरस्य माया शक्ति प्रकृतिरिति च श्रुति स्मृत्योरभिलप्येते।

ब्रह्मसूत्र शाकरभाष्य 2 1 14

अविद्या का अपकर्ष और विद्या की पराकाष्ठा होने पर सर्वात्मभाव की उपलब्धि होती है। यही मोक्ष है।[111] इसके विपरीत जब अविद्या का उत्कर्ष और विद्या का तिरोभाव होता है तब आत्मा वास्तविक सर्वात्मभाव भूल जाती है।

अविद्या सर्वात्म पुरुष को असर्वात्म रूप से मुक्त कराती है। आत्मा से भिन्न किसी दूसरी वस्तु के न रहने पर भी नानाप्रकार की रूपात्मक वस्तुओ को उपस्थित करती है। अविद्या आत्मा का स्वाभाविक धर्म नही है। विद्या के साथ ही अविद्या का गमन होने लगता है। आत्मा विशुद्ध ज्ञान स्वरूप है, वह स्वच्छ स्वभाव है। व्यावहारिक जगत से उसका अस्वाभाविक सबध है। उदाहरण प्रस्तुत करते हुए शकराचार्य ने कहा है कि जिस तरह ससार मे स्वच्छ स्वभावयुक्त स्फटिकमणि हरित, नील एव लोहित आदि उपाधियो के ससर्ग मे उन्ही के समान दिखायी पडती है तथा उनसे भिन्न उनकी कल्पना सभव नही है। ठीक उसीप्रकार, आत्मा के भी दृष्टि-भेद लक्षित होते है, क्योकि यह भी स्फटिक के समान स्वच्छ स्वभाव वाली है। इद्रियो से इसका सबध आगतुक है जिसकी यह मात्र द्रष्टा है। वस्तुत आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी की भी सत्ता नही है। अज्ञान के कारण जगत नानारूपात्मक प्रतीत होता है। इसी के परिणामस्वरूप आत्मा भी नानारूपात्मक सबधो मे बद्ध हो जाती है और यह अज्ञानता पूर्ण ज्ञान से समाप्त होती है।[112]

वास्तविकता यह है कि शकराचार्य के दर्शन मे माया और अविद्या समानार्थक शब्द है परतु बाद के वेदातियो ने इनमे भेद किया है। ये परवर्ती माया को ब्रह्म की भावात्मक शक्ति मानते है तथा अविद्या को अभावात्मक शक्ति के रूप मे परिकल्पित करते है। उनकी विचारणा है कि माया ईश्वर की उपाधि है, कितु अविद्या जीव की उपाधि है। माया मे सत्त्वगुण की प्रधानता है, अविद्या मे तमोगुण की।

शकराचार्य के परवर्ती महादेवानद सरस्वती ने अज्ञान को भाव रूप माना, जिसके

---

111 तस्मादपकृष्य मायायामविद्या विद्याम च काष्ठ गताया सर्वात्मभावो मोक्ष ।

वृहदारण्यक उपनिषद् शाकरभाष्य 4 3 20

112 तस्मान्न निरवयस्यानेक धर्मत्व दृष्टातोस्ति।

वही 4 3 20

भीतर सत्त्व रज और तम तीनो गुण है। अज्ञान के दो भाग है – (1) माया (2) अविद्या। माया विशुद्ध सत् रूप है, जो जीव की उपाधि है। अज्ञानता के भीतर ज्ञान शक्ति और क्रिया-शक्ति दोनो पायी जाती है।

सदानद ने भी महादेवानद के विचार का समर्थन किया। उन्होने अज्ञान की दो कोटियॉ बनायी – समष्टि अज्ञान और व्यष्टि अज्ञान। समष्टि अज्ञान विशुद्ध सत्त्व युक्त माया है। व्यष्टि अज्ञान मे अशुद्ध सत्त्व की प्रधानता है, जो अविद्या है।

प्रकाशात्मन ने पचपादिका विवरण मे लिखा है कि माया के भीतर विक्षेप शक्ति की प्रधानता है जो दृश्य-प्रपच को उत्पन्न करती है, जबकि अविद्या के भीतर आवरण-शक्ति की प्रधानता है, जो ब्रह्म के स्वरूप का आवरण करती है।[113]

इसप्रकार शकर के अद्वैत वेदात मे माया ही वह शक्ति है जिसके द्वारा नाम-रूपात्मक जगत की प्रतीति होती है। माया के कारण ही शुद्धात्मा स्वय को सासारिक जीव के रूप मे देखती है और इस ससार को सत् के रूप मे स्वीकार करती है। माया से मुक्त होने के बाद जगत का वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है। शकराचार्य ने मायावाद द्वारा ब्रह्म को ही एकमात्र वास्तविक सत्ता के रूप मे प्रतिपादित किया है और जगत के होने का प्रतिपादन किया है। उन्होने मायावाद द्वारा जगत की रचना का तार्किक तथ्य प्रस्तुत किया है। उनकी यह स्पष्ट मान्यता है कि यदि हम सृष्टि को सत्य माने तथा ईश्वर को व्यावहारिक जगत का सृष्टिकर्त्ता माने तो उसकी सर्वव्यापकता और असीमता समाप्त हो जाती है। यदि यह कहे कि प्रकृति ईश्वर के अधीन है और अधीनता के कारण प्रकृति सत् है और उसी के द्वारा सृष्टि का सृजन होता है, तो ऐसी दशा मे दो विकल्प है – प्रकृति या तो ईश्वर का एक अग है या उससे अभिन्न है। पहले विकल्प से ईश्वर सावयव होगा और वह भी अन्य सावयव द्रव्यो द्वारा विनाशी होगा, जोकि वदतोव्याघात है। दूसरे विकल्प के अनुसार प्रकृति को ईश्वर से अभिन्न माने तो प्रकृति से सृष्टि के विकास का अर्थ है ईश्वरीय विकास। फलस्वरूप सृष्टि के विकास के बाद ईश्वर नही रहता, यह मूल सिद्धात नष्ट हो जाता है।

---

113 एकस्मिन्नपि वस्तूनि विक्षेपप्राधान्येन माया आच्छादनप्राधान्येन अविद्या इति व्यवहारभेद ।
(डॉ जगदीश सहाय श्रीवास्तव अद्वैत वेदात की तार्किक भूमिका पृष्ठ 164 पर उदधृत)

यदि ईश्वर मे कोई भी विकार है तो वह निर्लेप निर्विकार आदि गुणो से युक्त नही माना जायगा। शकराचार्य का मायावाद इस समस्या को समाप्त कर देता है। इसके साथ ही यह मायावाद शास्त्रीय सिद्धातो से भी सगत है और भारतीय विचारो के अनुरूप है। कहा जा सकता है कि शकराचार्य ने मायावाद के सिद्धात द्वारा परमार्थिक रूप से ब्रह्म की सत्ता का युक्तिसगत समाधान खोजने का सफल प्रयास किया है। भारतीय दर्शन मे जगत और परमतत्व की व्याख्या को लेकर जो विसगतियॉ है, उनका शकर के दर्शन मे समुचित निराकरण हो जाता है।

ब श्रीअरविद के दर्शन मे माया का स्वरूप

श्रीअरविद ने अपने दार्शनिक चितन मे मानव तथा व्यावहारिक सत्ता के साथ-साथ परमसत् की विशिष्ट सत्ता को भी स्वीकार किया है। यह परमसत् अपनी चेतन शक्ति और शुद्ध आनद के द्वारा सासारिक मानव जीवन और जगत की रचना करता है। श्रीअरविद ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि जब तक परम तत्त्व को स्थिर तथा गतिशील – दोनो पक्षो से अनुभव न किया जाय तब तक विश्व की वास्तविक उत्पत्ति को कोई भी नही समझ सकता है।[114] इस नामरूपात्मक जगत की सत्यता का प्रमाण परमसत् है। श्रीअरविद ने इस सदर्भ मे कहा है कि मनुष्य का अपने सासारिक जीवन मे, इस पार्थिव (भौतिक) शरीर मे, पूर्ण दिव्यता प्राप्त करना सभव है। दिव्यता कोई ऐसी वस्तु नही है, जिसे मन, प्राण और शरीर से बाहर निकलकर ही प्राप्त किया जा सकता है, अपितु सासारिक जीवन मे रहते हुए, अपनी जाति के प्राणियो से सबध बनाये रखते हुए भी मनुष्य के लिए सभव है कि वह एक दिव्य प्राणी बन जाय। केवल सभव ही नही, निश्चित है कि वह देर या सबेर, सभवत देर की अपेक्षा क्षिप्रता से, एक दिव्य प्राणी हो जाय।[115]

श्रीअरविंद ने परमसत् को सच्चिदानद माना है। यह सपूर्ण सृष्टि परमसत् सच्चिदानद

---

114 श्रीअरविंद पाठ मदिर एन्यूवल 1945 पृष्ठ 203

115 एस के मित्रा एन इट्रोडक्शन टू द फिलासफी ऑफ श्रीअरविंद
(डॉ नरेद्र सिह मायावाद के आधुनिक खडन की समीक्षा पृष्ठ 18 पर उदधृत)

की अभिव्यक्ति है। सत् ही शक्ति है। परमसत् ही स्वय के यत्र के रूप मे प्रयुक्त व्यक्तिगत आत्मा है। परमसत् द्वारा प्रयुक्त पार्थिव पदार्थ स्वय वही है। समस्त परिमाणो मे स्वय वही विद्यमान है। अरविद के शब्दो मे समस्त सृष्टि या सभूति इस आत्माभिव्यक्ति के अतिरिक्त कुछ भी नही है। बीज मे से उसी का विकास होता है जो बीज मे विद्यमान है, सत्ता मे पहले से ही अस्तित्ववान है, उसके सभूति के सपर्क पूर्वनिर्दिष्ट है, सभूति के आनद मे पूर्व व्यवस्थित है। [116]

इसप्रकार सपूर्ण व्यावहारिक जगत मे परमसत् सच्चिदानद अवस्थित है। वह अद्वितीय है। स्वय को व्यक्तिगत रूप मे यह मै हूँ के रूप मे व्यक्त करता है। इस रूप मे अनेक क्रीडा करने मे समर्थ अपनी शक्ति से नानाविधि कार्यो को सपादित करता है। उसके कार्य का सपादन आत्मनिर्माण की विभिन्न क्रीडाओ के लिए होता है।[117]

श्रीअरविद के अनुसार समस्त भौतिक पदार्थो का एकमात्र उद्देश्य है–पूर्णता को प्राप्त करना। मानव अपने सीमित ज्ञान और सीमित चेतना के माध्यम से इस पूर्णता को प्राप्त करना चाहता है, किंतु सीमित से असीमित को जान पाना असभव है। अत मानव का अतिम लक्ष्य हो जाता है असीमित चेतना की प्राप्ति। इस असीमित चेतना के माध्यम से ही असीमित सत् की प्राप्ति भी सभव है। इसे पाने के लिए किसी बाहरी स्रोत की आवश्यकता नही है, अपितु यह चेतना आत्मज्ञान और आत्मानुभूति से सत् को प्राप्त करती है। ससार की समस्त ससीम वस्तुएँ शुद्ध सत् चित्शक्ति और आनद की ही सीमित परिकल्पना है। मानव अपनी चेतना की अभिव्यक्ति सासारिक ससीम वस्तुओ मे करता है और जैसे-जैसे उसकी चेतना पूर्ण से पूर्णतर होती जाती है, वैसे-वैसे वह आनुपातिक रूप मे अपनी और सृष्टि की पूर्णता के लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा मे अग्रसर होता चला जाता है।[118]

---

116 All creation or becoming is nothing but this self manifestation Out of the seed there evolves that which is already in the seed, pre-existant in being, Predestined in its will to become, prearranged in the delight of becoming

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 112

117 वही पृष्ठ 112

118 डॉ नरेद्र सिंह मायावाद के आधुनिक खण्डन की समीक्षा पृष्ठ 19

श्रीअरविंद का मानना है कि सपूर्ण सृष्टि की पूरी अभिव्यक्ति हेतु परम सत् को सच्चिदानद कहने के साथ-साथ यह भी बताना आवश्यक है कि उसका नामरूपात्मक जगत मे अभिव्यक्त होने का माध्यम क्या है? यहॉ पर श्रीअरविद कहते है कि सच्चिदानद किसी शक्तिशाली अधिनायक की भॉति बिना किसी उत्तरदायित्व के, केवल जादू से विश्व का निर्माण नही करता है अपितु उसका एक नियम है। जब हम उस नियम की व्याख्या करते है तो यह विश्व शक्ति-क्रीडा के सतुलन के रूप मे दिखायी देता है।[119]

वेदात की तरह श्रीअरविद भी मानते है कि सृष्टि सत् की अभिव्यक्ति है। आह्लाद सृष्टि का रहस्य है। उपनिषदो ने भी आनद मे ही सृष्टि का अस्तित्व और परिणति माना है। अत सृष्टि आनद का खेल है और यही 'लीला का अर्थ है। विश्व चेतना मे एक आत्म निर्णायक शक्ति है जो स्वय के सत्य के अवलोकन के साथ ही रचनात्मक शक्ति को सत् के साथ जोडकर लौकिक अभिव्यक्ति का नेतृत्व भी करती है।

यह सृष्टि जिसके हम भी अश है स्पष्ट रूप से हर क्षण प्रवाहशील अनुभूत होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई शक्ति है जो इसके भीतर निरतर कार्यरत है। परतु जब हम इसके कारण या प्रयोजन को तलाशते है तो पाते है कि इसकी सपूर्ण क्रियाएँ आह्लादपूर्ण क्रियाएँ है। सृष्टि का हर ताल, हर लय, हर गति आनद की ही अभिव्यक्ति है। जो इस सत्य को समझता और अनुभव करता है वही उसका अश बन जाता है। अर्थात् जगत परमसत् का अश है और इस मे व्याप्त आनद ही 'लीला' है। यही लीला बच्चो के अबोध आह्लाद मे कवि की आनदपूर्ण अभिव्यक्ति मे दृष्टिगत होता है। सृष्टि परम सत् खेल है। वही खेल है वही खिलाडी, वही क्रीडास्थल है। यह सपूर्ण अभिव्यक्तियॉ आनद की ही है।

श्रीअरविद ने अभिव्यक्ति की प्रक्रिया का अनुभव कर एक नियम की स्थापना की है। इस प्रक्रिया को उन्होने एक नियम के अनुसार बॅधा हुआ पाया है। यह नियम ही 'माया' कहा जा सकता है। श्रीअरविंद के अनुसार, सच्चिदानद की कल्पना ऐसे जादूगर से नही की जा सकती जो अपनी जादुई छड़ी घुमाकर सारे खेल खेला दे। इस सपूर्ण प्रक्रिया मे एक निश्चित नियम मिलता है। इसे ही श्रीअरविद माया कहते है।

---

119 डॉ नरेद्र सिंह मायावाद के आधुनिक खण्डन की समीक्षा पृष्ठ 19

श्रीअरविंद और माया

भारतीय परपरा मे माया सबधी चर्चा की अपनी विशिष्टता है। सामान्यत माया सबधी विचार दो रूपो मे प्राप्त होता है। श्रीअरविंद के अनुसार माया अपने मूल अर्थो मे सत् चेतना का आलिंगन करना, मापना और उसे सीमित करना है तथा उसके माध्यम से विश्व का सृजन करना है। यह वह तत्व है जो आकारविहीन को रूपाकार देता है। यह मनोवैज्ञानिक है तथा अज्ञात आकृतियो को ज्ञात कराता है। असीमित सीमित के रूप मे जान पडता है। आगे चलकर माया शब्द का अर्थ हुआ – ज्ञान का वास्तविक रूप, क्षमता, भ्रम, धोखा चालाकी। यह भ्रम या इद्रजाल की आकृति है, जो दार्शनिक व्यवस्था के रूप मे व्याख्यायित की गयी।[120]

श्रीअरविद की यह मान्यता है कि माया का प्रारभिक अर्थ सीमित था तथा काल-क्रम मे इसका अर्थ विकृत हुआ। कालातर मे विकसित अर्थ ही अधिक प्रचलित हुआ। वास्तव मे माया क्रियात्मक और सर्जनात्मक शक्ति मानी गयी, जो असीम को सीमित करती है तथा अज्ञात को ज्ञेय बनाती है, किंतु माया का यह मूलार्थ कालक्रम मे उपेक्षित हुआ। कुछ सीमित अर्थ मे यह मात्र भ्रम उत्पन्न करने की शक्ति के रूप मे परिकल्पित हुई। भ्रम तथा छलावा इसका दूसरा नाम है। दार्शनिक विचारो मे माया के इस दूसरे अर्थ ने ही प्रमुखता ले ली।

श्रीअरविद ने 'माया' के विकृत अर्थ को स्वीकार नही किया। उनका तर्क है कि उस अर्थ को यदि स्वीकार किया जाता है तो जगत को भ्रम मानना आवश्यक हो जायगा। परमसत् के समान वास्तविक न होने के आधार पर जगत अवास्तविक नही कहा जा सकता है। जगत परिवर्तनशील है, किंतु यह निरपेक्ष सत् से सबद्ध है, यह सदा व्यक्त है। किसी भी काल मे निरपेक्ष सत् की कल्पना बिना जगत के हो ही नही सकती। माया जगत के इस वास्तविक स्वरूप से सबधित है।

जगत सबधी व्यवस्था का सही निरूपण करने के लिए मायावादियो और विज्ञानवादियो

---

120 श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 95

ने अपने-अपने तर्क प्रस्तुत किये है। भारतीय दर्शन मे माया की चर्चा अन्य किसी भी सत्ता के मिथ्या बताने के लिए की जाती है। ऋग्वेद के अनुसार, माया के प्रभुओ ने परमदेव की माया से सब कुछ को आकार दिया। दिव्यदृष्टि वाले पितरो ने उस परमदेव का गर्भस्थ शिशु की तरह अपने अदर आधान किया।[121] इसके विपरीत विज्ञानवादी विचारको ने मनस् को सृजनात्मक तत्त्व के रूप मे रखा है तथा केवल मन, विचार या प्रत्ययो की क्रियाओ को ही वास्तविक कहा है। इसके अलावा किसी अन्य सत्ता की वास्तविकता को वे नही मानते है। साख्य दर्शन और हेगल दर्शन विज्ञानवादी सिद्धात का प्रतिनिधित्व करता है। इन दोनो की दार्शनिक विचारधाराओ के कारण परमतत्त्व और व्यावहारिक जगत के बीच विवाद उत्पन्न हुआ किंतु श्रीअरविद ने अपनी मायावादी विचारधारा मे अधिक गहराई के साथ इन विवादो को दूर करने का प्रयास किया।

श्रीअरविद ने माया को मिथ्या नही माना है। उनका मत है कि माया सच्चिदानद की वास्तविक तथा सृजनात्मक शक्ति है तथा इसके द्वारा जिस नामरूपात्मक जगत की रचना होती है, वह भी सत्य तथा वास्तविक है। चेतना तत्त्व का सत् समस्त प्रारूपो को सहायता प्रदान करता है और स्वय को उसमे अभिव्यक्त करता है। यदि जगत जैसी अवस्था है तो भी सत्य है, जिस रूप मे स्वप्न सत्य होते है। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, श्रीअरविद ने माया के प्रारभिक अर्थ को स्वीकारा है। अर्थात् माया शक्ति है जो नामरूपात्मक जगत की रचना करती है। यह वास्तव मे सच्चिदानद की शक्ति है, जो अनत सत् को सीमित रूप प्रदान करती है, जो पूर्ण की पूर्णता को पृथक-पृथक तत्वो मे व्यक्त करती है, जो सत् को सीमित सत् मे, चेतना को सीमित चेतना मे, अनत आनद को सीमित आनद मे परिणत कर देती है। इस अभिव्यक्ति से सच्चिदानद का स्वरूप खण्डित नही होता है।

यह सत्य है कि श्रीअरविंद ने माया के प्रारभिक अर्थ को ही स्वीकार किया है, कितु कुछ विशेष सदर्भो मे उन्होने माया के विकृत अर्थ का भी उपयोग किया है। अगर हम

---

121 मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षस पितरो गर्भमादधु।

ऋग्वेद 9 83 3

पूर्ण सत् को देखते है तो यह ब्रह्माण्डमूलक भ्रम (Cosmic Illussion) प्रतीत होता है। इस सदर्भ मे जगत को माया कह सकते है, जो परम सत् या अतिम सत् नही है। श्रीअरविंद का मानना है कि सबसे पहले माया के इसी स्वरूप को अनुभूत या स्वीकार करना आवश्यक है क्योकि भ्रम से निकलने के लिए भी भ्रम को समझना जरूरी होता है। इस विचार से यह जगत भ्रम होते हुए भी, अपने अदर एक वास्तविकता को समेटे हुए है।। इसीलिए मानव अपने मानसिक स्तर के अनुरूप अपने ढग से जगत के सबध मे सीमित परिभाषा देते हुए उसे ब्रह्माण्ड सबधी भ्रम कहता है। परतु इसके द्वारा हम अपनी सीमित वैचारिक कोटियो को असीम से जोड लेते है।

वस्तुत श्रीअरविद ने माया को 'ऋत-चित्' कहा है। उनके अनुसार, 'यह शब्द मैंने ऋग्वेद से लिया है। ऋत-चित् का अर्थ है सत्ता के तात्त्विक सत्य की चेतना (सत्यम्), सक्रिय सत्ता के व्यवस्थित सत्य की चेतना (ऋतम्) और विस्तृत आत्म-अभिज्ञता (वृहत्)। केवल इसी मे यह चेतना सभव है।[122] माया चित् शक्ति का ही सृजनात्मक अश है, जो सच्चिदानद की अनत सत्ता नाम और रूप का अतर्दर्शन करता है, उन्हे अपने भीतर धारण करता है और उन्हे आकार भी देता है। वेद माया को मिथ्या के अर्थ मे न ग्रहण करके सृजनात्मक शक्ति मानते है। माया सृजनात्मक है, जो यथार्थ परमतत्व से सत् पदार्थो का सृजन करती है। यहॉ परिसीमन का अर्थ है वस्तुसत्ता के नामरूप का निर्माण करना। माया सच्चिदानद की सत्ता के सत्य-अश को अभिव्यक्त करती है। माया द्वारा पारमार्थिक सत्ता के अभेद चैतन्य को जिसमे सबकुछ सबकुछ मे विद्यमान होता है, प्रपचात्मक सत्ता के भेद-अभेद चैतन्य के रूप मे अभिव्यक्त करती है। इस भेदात्मक चैतन्य के भीतर प्रत्येक मे सबकुछ और प्रत्येक सबकुछ मे विद्यमान होता है।[123]

श्रीअरविंद माया को शून्य मे जाल बुनने वाली किसी अनिर्वचनीय शक्ति के रूप मे नही मानते है। माया परमतत्त्व की एक क्रीड़ा है, एक लीला है। लीला या क्रीड़ा से तात्पर्य

---

122 "I take the phrase from the Rigveda rita chit, which means the consciousness of essential truth of being (Satyam), of orderd truth of active being (Ritam) and the vast selfawareness (Brihat) in which alone this consciousness is possible" द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 117

123 डॉ नरेद्र सिंह मायावाद के आधुनिक खण्डन की समीक्षा पृष्ठ 20

यह है, कि जगत परमतत्त्व की स्वतत्र और स्वच्छद अभिव्यक्ति है। श्रीअरविंद के शब्दो मे, एक से अनेक का रूप धारण करना सत् की सत् के साथ, चेतना की चेतना के साथ, शक्ति की शक्ति के साथ तथा आनद की आनद के साथ क्रीडा हेतु होता है।'[124] इसके पीछे कोई हेतु नही है। श्रीअरविद के शब्दो मे, जो सत् अपनी चेतना की शक्ति और उसके शुद्ध आनद द्वारा लीला और सृजन करता है, वही जो कुछ हम है, उसका वास्तविक रूप है। वह हमारे सभी बाहरी आचारो और आतरिक वृत्तियो की आत्मा है, हमारी सभी क्रियाओ हमारे सभी सभवन एव सृजन का कारण, उद्देश्य और लक्ष्य है। जिसप्रकार कवि, कलाकार या सगीतकार जब कोई रचना करता है तो वह वास्तव मे कुछ नही करता है केवल अपनी अनभिव्यक्त आत्मा की किसी सभाव्यता को अभिव्यक्ति देता है और जैसे कोई विचारक, राजनेता, यात्रक वस्तुओ के रूप मे केवल उसी अश को बाहर लाता है, जो उनके भीतर छिपी हुई थी, स्वय उनका रूप थी और बाह्य रूपो मे ढाले जाने पर भी उनका आत्मरूप ही बनी रहती है। यही बात जगत और शाश्वत के बारे मे भी है। समस्त सृष्टि या सभूति इस अभिव्यक्ति के सिवा कुछ नही है।[125]

सृष्टि रूपी लीला से परमसत् सच्चिदानद ने स्वय को विभेदो, सीमाओ, अधकार और अनत विभाजनो मे परिव्याप्त कर लिया है। इसी कारण सृष्टि के हर कण मे एक ही सत्, एक ही चित् और एक ही आनद विद्यमान रहता है। सीमित बुद्धि द्वारा इस जगत को पकडने के प्रयास मे यह किसी ऐद्रजालिक के इद्रजाल की तरह प्रतीत होता है, जबकि वस्तुत यह है नही। व्यावहारिक जगत मे मानव सृष्टिकर्त्ता शक्ति और उसके उपादान मे भेद करते है। किंतु अति मानसिक चेतना के स्तर पर दोनो मे कोई भेद नही है। एक सत्, चित्, शक्ति और आनद सत्ता के समस्त रूपो मे विद्यमान रहता है। यह पृथकता तो है, किंतु विभाजन या विच्छिन्नता नही है। अत परमसत् सच्चिदानद की अभिव्यक्ति को सृष्टि के रूप मे समझने के लिए दोनो ही स्तरो पर उसके स्वरूप और अर्थ को समझना आवश्यक है।[126]

---

124 श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन भाग 1 पृष्ठ 137

125 वही पृष्ठ 137

126 All is in each and each is in all for the play of existence with existence, consciousness with consciousness, force with force, delight with delight

वही पृष्ठ 115

माया द्वारा सृजित सत्ता के दो स्तर

परमतत्त्व का सत् समस्त प्रारूपो को सहायता देता है और स्वय को उसमे अभिव्यक्त करता है। मन शरीर और जीवन परमतत्त्व का निम्नतर स्तर और आशिक अभिव्यक्ति है। किंतु श्रीअरविंद का मत है कि सृष्टि केवल निम्नतर स्तर पर ही नही होती, बल्कि उच्चतर स्तर पर भी है। निम्नतर स्तर का लक्ष्य स्वय के नानारूपात्मक विकास द्वारा उच्चतर स्तर की अभिव्यक्ति करना है। सच्चिदानद की सृजनात्मक चित्शक्ति के द्वारा उच्चतर और निम्नतर लोक मे सृष्टि की अभिव्यक्ति होती है। अत सृष्टि करने वाली जिस शक्ति को माया कहा जाता है उसके द्वारा दो स्तरो पर सृष्टि की अभिव्यक्ति होती है – उच्चतर स्तर और निम्नतर स्तर। श्रीअरविंद ने इन दोनो स्तरो को एक-दूसरे से सपृक्त माना है।[127]

उनके अनुसार भागवत् सत्ता शुद्धसत्, चित्शक्ति और आनद से होते हुए सर्जनात्मक अतिमानस के माध्यम से विश्व-सत्ता मे आती है। हम जड-तत्त्व से विकसनशील जीवन, अतरात्मा और मन से होते हुए प्रदीप्त अतिमानस के माध्यम से भागवत् सत्ता तक आरोहण करते है। अपरार्ध और परार्ध ग्रथि के मध्य जहॉ मन और अतिमानस मिलते है, एक परदा होता है। इस परदा को हटा देना ही मानवता के लिए भागवत् जीवन की शर्त है, क्योकि इस परदे को हटाने से ही प्रदीप्त उच्चतर का निम्नतर सत्ता मे अवतरण और निम्नतर का उच्चतर सत्ता मे शक्तिशाली आरोहण हो सकता है। मन अपने दिव्य प्रकाश को सर्वसमावेशी अतिमानस मे प्राप्त कर सकता है, अतरात्मा सर्व-आनदमय आनद मे अपने दिव्य स्वरूप को प्राप्त कर सकती है। जीवन सर्वज्ञ चित्-शक्ति की क्रीडा के भीतर अपनी दिव्यशक्ति को ग्रहण कर सकता है और जड-तत्त्व दिव्य सत्ता के भीतर ही अपनी दिव्य स्वतत्रता को उद्घाटित कर सकता है।[128] असीमित चैतन्य सर्वप्रथम अपने को ज्ञान की असीमित शक्ति या सर्वज्ञ के रूप मे परिवर्तित करता है। किंतु यह ज्ञान मस्तिष्क या मानव बुद्धि के द्वारा

---

127 डॉ नरेद्र सिंह मायावाद के आधुनिक खण्डन की समीक्षा पृष्ठ 21

128 "The deivine descends from pure existence as a form of the devine existence "

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 264 265

नही प्राप्त किया जा सकता। यद्यपि बुद्धि द्वारा पारमार्थिक सत् को जानने का प्रयास किया जाता है, लेकिन उसकी प्राप्ति नही होती है। बुद्धि एक ऐसी शक्ति है जिसके माध्यम से विश्वसनीय सत्ता को व्यावहारिक प्रयोग हेतु अशत विश्लेषित किया जाता है। सामान्यत असीमित बुद्धि की कल्पना करने पर हम उसे समस्त सीमाओ से परे विश्व स्रष्टा के रूप मे मानते है लेकिन श्रीअरविद इसे नही मानते। उनका कहना है कि ऐसा असीमित मस्तिष्क नानारूपात्मक सीमित सबधो से युक्त मस्तिष्क से परे होगा। वह सर्वज्ञ, असीमित एव सर्वव्यापी होगा तथा पारमार्थिक भी होगा। श्रीअरविद ने शून्यवाद और भ्रमवाद आदि दार्शनिक विचारो का खण्डन किया, जिसके अनुसार, समस्त जागतिक वस्तुओ का अस्तित्व असभव है। उनका मानना है कि जिस क्षण मानव मस्तिष्क उच्च मौलिक शक्ति प्राप्त कर लेता है उसी क्षण उसे इन दार्शनिक विचारो की अविश्वनीयता ज्ञात हो जाती है।

श्रीअरविद ने दो लोको और दो स्तरो की सृष्टि को मान्यता दी है। इसलिए उन्होने न केवल माया द्वारा निम्न लोक की सृष्टि को माना है बल्कि माया द्वारा उच्चतर लोक की सृष्टि को भी स्वीकार किया है। माया दो स्तरो पर दो रूपो मे कार्य करती है। एक स्तर पर वह निम्नतर माया या अदिव्य माया है, जो निम्नतर जगत की सृष्टि करती है और दूसरे स्तर पर वह उच्चतर माया या दिव्यमाया है, जो उच्चतर जगत की सृष्टि करती है। यहॉ माया के दो स्तरो का अर्थ यह नही है कि तत्त्वत माया के दो भेद है। सृजनात्मक शक्ति के रूप मे तो माया एक है, किंतु इसकी अभिव्यक्ति के दो स्तर या दो रूप है। जब यह कहा जाता है कि माया एक मे सब को और सब को एक मे भरने-निकालने का खेल है, तो इस कथन से माया के दो रूपो और उसकी अभिव्यक्ति के दो स्तरो की ओर ही सकेत किया जाता है।[129]

निम्नतर लोक मे अदिव्य माया द्वारा जगत की सृष्टि होती है। इस लोक मे माया परमतत्त्व को मानव के समक्ष अलग अलग रूपो मे प्रस्तुत करती है। परतु सब कुछ उसमे अपृथक् रूप से विद्यमान नही है। यह माया का आभासात्मक रूप है। मानव को माया के इस रूप से भागना नही चाहिए और न ही इससे जगत के मिथ्यात्त्व को स्वीकार करना चाहिए। यह सत्य है कि अदिव्य माया द्वारा रचित निम्नतर लोक मे सृष्टि केवल आभास

---

129 श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 115

और अज्ञान से युक्त है, किंतु इससे यह नही समझना चाहिए कि वह अयथार्थ या मिथ्या है। अदिव्य माया से मानव स्वय के एकात्मक चेतना के बोध को विस्मृत कर सकता है लेकिन इस कारण से जगत त्याज्य या मिथ्या नही हो जाता है। श्रीअरविंद के अनुसार अदिव्य माया द्वारा निम्नतर जगत की सृष्टि का औचित्य मात्र इतना है कि यह विभाजन अधकार, सघर्ष और कष्ट के साथ ईश्वर का ही खेल है। इसमे ईश्वर उसी शक्ति से नियत्रित होता है, जो शक्ति उससे निकली हुई है। वह उस शक्ति के अँधेरे से अपने आपको आच्छादित होने देता है।[130] हमारे लिए यह उचित नही है कि हम माया को मिथ्या या त्याज्य कहकर उससे अलग हो जायॅ। श्रीअरविद के अनुसार, पहले हमे निम्नतर और अदिव्य माया का आलिगन करना होगा, इसके बाद उसका अतिक्रमण करना होगा।[131] यहॉ पर माया के आलिगन या अतिक्रमण का तार्किक अभिप्राय दो दृष्टियो से समझना चाहिए। पहली दृष्टि से अदिव्य माया मिथ्या या त्यागने योग्य नही है। इसके कारण मानव का भौतिक तथा व्यावहारिक जगत प्रभावित होता है। इस स्तर को उपेक्षित नही किया जा सकता है। दूसरी दृष्टि से, माया को जाने बिना और उसके साथ अभ्यस्त हुए बिना मानव जगत के परिवर्तन को समझा भी नही जा सकता है। व्यावहारिक जगत एक क्रमिक विकास से ही चलता है। इसीकारण उच्चतर चेतना की दृष्टि और प्रभाव से जीवन और जगत की वर्तमान अवस्था को बदलना आवश्यक हो जाता है। अगर मानव जीवन को, इस जगत को निम्नतर माया की भ्रमात्मक दृष्टि मानेगे और उसका व्यवहार नही करेगे तो उच्चतर चेतना की दृष्टि तथा प्रभाव से उसका रूपातरण सभव नही है। इसीकारण सबसे पहले मानव को आत्मसात् करना होता है, फिर उसे पूर्णत परिवर्तित करना होता है।

माया के अतिक्रमण का अर्थ माया के निम्नतर या अदिव्य स्वरूप के ज्ञान के पश्चात् उसे मिथ्या, अग्राह्य, अव्यवहार्य घोषित करना है। यहॉ माया के अतिक्रमण से यही अर्थ निकलता है कि चेतना के विकासक्रम मे भौतिक जीवन और जगत की वर्तमान अवस्था सृष्टि का एक स्तर है। यह सृष्टि का अतिम या सपूर्ण स्वरूप नही है। हमे जीवन एव जगत

---

130 श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 116

131 वही पृष्ठ 116

के पूर्ण स्वरूप की उपलब्धि के लिए निम्नतर माया की निम्नतर सृष्टि से ऊपर उठकर चेतना तथा सत्ता के उच्चतर स्तरो की ओर आरोहण करना होगा। इस आरोहण के अर्थ मे ही निम्नतर माया या अदिव्य माया के अतिक्रमण का प्रश्न उत्पन्न होता है।[132]

उच्चतर लोक की सृष्टि दिव्यमाया द्वारा होती है। माया का दिव्य रूप मानसिक सीमा तथा विभाजनो के कारण मानव के लिये अस्पष्ट रहता है। परतु जिस समय मानव निम्नतर लोक को पहचान लेता है, उस समय उच्चतर लोक की सीमा मे प्रवेश कर जाता है। यह दिव्यमाया अति मानसिक चेतना की क्रीडा है। जगत की सपूर्ण सभाव्यताएँ इस परमतत्त्व मे विद्यमान रहती है। इस स्तर पर विविधता तो होती है किंतु विच्छिन्नता नही होती है। उच्चतर माया द्वारा दिव्य लोक की सत्ताओ और स्तरो की रचना मे मूलसत्ता और चेतना से एकत्त्व की पृष्ठभूमि सतत विद्यमान रहती है। इस स्तर पर दिव्यसत्ता न केवल उच्चतर माया की शक्ति की पकड से बाहर हो जाती है, बल्कि उस शक्ति पर अधिकार कर लेती है।[133] यह सच है कि निम्नतर जगत मे परमसत्ता निम्नतर माया के वश मे रहती है। माया का उस पर नियत्रण होता है। उच्चतर जगत मे परमसत्ता उच्चतर माया से स्वतत्र हो जाती है। इस स्तर पर वह माया की शक्ति पर नियत्रण कर लेती है। परमसत्ता उस ज्योतिर्मयी शक्ति के माध्यम से अपने उद्देश्य की पूर्ति करती है, जिसके लिए वह सर्वप्रथम प्रगट हुई थी।

इसतरह माया निम्नतर और उच्चतर लोक मे रचनात्मक और वास्तविक होते हुए भी पहले स्तर पर बधनकारी और दूसरे स्तर पर विमुक्तकारी हो जाती है। निम्नतर और उच्चतर माया का यह भेद ही विचार और जागतिक सत्य के बीच की वह कड़ी है, जो निराशावादी या मायावादी दर्शनो मे छूट जाती थी, उपेक्षित रहती थी। उनकी दृष्टि मे मानसिक माया ने या शायद किसी अधिमानस ने जगत की रचना की है और निश्चय ही मानसिक माया द्वारा बनाया गया जगत एक ऐसा विरोधाभास होगा जिसकी व्याख्या नही की जा सकती। वह सचेतन सत् का एक निश्चित, फिर भी उतराता हुआ दु स्वप्न होगा,

---

132 डॉ नरेद्र सिंह मायावाद के आधुनिक खण्डन की समीक्षा पृष्ठ 237

133 वही पृष्ठ 237

जिसे न तो भ्राति मे गिना जा सकता है, न वास्तविकता मे। देखा जाय तो मन ज्ञान और अपने कार्यो मे बदी अतरात्मा के बीच की एक भूमिका है।[134] दिव्यसत्ता अपनी योगमाया के अवगुठन के भीतर से काम करती है। इस तथ्य को गीता ने भी स्वीकारा है।[135] श्रीअरविंद भी कहते है कि जगत मे जो कुछ भी कार्य होते है, उसमे ईश्वर अपनी शक्ति का आश्रय लिए हुए प्रत्येक कार्य के पीछे रहते है। पर यह उनका योगमाया से समावृत रहना है और इस अपरा प्रकृति मे उनका जो कार्य होता है वह जीव के अहकार से होता है।[136]

माया के इन स्वरूपगत विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह वास्तविक तथा रचनात्मक है। यद्यपि इसके दोनो स्तर अपने स्वरूप, कार्य और प्रभाव मे भिन्न है। इसीकारण श्रीअरविद ने निम्नतर माया को पहले स्वीकारने तथा उसके बाद उसका अतिक्रमण करने को प्राथमिकता दी है। दूसरी ओर, उच्चतर माया का पहले अतिक्रमण, बाद मे आलिगन की बात कही है। दिव्यमाया के माध्यम से व्यक्त उच्चतर जगत मे चेतना तथा सत्ता की परतो मे मानव चेतना के आरोह-क्रम को पहले ग्रहण किया जाता है, उसके बाद अवरोह-क्रम को ग्रहण करते है। इसका कारण यह है कि दिव्यमाया के माध्यम से सृजित दिव्य स्तरो के प्रति आकर्षण भी आरोहण के विकास क्रम को बाधित करने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अगर मानव उच्च लोक की चेतना के उस विशेष स्तर पर पहुॅच कर उसी के सुखोपभोग मे व्यस्त हो जायगा तो वह उस स्तर से आगे बढ़ने मे सक्षम नही होगा। पहले हमे दिव्यमाया द्वारा रचित उच्चतर लोक के विभिन्न स्तरो का अतिक्रमण करना होगा, उस पर विजय पानी होगी तभी हम उस स्तर से आगे बढकर दिव्यमाया द्वारा रचित चेतना और सत्ता के अन्य उच्च स्तरो तक पहुॅच सकेगे। एक बार जब दिव्यमाया सपूर्णतया वशवर्ती या विजित हो जायगी और मनुष्य की चेतना उच्चतर लोक के शीर्ष पर पहुॅच जायगी तब पुन वहॉ से अवरोही क्रम मे हम दिव्यमाया को आलिंगित करते हुए

---

134 श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 116

135 नाह प्रकाश सर्वस्य योगमाया समावृत।

भगवदगीता 7 25

136 ' In all that is done in the Universe, the Divine through his Shakti is behind all actions, but he is veiled by his Yogmaya and works through the ego of Jiva in lower nature "

श्रीअरविंद द मदर शताब्दी सस्करण भाग 25 पृष्ठ 5

उसके द्वारा रचित उच्चतर लोक की चेतना और सत्ता के समस्त स्तरो का उपभोग करते हुए दिव्यसत्ता की दिव्यलीला मे निमग्न रह सकेगे।[137]

पारलौकिक चेतना एक और अपरिवर्तनशील है। परतु निम्नतर स्तर पर यही परिवर्तनशील और अनेक है। इसे स्वय के अद्वितीय रूप का बोध है तथा स्वय मे छिपी हुई अनेकता को एक मे सम्मिलित करने की क्षमता भी है। यह अनेक की सृष्टि तो करती है लेकिन स्वय को उसमे समाहित नही होने देती। मानव इस अद्वितीय को सत्, चित् तथा आनद तीनो द्वारा अभिहित करते है। यहॉ यह प्रश्न विचारणीय है कि अद्वितीय होकर तीन स्तरो वाला होना क्या सभव है? इसके उत्तर मे श्रीअरविद का कहना है कि वस्तुस्थिति ऐसी नही है। जो सत् है, वही चित् भी है और जो चित् है, वह आनद भी है। सत् चित् और आनद – तीनो को पृथक रूप मे देखना भ्रातिपूर्ण है। इनमे, वास्तव मे, भेद नही है।

मायाजन्य मस्तिष्क अनेकता को ही सत् के रूप मे स्वीकार करता है। परतु स्थिति इसके विपरीत अभेद की है। यह सच है कि मस्तिष्क सभी वस्तुओ के सामूहिक रूप एव उन सब मे स्थित समानता का आकलन कर सकता है पर अतिम एकता और पूर्ण असीम इसकी पहॅुच से दूर है। यह कहा जा सकता है कि मस्तिष्क और श्रेष्ठतम ज्ञान यहॉ विरोधी के रूप मे सामने है। इस विरोध को समाप्त करने के लिए श्रीअरविंद कहते है कि अगर हम यह अनुभव करे कि मस्तिष्क केवल चेतना का पूर्व रचनात्मक प्रारूप है तो समस्या का हल आसानी से मिल जाता है। मस्तिष्क मुख्य ज्ञान न होकर सश्लेषण तथा विश्लेषण का एक यत्र मात्र है। यह किसी वस्तु के एक अश मात्र को अनेक रूपो मे विभाजित कर, उसे ही पूर्ण रूप मानता है तथा इस पूर्ण के अनेक अगो की अलग-अलग वस्तुओ के रूप मे व्याख्या करता है। मस्तिष्क मात्र अशो के बारे मे ही निश्चित ज्ञान दे सकता है। सपूर्ण ज्ञान इसकी सीमा से परे है।

मानव मस्तिष्क का एकमात्र उद्देश्य द्रव्ययुक्त अधकारपूर्ण चेतनता को दीक्षित करना है। मस्तिष्क इस अधकारपूर्ण चेतनता की अधमूल प्रवृत्तियो, अव्यवस्थित अतरात्माओ और व्यर्थ के प्रत्यक्षो को तब तक प्रकाशित करता है जब तक कि यह पूर्ण प्रकाश अथवा

---

137 डॉ नरेद्र सिंह मायावाद के आधुनिक खण्डन की समीक्षा पृष्ठ 25

उत्क्रमण के अतिम स्तर तक नही पहुँच जाता है। इसप्रकार श्रीअरविद के अनुसार, मस्तिष्क एक मार्ग है न कि श्रेष्ठतम प्राप्य स्थान। मस्तिष्क जब अपनी सीमाओ का अतिक्रमण कर पूरे विश्व को पारमार्थिक सत् से उत्पन्न और उसी मे स्थित देखता है तो यह उसकी अतिमानस की स्थिति होती है। ब्रह्म का वृहत् आत्मविस्तार ही अतिमानस है। यह विवेक द्वारा सत् चित् एव आनद का विकास करता है। यह इनका विभागीकरण न होकर पृथकीकरण है।[138]

मानसिक स्तर पर ज्ञान की चेतना, इच्छा की चेतना से पृथक होती है लेकिन अतिमानस वाले प्राणी मे ज्ञान एव इच्छा की चेतना एक दूसरे से पृथक नही होती है। अतिमानस स्तर पर वे विभिन्नताएँ भी नही मिलती है, जो मानसिक स्तर पर पायी जाती है। अतिमानस का क्षेत्र अति विस्तृत होता है। यह एकता से प्रारभ करता है, न कि विभाजन से। विभिन्नताएँ इसके लिए गौण है। इसकी महान चेतना मे एक विचार का दूसरे विचार से, एक इच्छा या शक्ति का दूसरी इच्छा या शक्ति से सघर्ष नही होता। इसकी चेतना मे सभी विचार एव इच्छाएँ सकलित एव सबधित रहती है। इसमे विचारो एव इच्छाओ के पारस्परिक विरोध की सभावना नही है।

श्रीअरविंद के अनुसार, विश्व की समस्त वस्तुएँ तत्त्व, चेतना, इच्छा और शक्ति की दृष्टि से एक है। परतु इनमे विभिन्नता की असीमित क्षमता होती है, जिसके द्वारा यह विस्तार प्राप्त करते है। यद्यपि ये अपनी एकता को नष्ट नही होने देते है। वेदात दर्शन के अनुसार अनेकता भ्रम है तथा यह माया द्वारा उत्पन्न है। श्रीअरविंद को यह स्वीकार नही है। उनके अनुसार, विश्व के समस्त पदार्थो मे अतत एकता ही है।[139]

श्रीअरविंद के माया सबधी विचारो मे वेदात से भिन्नता दिखती है। श्रीअरविद की

---

138 It establishes a trinity, not arriving like the mind from the three to the one, but manifesting the three out of the one—for it manifests and develops—and yet mantainting them in the unity, for it knows and contains

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 120

139 'Therefore, always, in all mutations and combinations a self-existent and inalienable harmeny '

वही पृष्ठ 122

माया वास्तविक जगत का निर्माण करने मे विश्वास रखती है। माया एकतापूर्ण सत् को अनेकता के रूप मे अभिव्यक्त करती है। अनेकता उस एकतापूर्ण की ऐसी अभिव्यक्ति है जो उसके आनदमयी क्रीडा हेतु है। जड चेतन जगत की अनेक वस्तुओ को इकाइयो के रूप मे सत् मानना सीमित ज्ञान का परिणाम है। धीरे-धीरे ज्ञान द्वारा जब सीमाबद्धता का निराकरण कर उनमे एकता का अनुभव किया जाता है तो अतिमानस की स्थिति प्राप्त होती है। अतिमानस की स्थिति मे अनेकता मे एकता और एकता मे अनेकता का बोध होता है। फलस्वरूप अद्वितीय ब्रह्म ही एकमात्र सत् प्रतीत होता है, जो कि स्वेच्छा से अनेकात्मक जगत मे व्यक्त हुआ अनुभव है।

इसप्रकार श्रीअरविद के दिव्यमाया और अदिव्य-माया या उच्चतर और निम्नतर लोक मे यह भेद स्वीकार किया जाय तो इसे परा और अपराप्रकृति का भेद मानना होगा। वह मानव जिसने इस भेद को व्यवस्थित ढग से आत्मसात् कर लिया है, उसके लिए यह सपूर्ण वास्तविक जगत न तो मिथ्या अनुभूत होता है और न ही मानसिक या वैचारिक व्यवस्था जान पडता है। मानव यह स्पष्ट रूप से अनुभव करता है कि वह एक ही चित् शक्ति है जो अतिमानसिक स्तर पर परा-प्रकृति, द्विव्य या उच्चतर माया कहलाती है, वही दूसरी ओर मानसिक स्तर पर अपरा-प्रकृति, अदिव्य या निम्नतर माया कहलाती है।[140]

शकराचार्य के मायावाद मे श्रीअरविंद के माया सबधी इस भेद को स्वीकार नही किया गया है। काण्ट हेगल तथा विज्ञानवादी बौद्ध दार्शनिको ने भी इस भेद को नही माना है। बौद्धिक चितन मे दोनो सिद्धात अपरामाया तक ही पहुँचते है और निम्नतर मानसिक माया से जगत की व्याख्या करने का प्रयास करते है। परपरागत मायावाद मे शकराचार्य अपरामाया के मूलस्रोत अधिमानस तक जाते है और उसी को लोक मानने लगते है, कितु इस तथ्य को हम बौद्धिक तथा वैचारिक स्तर पर स्पष्ट नही कर सकते है। शकराचार्य ने परामाया को किसी भी रूप मे अपरा माया का स्रोत नही माना है। इसीकारण माया को व्याख्यायित करने मे असफल रहे है और उन्हे माया को सत्-असत्-अनिर्वचनीय कहना पडा है।[141]

---

140 डॉ नरेद्र सिंह मायावाद के आधुनिक खण्डन की समीक्षा पृष्ठ 25

141 डॉ ए सी भट्ठाचार्या श्रीअरविंद दर्शन सस्करण 1973 पृष्ठ 73

माया के दो रूप

श्रीअरविंद की स्थापना है कि निम्नतर और उच्चतर माया का यह भेद ही विचार और जगत के बीच की वह कडी है, जो निराशावादी या मायावादी दर्शनो मे छूट जाती है। उन्होने मानसिक माया या अधिमानस द्वारा जगत की रचना किये जाने की बात स्वीकार की है। ऐसी स्थिति मे मानसिक माया द्वारा रचित जगत निश्चित ही विरोधाभासो से युक्त होगा जिसे व्याख्यायित करना मानव बुद्धि से परे है। वह सचेतन मानव का ऐसा दु स्वप्न है, जिसे न तो वास्तविक कहा जा सकता है, न भ्रम।

श्रीअरविंद का मत है कि माया विश्व की चेतना मे एक निर्णायक शक्ति के रूप मे है जो असीमित, अनिर्देश्य सत् की आत्मप्रबुद्धता की एक क्षमता है तथा जो अपने आप मे किसी सत्य का अवलोकन करती है। इसके साथ ही यह अपनी रचनात्मक शक्ति को उस सत्य के साथ निर्देशित करती है और लौकिक अभिव्यक्ति को महत्त्व देती है। यहाँ श्रीअरविद के विचारो पर वैदिक विचारो का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है, जिसमे कहा गया है कि उन्होने प्रभु और परादेवी के नामो से ज्योति की माता को आकार दिया। उस पराशक्ति के बल को एक के बाद एक वस्त्रो की तरह पहनते हुए, माया के प्रभुओ ने इस सत् मे 'रूप' को आकार दिया है।[142] अतएव श्रीअरविद के अनुसार, यह शक्ति ही माया है। यही माया असीमित सत्ता के विस्तृत असीम परमसत् सच्चिदानद से मिलकर नामरूपात्मक व्यावहारिक जगत की रचना करती है। विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलापो को सपादित करने से माया जिस कारण अतिम सत्ता से अलग हुई थी उन सबको प्रकाशित करती हुई, उन्हे अपने मे आकलित करती है। इसप्रकार वेदात का प्राचीन तथा शाश्वत सत्य विश्व मे, विकास क्रम के आधुनिक और प्रातिभासिक सत्य के पूरे अर्थ को अपने भीतर समाहित कर लेता है, उस पर प्रकाश डालता है, उसे न्यायसगत भी सिद्ध करता है तथा उसके सपूर्ण अर्थ को भी प्रकट करता है। विकास क्रम का यह नवीन सत्य जो वैश्वरेव' के

---

142 तदन्निवस्य वृषभस्य धेनोरानामभिर्मयिरे सक्म्य गो ।
अन्यदन्यसूर्य वसानानि मायिनो ममिरे रूपमस्मि।।

ऋग्वेद 3 387

काल मे स्वय को उत्तरोत्तर विकसित किया और जिसे शक्ति तथा जड तत्त्व के माध्यम से धुँधले रूप मे देखा गया है वह अपना सपूर्ण तथा न्यायसगत अर्थ तभी पा सकता है जब स्वय को वेदात मे सुरक्षित प्राचीन और शाश्वत सत्य के प्रकाश से अवलोकित कर ले।[143] इसीकारण ऋग्वेद मे माया के विषय मे स्पष्ट शब्दो मे लिखा है कि माया के प्रभुओ ने परमदेव की माया से सब कुछ को आकार दिया। दिव्य दृष्टि वाले पितरो ने उस परमदेव का गर्भस्थ शिशु की तरह अपने भीतर आह्वान किया।[144] इस मत का समर्थन करते हुए श्रीअरविंद की मान्यता है कि परमार्थिक सत् की चेतन शक्ति माया वास्तविक तत्त्वो को ही व्यक्त करती है।

शकर और श्रीअरविद की माया सबधी सकल्पना मे मिलने वाले भेद के बावजूद इस बिदु पर समानता है कि दोनो ने माया को जगत की सर्जक शक्ति के रूप मे स्वीकार किया है। दोनो यह मानते है कि माया ही वह कडी है जो ब्रह्म और जगत के बीच अभेद की स्थापना करती है। ऐसी स्थिति मे यह कहा जा सकता है कि माया शकर और श्रीअरविद दोनो के अनुसार परमसत् के ज्ञान मे एक बाधा है। जब तक मनुष्य इस मायारूपी आवरण से अपने को मुक्त नही कर लेता, तब तक ब्रह्म के सत्, चित्त एव आनद की अवस्था से अवगत नही हो पाता। मायारूपी आवरण के हटते ही उसे 'अह ब्रह्मास्मि' का भान हो जाता है और वह जगत एव ब्रह्म के तदाकार से भिज्ञ हो जाता है। ऐसी अवस्था परम आह्लादकारी मानी गयी है, क्योकि आत्मा सभी विषयो से निर्लिप्त होकर केवल जगत की साक्षी रहती है। इसप्रकार शकर एव श्रीअरविंद दोनो माया की अवधारणा को लेकर अलग-अलग विचार रखते है, फिर भी दोनो का उद्देश्य माया के माध्यम से ब्रह्म एव जगत के सबध तथा उनकी एकता का प्रतिपादन करना है।

□□□

---

143 श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 114

144 मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षस पितरौ गर्भमारघु ।

ऋग्वेद 9 83 3

द्वितीय अध्याय

मायावाद के पक्ष में शंकराचार्य तथा अन्य वेदांतियों के मत

अ मायावाद के पक्ष मे शकराचार्य का मत

माया के पर्यायवाची शब्दो की विवेचना

मायावाद के सबध मे शकराचार्य की अवधारणा

मायावाद की स्थापना मे दिये गये शकर के तर्क

1 परब्रह्म की शक्ति के आधार पर मायावाद की स्थापना

2 अविद्या के आधार पर मायावाद की स्थापना

3 मिथ्यात्त्व के आधार पर मायावाद की स्थापना

ब मायावाद के सबध मे शकराचार्य के अनुयायियो के मत

1 शकर के समकालीन अनुयायी और मायावाद

मण्डन मिश्र सुरेश्वर

पद्मपाद वाचस्पति मिश्र

2 तत्त्वदर्शी विचारक और मायावाद

श्रीहर्ष चित्सुख

विद्यारण्य माधव मधुसूदन सरस्वती

स मायावाद के सबध मे अन्य वेदातियो के मत

रामानुजाचार्य निम्बार्काचार्य

मध्वाचार्य वल्लभाचार्य

चैतन्य महाप्रभु कृष्णदास

जीवगोस्वामी बलदेव विद्याभूषण

द्वितीय अध्याय

मायावाद के पक्ष में शंकराचार्य तथा अन्य वेदांतियों के मत

अ. मायावाद के पक्ष में शंकराचार्य का मत

माया के पर्यायवाची कतिपय शब्दो की विवेचना

शकराचार्य ने माया शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थो मे किया है। वे माया को परमेश्वर की शक्ति,[1] अविद्या,[2] इद्रजाल[3] और मिथ्यातत्त्व के रूप मे प्रस्तुत करते है। माया के यह सभी रूप अविद्या के विविध सबोधन कहे जा सकते है। अविद्यास्वरूप माया ही परमात्मा की बीज शक्ति है।[4] वही जगत के आभास तथा ब्रह्म के तिरोधान का कारण है। शकराचार्य के मायावाद सिद्धात का सार यही है। इससे यह सकेत मिलता है कि उन्हे मायावाद की स्थापना के लिए अपने से पहले के वैदिक, पौराणिक, तात्रिक और दार्शनिक साहित्य को आधार बनाना पडा था। इसमे वैदिक साहित्य का स्थान प्रमुख है। परतु इससे यह निष्कर्ष निकाल लेना उचित न होगा कि ऋग्वेद सहिता उपनिषद् और शाकर-मायावाद एक ही है। ऋग्वेद मे माया प्रज्ञा है, उपनिषदो मे वह रहस्यमयी शक्ति[5] और कुटिलता[6] के

---

1 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 2 1 14

2 कठोपनिषद भाष्य 3 1 122

3 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 1 17 1 3 19 2 1 9 2 1 21 2 1 28

4 प्रश्नोपनिषद भाष्य 1 16 विवेक चूड़ामणि 405

5 वृहदारण्यक उपनिषद 2 15 19

6 प्रश्नोपनिषद 1 16

अर्थ मे प्रयुक्त हुई है जबकि शकराचार्य ने अज्ञान और अविद्या को माया की सज्ञा दी है। अत शकर-पूर्व और शकर के मायावाद मे बहुत मतभेद है। यहॉ डॉ प्रभुदत्त शास्त्री का मत उल्लेखनीय है कि शाकर मायावाद का विचार ऋग्वेद सहिता और उपनिषद् मे मिलता है[7] तथा गफ और डॉ थीबो का विचार कि मायावाद उपनिषद् दर्शन का विकास मात्र है [8] असगत तथा अतार्किक लगता है। वेदात साहित्य को मायावाद का कारण न मानकर मायावाद को उत्तरकाल की देन मानने वाले मैक्समूलर[9] और कॉलबुक[10] अधिक तार्किक प्रतीत होते है जिन्होने यह स्वीकार किया है कि जगत का मिथ्या सबधी विचार तथा कल्पना उपनिषदो और मूल वेदात साहित्य मे नही मिलता है।

माया के पर्यायवाची शब्दो की विवेचना

शकराचार्य अपने से पूर्व प्रचलित माया शब्द को एक भिन्न अर्थ प्रदान करते है। उनकी माया मेदिनीकोष के शाबरी और बुद्धि से, अमरकोष के स्यात्माया शाबरी से, वैदिक कोष ग्रथ निघण्टु तथा निरुक्त से भिन्न है। शकराचार्य के माया के समुचित अर्थबोधक शब्द अविद्या, अज्ञान प्रकृति, अव्यक्त आकाश, अक्षर, अव्याकृत, प्रधान, अध्यास, शक्ति और उपाधि है। एक ओर शकराचार्य ने अविद्या स्वरूप बीज शक्ति को परमसत्ता के अधीन और महामयी महासुषुप्ति के रूप मे अभिव्यक्त किया है। वही दूसरी ओर, उन्होने माया को अज्ञान रूप बताकर सदसद् से विलक्षण के रूप मे स्वीकार करते हुए उसे अनिर्वचनीय

---

7 डॉ पी डी शास्त्री द डाक्ट्रिन ऑफ माया पृष्ठ 36

8 थीबो और गफ के मत के लिए—S B E Vol XXXIV, (1) Introduction, Page 25

9 Maya soon assumed the meaning of Illusion, Decepiton, Fraud, nay it assumed a King of Mythological personality The whole of this development of vedantic thoughts, however is certainly late

थ्री लेक्चर्स आन वेदात फिलासफी पृष्ठ 128

10 That the nation that versatile world is an entire illision (Maya) and that all that passes to the apprehension of the waking individual is but hantasy, presented to his imagination, say that every seeming thing is unreal and all is illusionary, does not appear to be the doctrine of the text of the vedanta

वही पृष्ठ 128

माना है और ईश्वर की शक्ति माया को प्रकृति कहा है।[11] उन्होने माया को अविद्यात्मक बीज शक्ति मानकर उसे अव्यक्त कहा।[12] अविद्या के पर्याय अव्यक्त शब्द का निर्देशन आकाश से होता है।[13] शकराचार्य ने ववचिदक्षर शब्दोदितम्[14] कहकर उसे अव्यक्त ही माना है। यहाॅ ज्ञान के बिना समाप्त न होने के कारण अविद्या अक्षर है। अक्षर, अव्याकृत, नामरूप का बीज ईश्वर की शक्ति का रूप है। शकराचार्य ने अध्यास को भी अविद्या का ही एक रूप बताया है।[15] माया परमेश्वर की महाशक्ति के रूप मे सदैव उपस्थित है।[16] माया ब्रह्म की उपाधि है।[17] अत उसके लिए उपाधि शब्द भी उपयुक्त है। इन शब्दो के अतिरिक्त कुछ स्थानो पर नामरूप तथा प्रपच शब्दो को भी माया के पर्यायवाची रूप मे प्रयोग किया गया है, लेकिन यह शब्द माया के पर्याय रूप मे किसी भी तरह उपयुक्त नही लगते है।

शकराचार्य की मायावाद सबधी अवधारणा

माया के पर्यायवाची शब्दो की विवेचना से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शकराचार्य के मायावाद के सिद्धात की दिशा स्वतत्र और मौलिक है। उनके अनुसार, माया परमात्मा अथवा परमब्रह्म की शक्ति है, जो अनिर्वचनीय है। महादेव शास्त्री का कथन है कि माया व्यावहारिक सत्ता का एक ऐसा नामधेय है, जो वर्ण्य विषय से बाहर है।[18] सुरेश्वराचार्य ने भी माया को युक्ति के द्वारा असिद्ध माना है।[19] शिष्य, गुरु, पिता, पुत्र

---

11 ईश्वरस्य मायाशक्ति प्रकृति । ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 2 1 14

12 अविद्यात्मिकादि बीजशक्तिरव्यक्तनिर्देश्या ।
ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 4 3

13 तदेतदव्यक्त क्वचिदाकाश शब्दनिर्दिष्टम ।
ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 4 3

14 वही 1 4 3

15 वही 1 1 1

16 विवेक चूड़ामणि 108 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 4 3 2 1 14

17 पचदशी तृप्तिदीप प्रकरण 72 श्लोक

18 ए महादेव शास्त्री वेदात डाक्ट्रिन ऑफ श्री शकराचार्य

19 मानसोल्लास 13

आदि सभी भेद माया के कारण ही दृष्टिगत होते है। जडात्मिका होने के कारण माया व्यावहारिक जगत की उत्पत्ति करती है। यह ब्रह्म मे है भी और नही भी है , विरोधात्मक होने से अनिवर्चनीय भी मानी जाती है। माया की तुलना एक छाया-बिब से की जा सकती है। किसी अधे पुरुष का सूर्य से साक्षात्कार नही हो पाता है किंतु उसे सूर्य की छाया अवश्य प्रतीत होती है। यही स्थिति माया की भी है।[20] जिस समय तक मानव को अह ब्रह्मास्मि' का ज्ञान नही होता है, तब तक वह अज्ञानवश वेश्या के चरित्र से युक्त माया की ओर आकृष्ट होकर बधन मे बॅधा रहता है। याचित मण्डन न्याय के अनुसार जिसप्रकार कोई दरिद्र स्त्री किसी धनिक द्वारा आमत्रित होने पर याचित वस्त्राभूषणो को धारण करके उसके घर जाती है और लोग उसे सपन्न समझते है उसीप्रकार सत्य रूप ब्रह्म के सपर्क से माया मे भी सत्यता का आरोप हो जाता है। बधन और मोक्ष की कारणभूता माया अज्ञान की जननी है। अज्ञानी पुरुष माया के बधन मे फॅसे रहने के कारण मुक्त नही हो पाते है। माया के मिथ्यात्त्व का ज्ञान होते ही जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो जाता है। शकराचार्य का मानना है कि मिथ्या अभिमान के कारण ही बधनजन्य दु खो की सत्ता है।[21]

मायावाद के अनुसार ब्रह्म मे दो भेद मिलते है। प्रथम, सगुण ब्रह्म और द्वितीय, निर्गुण ब्रह्म। मायायुक्त ब्रह्म ही सगुण ब्रह्म है तथा मायारहित ब्रह्म निर्गुण ब्रह्म है। सगुण ब्रह्म ही ईश्वर है, जो माया के माध्यम से सपूर्ण जगत का निर्माण करता है। ईश्वर ईश्वरता, सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता से युक्त है जबकि परमार्थ ब्रह्म ईशित, ईशितव्य और सर्वज्ञत्त्वादि से युक्त व्यवहार से अप्रभावित है।[22] परतु एक ही कूटस्थ एव नित्य परमेश्वर माया द्वारा मायावी होने के कारण अनेक रूपो मे दृष्टिगोचर होता है।[23] यद्यपि

---

20 मानसोल्लास 14

21 मिथ्याभिमान भ्रमनिमित्त एव दु खानुभव ।

ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 2 3 36

22 वही 2 1 14

23 एकस्वपरमेश्वर कूटस्थ नित्यो विज्ञान धातुरविद्यया मायया मायावदनेकधा विभाव्यते नान्यो विज्ञानधातुरस्ति।

ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 3 19

वह स्वय माया के प्रभाव से मुक्त रहता है। परमेश्वर स्वय प्रसारित माया का अनायास ही उपसहार करता है। परमार्थत ईश्वर न कर्ता है, न ही लोक धर्मो का स्रष्टा है और न ही कर्म फलो का सयोजन करने वाला है। परमेश्वर किसी के पाप पुण्य आदि को भी ग्रहण नही करता है।[24]

माया की स्थापना हेतु दिये गये तर्क

शकराचार्य का मायावाद जगत को विज्ञानवादी दृष्टिकोण के अनुरूप विज्ञान या कल्पना नही मानता है। इसीलिए उन्होने विज्ञानवादियो के जगत स्वप्न है सिद्धात का खण्डन किया है।[25] शकराचार्य ने माया के आधार पर अनिर्वचनीय जगत की स्थापना की है। अपने दर्शन के महत्त्वपूर्ण तत्त्व मायावाद को स्थापित करने के लिए उन्होने अनेक तर्क प्रस्तुत किये है जिनमे से कुछ इसप्रकार है–

1 परब्रह्म की शक्ति के आधार पर मायावाद की स्थापना

2 अविद्या के आधार पर मायावाद की स्थापना

3 मिथ्यात्त्व के आधार पर मायावाद की स्थापना

1 परब्रह्म की शक्ति के आधार पर मायावाद की स्थापना

शकराचार्य अद्वैत वेदात के कट्टर अनुगामी थे। अद्वैत वेदात के अनुसार, परमार्थत ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है। वह अव्यवहार्य, समस्त प्रपच से रहित, शिव स्वरूप और अद्वैत सत्य है।[26] वह निराकार, निरपेक्ष, सर्वज्ञ, सर्वगत, नित्य, तृप्त एव नित्य-शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव आदि रूपो मे व्यक्त है।[27] ब्रह्म अज है, वह निद्रारहित और स्वप्नशून्य है। वह नित्य

---

24 भगवतगीता 5 14 15

25 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 2 2 24, 2 2 30

26 मुण्डकोपनिषद 1 2

27 नित्य सर्वज्ञ सर्वगतो नित्यतृप्तो नित्यशुद्धबुद्ध मुक्तस्वभावी विज्ञानमानदम ब्रह्म।
मुण्डकोपनिषद 3 2 9

प्रकाशमान है। उसमे किसी प्रकार का कर्त्तव्य नही है। ब्रह्म सत् रूप मे सर्वत्र ज्ञान का आश्रय है। यहॉ जडता का कोई अस्तित्त्व नही है। इसी चेतन स्वरूप से सपूर्ण विश्व प्रकाशित होता है। सूर्य, चद्रमा एव ग्रह उसी चेतन प्रकाश से प्रकाशित है। यह आनदस्वरूप भी है। ब्रह्म अन्नमय प्राणमय, मनोमय एव विज्ञानमय से भिन्न आनदमय आत्मा है।[28]

ब्रह्म को एकमात्र पारमार्थिक सत् रूप मे स्वीकारने पर सपूर्ण जगत क्या है? शकराचार्य के सम्मुख यह एक विकट समस्या है। आत्मा या जीव आदि ब्रह्म से भिन्न रूप मे क्यो इस जगत मे प्रस्तुत होते है? यदि ब्रह्म अकर्ता नित्य शाश्वत, अनादि है तो यह कर्तृत्व अनित्य आदि से युक्त जगत क्या है? यह सभी प्रश्न शकराचार्य के अद्वैत दर्शन को खण्डित कर रहे थे। इनका समाधान वे माया के माध्यम से करते है। उनके अनुसार, यह सपूर्ण जगत ब्रह्म की शक्ति माया द्वारा निर्मित है। परमेश्वर की शक्ति रूप माया अव्यक्त, अनादि त्रिगुणात्मिका एव पराशक्ति है। समस्त प्रपच रूप जगत की उत्पत्ति का कारण यह ब्रह्म की शक्ति ही है।[29] माया द्वारा ही ब्रह्म मे कर्त्तृत्व शक्ति का सचार होता है। माया से युक्त ब्रह्म ही ईश्वर के रूप मे अभिहित होता है। जिसप्रकार जादूगर अपने हाथ मे बीज लेकर पेड उगा देता है, दर्शको के समक्ष मिठाइयो का ढेर लगा देता है, जबकि यह सब माया के अतिरिक्त कुछ भी नही है। वस्तुत काया भी माया, जाया भी माया, भ्राता भी माया अनुजा भी माया ग्रीष्म-धूप से तपते मजदूर जो भूख से पीडित है, की व्यथा भी माया भोग-विलास भी माया, सब कुछ माया ही माया है। माया युक्त ब्रह्म 'एकोऽह बहुस्याम्' की तरह नामरूपात्मक जगत मे विद्यमान रहता है।

माया ईश्वर की शक्ति है, उसका अत स्थायी बल है। इसके द्वारा वह सभाव्यता को वास्तविक जगत के रूप मे परिणत कर देता है। उस ईश्वर की माया, जो विचार के क्षेत्र से परे है अपने को दो आकारो मे परिवर्तित करती है – काम और सकल्प। नित्यरूप ईश्वर की यह उत्पादिका शक्ति है और इसीलिए यह भी नित्य है और इसी साधन से सर्वोपरि ब्रह्म

---

28 तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात अन्योनतर आत्मानदमय ।

तैत्तिरीय उपनिषद 2 25

29 विवेक चूड़ामणि । (डॉ राममूर्ति शर्मा शकराचार्य पृष्ठ 116 पर उदधृत)

ससार की रचना करता है। माया का कोई पृथक निवासस्थान नही है।[30] यह ईश्वर के ही भीतर रहती है जिसप्रकार उष्णता अग्नि मे रहती है। इसकी उपस्थिति का अनुमान इसके कार्यो द्वारा होता है।[31] ब्रह्म की मायाशक्ति आवरण के रूप मे सत्य को अवगुण्ठित कर लेती है। डॉ हडसन ने इस तथ्य को स्वीकारते हुए कहा है कि प्रकृति ईश्वर पर आवरण डालने वाली होती है।[32] आवरण डालने के तुरत बाद उस वस्तु के स्थान पर अन्य वस्तु की उपस्थिति का भ्रम उत्पन्न करती है जिसे विक्षेप कहा जाता है। विक्षेप शक्ति जगत का निर्माण करती है।

माया नाम और रूप के समान है जो अपनी अविकसित अवस्था मे ईश्वर के भीतर समवाय सबध से रहते है तथा विकसित अवस्था मे जगत का निर्माण करते है।[33] ईश्वर मे परमसत् की अपेक्षा यथार्थता कुछ कम है। अन्य पदार्थो मे यथार्थता का अभाव अधिक रहता है। सर्वोपरि ईश्वर सृष्टि-रचना मे रूपविहीन तथा निरुपाधिको मे ऐसे गुणो को उत्पन्न करता है, जिन्हे वह स्वय अपने भीतर धारण किये हुए है। इस अविकसित तत्त्व को कभी आकाश [34] कभी अक्षर[35] अर्थात् अविनाशी और कभी माया के नाम से व्यक्त किया जाता है।[36] सृष्टि रचना मे यह भौतिक अधिष्ठान है।[37] यह परिवर्तनो के द्वारा विश्व को क्रमिक रूप से प्राकृतिक अवस्था मे ले आता है। यह ईश्वर के कारण शरीर का निर्माण करता है।

---

30 डॉ राधाकृष्णन भारतीय दर्शन भाग 2 पृष्ठ 498

31 निस्तत्त्वा कार्यगभ्यास्य शक्तिर्मायाग्निशक्तिवत पचदशी (डॉ राधाकृष्णन भारतीय दर्शन पृष्ठ 498 पर उदधृत)

32 हडसन फ्यूचर लाइफ पृष्ठ 66 67

33 तुलना करे ईश्वरस्य मायाशक्ति प्रकृति शाकर भाष्य 2 1 14 श्वेताश्वतरोपनिषद 4 10 साख्य प्रवचन भाष्य 1 26

34 वृहदारण्यक उपनिषद 3 8 11

35 मुण्डकोपनिषद 2 1 2

36 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 4 3

37 तुलना करे थॉमिस्टिक दर्शन का मैटेरिया प्राइमा के सिद्धात के साथ

यह एक ऐसा प्रतिबध है जिसे ईश्वर अपने ऊपर लगाता है। यह न तो ईश्वर की आत्मा है और न ही ईश्वर से अलग है। यह प्रलय काल मे भी सर्वोपरि ब्रह्म के ऊपर आश्रित होकर बीज शक्ति के रूप मे विद्यमान रहती है।[38] पुराणो मे यही माया ईश्वर की पत्नी के रूप मे प्रकट होती है तथा सृष्टि रचना मे मुख्य साधन का काम करती है।[39] ईश्वर को विश्व की आवश्यकता है जो हेगल के शब्दो मे ईश्वर की आत्माभिव्यक्ति के लिए आवश्यक रूप है। [40] अत मायावाद की शक्ति पर आधारित इस विश्व के प्रतिपादन के प्रति शकर ने इसी दृष्टि को अपनाया है।

2 अविद्या के आधार पर मायावाद की स्थापना

अविद्या सिद्धात शकराचार्य के मायावाद का प्रमुख अग है। उपनिषद् साहित्य मे भी अविद्या चर्चा का प्रमुख विषय रही है। वहाँ अविद्या अज्ञान का स्वरूप है।[41] अविद्या के कारण ही जीव स्वय को देवता, राजा और सर्वज्ञ मानने लगता है।[42] विद्या और अविद्या मे अविद्या ही बलवती है। विद्या ज्ञान का स्वरूप है और अविद्या अज्ञान का है।[43] परम ब्रह्म से साक्षात्कार मे अविद्या बाधक है। अविद्या के समाप्त होने पर ही परम ब्रह्म का साक्षात्कार सभव है।[44] इसप्रकार अविद्या के माध्यम से और उसके नाश से माया का मिथ्यात्त्व सिद्ध होता है। शकराचार्य ने माया और अविद्या को पर्यायवाची माना है। जब जगत के वस्तुगत क्षेत्र की व्याख्या होती है तब 'माया शब्द का प्रयोग होता है और जब कर्ता की दृष्टि से आत्मा के विमोहित होने की बात कही जाती है, तब 'अविद्या का व्यवहार होता है। अत

---

38 डॉ राधाकृष्णन भारतीय दर्शन भाग 2 पृष्ठ 499

39 वृहदारण्यक उपनिषद 1 4 3

40 डॉ राधाकृष्णन भारतीय दर्शन भाग 2, पृष्ठ 499

41 वही पृष्ठ 275

42 वृहदारण्यक उपनिषद 4 3 20

43 छादोग्योपनिषद 1 1 10

44 मुण्डकोपनिषद 2 1 10

दोनो एक ही सिद्ध होती है। किंतु इन दोनो ही मान्यताओ की अपनी अपनी विशिष्टताएँ है। अविद्या युक्त जीव स्वय को उसीप्रकार पडित एव धीर मानता है, जिसप्रकार अधे द्वारा निर्दिष्ट अध पुरुष स्वय को धीर मानता है। शकराचार्य ने अविद्या को न सत् न असत् और न ही सत्–असत् माना है। अविद्या न भाव है न अभाव है और न भावाभाव रूप है। माया और अविद्या दोनो ही अनिर्वचनीय है।

ब्रह्मविषयिणी अविद्या जीवाश्रया है। माया समष्टि से सबधित है तथा अविद्या व्यष्टि से। आरभ मे अविद्या का स्वरूप भावात्मक था। कालातर मे इसमे विषयिता का आरोप कर दिया गया।[45] शकराचार्य के अनुसार यथार्थ सत्ता का ज्ञान तब तक सभव नही है, जब तक जीव अविद्या के बधनो से बँधा रहेगा। अपने तर्क मे शकराचार्य इस दृष्टिकोण का समर्थन करते है कि अविद्या के कारण ही आत्मा जीव कहलाती है। अतर्ज्ञान से पतन होने वाले तत्त्व का ज्ञान है और इसका साधन ज्ञान है। यह सीमित आत्मा का मानसिक विकार है, जो ब्रह्म की सत्ता को अनेक अशो मे बॉटता है। ड्यूसन के अनुसार अविद्या हमारे ज्ञान का आतरिक धुधलापन है। [46] और मन की ऐसी प्रवृत्ति है जिसके फलस्वरूप वस्तुओ को देश, काल और कारण की रचना द्वारा ही देखा जा सकता है। यह ज्ञात कपटाचार नही है वरन् परिमित शक्ति वाले उस मन की अज्ञान प्रवृत्ति है जो जगत के अपूर्ण मानदण्ड के ऊपर निर्भर करती है।[47]

अविद्या जीव को देवस्वरूप जीवन से दूर रखने के कारण निषेधात्मक शक्ति के रूप मे काम करती है। जिसप्रकार रस्सी की साप के रूप मे प्रतीति ऐद्रिकदोष है परतु रस्सी के ज्ञान के साथ ही साप का भ्रम दूर हो जाता है, उसीप्रकार ब्रह्म के यथार्थ ज्ञान से ही जगत के भ्रम का तिरोधान हो जाता है। आभासित व्यवहारो का निरपेक्ष परम सत्ता मे आकारगत समावेश हो जाता है। अज्ञान के कारण ही जीव रस्सी और साप मे भेद नही समझ पाता है। ज्ञान प्राप्त होने के साथ ही वह रस्सी और साप (प्रथम जो भावरूप है तथा द्वितीय जो

---

45 डॉ राममूर्ति शर्मा शकराचार्य पृष्ठ 118

46 डयूसस सिस्टम ऑफ द वेदात अग्रेजी अनुवाद पृष्ठ 302

47 डॉ राधाकृष्णन भारतीय दर्शन भाग 2, पृष्ठ 500 501

अभाव रूप है) के बीच सबध स्थापित नही कर पाता है। रस्सी मे साप की प्रतीति तथा सापेक्षता का कारण दोषपूर्ण अतर्ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ नही है। अत अविद्या या तो ज्ञान का अभाव है अथवा सदिग्ध या भ्रातिमय ज्ञान है। किंतु अविद्या अभावात्मक मात्र ही नही भावात्मक भी है। इसका आधिपत्य हर जीव पर है और यह सकेत करता है कि सीमित होना भी एक तथ्य है जो अविद्या का भाव रूप है। हर जीव अज्ञानता के इस भाव से युक्त रहता है कि वह सब कुछ नही जानता है।[48]

अविद्या की विषय सबधी शक्ति दो रूपो मे व्यक्त होती है – आवरण और विक्षेप। सभी देहादि सघात अविद्या के माध्यम से ही स्थापित होते है। शकराचार्य का मानना है कि जिसतरह नट रगमच पर अनेक रूप धारण करता है उसीतरह अविद्या द्वारा व्यक्त नानारूपात्मक कार्य व वस्तु एक ही ब्रह्म को व्यक्त करते है।[49] अविद्या नैसर्गिक है, जो सभी लौकिक तथा वैदिक व्यवहारो को उत्पन्न करती है।[50] क्रिया, कारक और फल वर्ग भेद का कारण अविद्या ही है। मै (कर्ता) उक्त परिणाम हेतु उक्त काम करूँगा' इसप्रकार की अविद्या अनादि काल से चली आ रही है।[51] शकर अविद्या का आश्रय आत्मा को मानते है, जो स्वय के अज्ञानयुक्त परदे से आवरण डालती है। अविद्या को अस्वीकार करने मात्र से शकराचार्य का अद्वैत वेदात तर्क की भूमि से विलीन हो जायगा । इसीलिए अविद्या को न मानना एक प्रकार से आत्मा की सत्ता को अस्वीकार करना है।[52] निष्कर्ष रूप मे अविद्या माया की पर्यायवाची है और यह माया को अद्वैत की आधारशिला के रूप मे प्रस्तुत करती है।

---

48 अहम अज्ञ इत्याद्यनुभवात ।

वेदातसार पृष्ठ 4

49 भगवदगीता शाकर भाष्य 18 48

50 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 3 2 15

51 भगवदगीता शाकर भाष्य 18 66

52 We cannot deny the Anadi (immemorial) Avidya which our immediat conciousness vouches for as something, which, while depending on the existence of the inward self hides and obscures the intelligence and bliss of the self Were we to deny this, we should have to deny the inward self as well

प्रोफे थिबाउत एव प गगानाथ झा द्वारा सपादित इडियन थाटस , 1907

इस विवेचना से यह निष्कर्ष सहज ही प्राप्त हो जाता है कि मायावाद के तर्कत प्रतिपादन मे अविद्या की भूमिका अत्यत महत्त्वपूर्ण है। जिसप्रकार भेद के ज्ञान से ही अभेद के महत्त्व या दु ख के अनुभव से ही सुख के आह्लाद् का अनुभव होता है, ठीक उसी प्रकार अविद्या के द्वारा ही विद्या के महत्त्व को समझा जा सकता है। अविद्या के महत्त्व ज्ञान के लिए बीजगणित का निम्नलिखित सिद्धात अत्यत उपयोगी सिद्ध होगा–

$$x^2 + 2x = 24$$

यहॉ 1 को यदि दोनो ओर से मिला दिया जाय तो परिणाम होगा –

$$x^2 + 2x + 1 = 24 + 1 = 25$$

$$(x + 1)^2 = 5^2$$

$$x + 1 = 5$$

$$x = 5 - 1 = 4$$

बीजगणित का यह प्रयास 'x' के अज्ञात महत्त्व के अन्वेषण का प्रयास है। 'x' के अज्ञात महत्त्व को जानने के लिए ही 1 अक को दोनो ओर जोडा गया है। इसीतरह वेदात मे भी अज्ञात आत्मा के ज्ञान के लिए अविद्या द्वारा अनेक मिथ्या और अनात्म विषयो का अध्यारोप किया जाता है।[53] सत रविदास ने अपनी पुस्तक दासबोध' मे कहा है कि पहले मिथ्या को जानने का प्रयास करो। मिथ्या के अनुभव से ज्ञान की ओर अग्रसरित होने की प्रवृत्ति स्वय ही बढ़ जायगी, तब उस ज्ञान को प्राप्त करो। ज्ञान प्राप्त हो जाने पर मिथ्या जगत का त्याग कर दो। इसी त्याग मे वास्तविक सत्य या परम ब्रह्म की प्राप्ति होती है।[54]

---

53 के कीर्तिकर स्टडीज इन वेदात

(ग्रीक दर्शन मे यह सिद्धात 'Dialectics' के रूप मे प्रसिद्ध है। दार्शनिक समस्या के लिए समीकरण के इस सिद्धात का प्रयोग Zeno ने किया था। Socrates और Plato ने इसका विशेष विकास किया था।)

H G Lewis Biographical History of Philosophy, Page 73 (Routledge, 1897)

54 आधीम् मिथ्या उभारावे मग तो ओलखोन साडावे पुदे सत्यते स्वभावे अन्तरावाणी

दासबोध 7 3 (मराठी टैक्स्टस)

इन विवेचनो से सिद्ध होता है कि मायावाद की स्थापना मे अविद्या सिद्धात की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

3 मिथ्यात्त्व के आधार पर मायावाद की स्थापना

आत्मा (विषयी) तथा व्यावहारिक जड जगत (विषय) अपने मूल स्वभाव और धर्मो की दृष्टि से एक-दूसरे के विपरीत है। एक चेतन, ज्ञान स्वरूप प्रकाशमय है, तो दूसरा इसके ठीक विपरीत अचेतन अज्ञानस्वरूप अधकारमय है। किंतु अध्यास के कारण व्यावहारिक जगत मे आत्मा को अनात्मा और अनात्मा को आत्मा का ज्ञान होता है, जो मिथ्या है। शकराचार्य के अनुसार इतरेतराध्यास के कारण उत्पन्न मिथ्या ज्ञान ही वास्तव मे सभी नैसर्गिक लोक व्यवहार का कारण है।[55] व्यावहारिक जगत मे उपस्थित भ्रम और उस भ्रम के मिथ्यात्त्व के कारण मे अध्यास का निरूपण करना आवश्यक है। यह अध्यास माया के दो कारणो मे से एक प्रमुख कारण है। यह शकराचार्य के मायावाद की स्थापना मे अद्वैत के प्रतिपादन हेतु एक महत्त्वपूर्ण तर्क के रूप मे प्रस्तुत होता है।

शकराचार्य की मिथ्या का अर्थ असत् या शशशृग न होकर अनिर्वचनीय से है। व्यावहारिक जगत के पदार्थ परमब्रह्म की तरह तीनो कालो मे निरपेक्ष रूप से सत् नही है क्योकि इनका खण्डन सभव है। इनको असत् भी नही कहा जा सकता है क्योकि ये तीनो काल मे से किसी एक काल मे व्यवहार्य अवश्य होते है। सत् और असत् से विलक्षणता के कारण ही इन्हे अनिर्वचनीय कहा गया है। यहॉ सीपी और रजत का दृष्टात मिथ्यात्त्व की अनिर्वचनीयता को और अधिक स्पष्ट कर देता है। जिस समय शुक्ति मे रजत का ज्ञान होता है उस समय रजत की प्रातिभासिक सत्ता अवश्य रहती है किंतु सीपी के सत्य ज्ञान के साथ ही रजत की मिथ्या अनुभूति भी स्वत हो जाती है। इसप्रकार जिस रजत का ज्ञान प्रातिभासिक सत्ता मे सत् था, वह सीपी रूपी सत्य ज्ञान की प्राप्ति से असत् हो जाता है। जो रजत व्यावहारिक जगत मे सत् है, वही पारमार्थिक सत्ता के ज्ञान होने पर असत् सिद्ध हो जाता है। रजत मे सत् और असत् दो विरोधी लक्षणो की एक साथ उपस्थिति के कारण

---

55 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 1 1

प्राप्त होने वाले मिथ्या ज्ञान को अनिर्वचनीय कहते है।

शकराचार्य का मत है कि व्यावहारिक जगत मे भी मिथ्या का यह अनिर्वचनीय स्वरूप उपस्थित रहता है। सपूर्ण विश्व जगत को पूर्णतया असत् नही कहा जा सकता क्योकि प्रत्यक्ष के द्वारा इसकी व्यावहारिक सत्ता की अनुभूति होती है। यहॉ तक तो जगत को सत् मानना ही होगा, कितु जगत त्रिकालबाधित रूप से सत् नही है। पारमार्थिक स्तर पर परमब्रह्म के साक्षात्कार से व्यावहारिक जगत के मिथ्या होने का ज्ञान स्वाभाविक स्तर पर हो जाता है कितु यह व्यावहारिक जगत शशश्रृग या आकाश-कुसुम की भॉति मिथ्या नही है।[56] मायावाद मे मिथ्या और मायिक जगत का स्वरूप अनिर्वचनीय है। अद्वैत सिद्धिकार मधुसूदन सरस्वती ने मिथ्यात्त्व का प्रतिपादन पॉच प्रकार से किया है, जो निम्नवत है—

(अ) अतएव अस्वात्यता भाववत्त्वे सत्यसत्त्वात्यताभाव रूप विशिष्ठ साध्यम्।[57]

(ब) प्रतिपन्नापाधौ त्रैकालिका निषेध प्रतियोगित्त्वम् वा मिथ्यात्त्वम्।[58]

(स) ज्ञान निवर्त्यत्त्व वा मिथ्यात्त्वम्।[59]

(द) स्वाश्रय निष्ठात्यताभाव प्रतियोगित्त्वम् वा मिथ्यात्त्वम्।[60]

(य) सदविविक्तत्त्वम् वा मिथ्यात्त्वम्।[61]

मधुसूदन सरस्वती ने भी मिथ्यात्त्व को अनिर्वचनीय अर्थ मे ही स्वीकार किया है। इन्ही के मत से मिलता-जुलता मत चित्सुखाचार्य का है। उन्होने मिथ्यात्त्व के सबध मे गूढार्थो का विवेचन किया है। उनके अनुसार असग आत्मा का दृश्य के साथ सग नही हो सकता और न ही दृश्य प्रपच की स्वत या परत सिद्धि हो सकती है। जीवात्मा मे अध्यस्त

---

56 एस एन दासगुप्ता इडियन फिलॉसफी भाग 1 पृष्ठ 443

57 अद्वैतसिद्धि पृष्ठ 79

58 वही पृष्ठ 97

59 वही पृष्ठ 160

60 वही पृष्ठ 182

61 वही पृष्ठ 199

होकर ही प्रपच या मिथ्यात्त्व की सिद्धि सभव है। चित्सुखाचार्य ने मिथ्यात्त्व के दस लक्षणो का विवेचन किया है। वे लक्षण क्रमश इस प्रकार है [62] —

1 प्रमाणाविषयत्त्व

2 अप्रमाणज्ञान विषयत्त्व

3 अयथार्थ ज्ञान विषयत्त्व

4 सद्विलक्षणत्त्व

5 सदसद्विलणत्त्व

6 अविद्यात्कार्ययोरन्यतरत्त्व

7 ज्ञान निवर्त्यत्त्व

8 ज्ञायमान आश्रय मे होने वाले निषेध का प्रतियोगित्त्व

9 बाध्यत्त्व

10 अपने अत्यताभाव के अधिकरण मे प्रतीयमानत्त्व

परम ब्रह्म और व्यावहारिक जगत के अद्वैत की स्थापना के लिए जगत के मिथ्या स्वरूप की अभिव्यक्ति आवश्यक है। किंतु जगत के मिथ्यात्त्व स्वरूप के उद्घाटन के साथ इसके मिथ्यात्त्व का मिथ्या होने का प्रतिपादन भी आवश्यक है। यदि मिथ्यात्त्व के मिथ्यास्वरूप का प्रतिपादन नही किया गया, तो दो समानातर सत्ता को स्वीकारना होगा।[63] यह दो सत्ताएँ है – ब्रह्म और मिथ्या जगत। इन दो सत्ताओ की स्थापना के साथ ही अद्वैत की सकल्पना ध्वस्त हो जायगी।[64] मिथ्या जगत के मिथ्यात्त्व का प्रतिपादन अद्वैत की सिद्धि की आधारशिला है, क्योकि जब जगत का स्वरूप मिथ्या है, तो उसकी मिथ्या स्थापना भी तो मिथ्या ही है। जैसे किसी सत् वस्तु का निषेध उसकी सत्ता की स्थापना से ही गलत सिद्ध

---

62 डॉ जगदीश सहाय श्रीवास्तव अद्वैत वेदात की तार्किक भूमिका पृष्ठ 207 209

63 डॉ राममूर्ति शर्मा शकराचार्य पृष्ठ 121

64 For ıf the negatıon ıs not false then ıt remaıns as an entıty dıffierence from Brahman and hence the unqualıfied monısm faıls

एस एन दासगुप्ता इडियन फिलासफी भाग 1 पृष्ठ 444

होता है ठीक वैसे ही मिथ्या वस्तु की स्थापना उसके मिथ्या स्वरूप के आधार पर तुरत ही खण्डित हो जाती है। अत जगत के मिथ्या होने पर इससे सबधित मिथ्या प्रतिपादन भी मिथ्या का ज्ञान ही कराता है।[65]

मिथ्यात्त्व की व्याख्या के सबध मे एक आलोचना प्रमुख रूप से उभर कर सामने आती है। वह यह कि मिथ्यात्त्व के मिथ्या प्रतिपादन से प्रपच की स्थापना ही सभव है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नही। इसलिए मिथ्या का पुन मिथ्यात्त्व प्रतिपादन अद्वैत की स्थापना मे साधक न होकर बाधक है।[66] उदाहरणस्वरूप, एक धर्मी मे प्रसक्त दो विरोधी धर्मो मे से एक के मिथ्यात्त्व प्रतिपादन से दूसरे की सत्यता सिद्ध हो जाती है। इसीकारण प्रपच रूप धर्मो मे मिथ्यात्त्व प्रतिपादन से प्रपच की सत्यता सिद्ध होती है।[67] वस्तुत प्रपच मे सत्य भी समाहित रहता है। जिसप्रकार व्यावहारिक जगत की सिद्धि अद्वैत की स्थापना मे मिथ्यात्त्व के मिथ्या स्थापना के बिना सभव नही है, उसीप्रकार मिथ्यात्त्व के मिथ्या स्थापना से प्रपच के सत्य सिद्धि का कारण होने से अद्वैत की स्थापना मे बाधक है। इसतरह दो पक्ष से अद्वैत की स्थापना असभव हो जाती है। किंतु आलोचको का यह तर्क पूर्णतया निराधार है, क्योकि एक धर्मी मे समाहित दो धर्मो मे से किसी एक को मिथ्या सिद्ध करने पर दूसरे की सत्यता स्थापित हो, यह आवश्यक नही है। उदाहरणस्वरूप, एक गजरूप धर्मी मे अश्वत्त्व और गोत्त्व रूप दो विरोधी धर्मो मे से एक धर्म अर्थात् अश्वत्त्व का पूर्णत अभाव होने पर दूसरे धर्म अर्थात् गोत्त्व रूप धर्म की सत्यता स्थापित नही होती है। गज धर्मी मे गोत्त्व तथा अश्वत्त्व दोनो धर्मो का अभाव है। अत दो विरोधी धर्मो मे से एक का मिथ्या स्थापित होना दूसरे की सत्यता को सिद्ध नही करता है।[68] विश्लेषणीय तथ्य यह है कि

---

65 एस एन दासगुप्ता इडियन फिलासफी भाग 1 पृष्ठ 444

66 ननुउक्त मिथ्यात्त्वस्य मिथ्यात्त्वे प्रपच सत्यत्त्वापात एकस्मिन धर्मिणी प्रसक्रयोर्विरुद्धधर्मयो एक मिथ्यात्त्वे अपरसत्यत्त्व नियमात मिथ्यात्त्व सत्यत्त्वे च तदवदेव प्रपच सत्यत्त्वापते ।

अद्वैतसिद्धि पृष्ठ 207

67 ननुप्रपच मिथ्यात्त्व यदि मिथ्यास्याततर्हि प्रपच सत्य स्यात ।

बिट्ठलेशौपाध्यायी पृष्ठ 207 (निर्णय सागर)

68 डॉ राममूर्ति शर्मा शकराचार्य पृष्ठ 222

मिथ्या और सत्य परस्पर विरोधी धर्म न होकर एक-दूसरे के पूरक है। जगत के मिथ्या सिद्ध हो जाने के साथ ही ब्रह्म की सत्यता स्वत ही स्थापित हो जाती है तथा ब्रह्म की सत्यता से जगत के मिथ्यात्त्व की। सत्यत्त्व और मिथ्यात्त्व अद्वैत साधना मे स्वीकार्य है।[69] मायावाद की स्थापना हेतु मिथ्यात्त्व का प्रतिपादन अत्यत आवश्यक है।

उपर्युक्त तर्को से शकराचार्य द्वारा मायावाद की स्थापना के साथ ही अद्वैत दर्शन के सदर्भ मे उत्पन्न होने वाली अनेक समस्याओ का समाधान स्वत ही हो जाता है। उनके मायावाद की अवधारणा के माध्यम से व्यावहारिक जगत की रचना की एक युक्तिसगत व्याख्या सभव है। क्योकि यदि ईश्वर सत्य है और अचेतन सृष्टि का निर्माण करता है तो उसकी व्यापकता सभाव्य है। यदि ईश्वर के अधीनस्थ के रूप मे माया या प्रकृति को स्वीकार्य माने तो दो ही विकल्प उपस्थित होते है—पहला यह कि माया ईश्वर का अश है तथा दूसरा यह कि माया द्वारा सृष्टि का विकास वास्तव मे ईश्वर का विकास है। पहले विकल्प को माने तो वह रामानुज के ईश्वर की भॉति सावयव होगा और ईश्वर भी भौतिक द्रव्यो की तरह विनाशी हो जायगा जो कि सृष्टि के विकासोपरात ईश्वर नही रहता, जो मूल सिद्धात का हनन है। कितु शकराचार्य के मायावाद सिद्धात की स्थापना के साथ यह सारी जटिलताएँ समाप्त हो जाती है और मायावाद द्वारा शास्त्रीय सिद्धातो की स्थापना भी सहजता से हो जाती है। शकराचार्य ने अपने दर्शन के मूल आधार मायावाद को सुदृढ बनाने के लिए ठोस तर्क प्रस्तुत करके अद्वैत सिद्धात को पूर्णतया तर्कसगत बनाया है।

ब. मायावाद् के संबंध में शंकराचार्य के अनुयायियों के मत

शकर के अद्वैत वेदात से ही वेदातिक दार्शनिक विचारधारा का विकास माना जाता है। इस विचारधारा का इतिहास मौलिकता और जटिलता को साथ लेकर चलता है। महानता का पहलू शकराचार्य द्वारा स्थापित सैद्धातिक चिंतन के अकाट्य तर्को मे दिखता है। शाकर ब्रह्मसूत्र भाष्य पर अनेक टीकाएँ है और इन टीकाओ पर अनेक भाष्यो ने

---

69 अद्वैत सिद्धि पृष्ठ 220

दार्शनिक जटिलताओ को जन्म दिया है। प्रोफे एन बी चक्रवर्ती ने अपनी पुस्तक 'अद्वैत का भ्रम सिद्धात–तुलनात्मक अध्ययन मे स्पष्ट किया है कि शाकर भाष्य पर उनके अनुयायियो तथा समकालीनो द्वारा किया गया भाष्य व्यक्तिगत तर्कों एव विचारो पर आधारित है। इस कारण उनमे जटिलता का आना स्वाभाविक है। व्याख्या एव अध्ययन की सुविधा के लिए अद्वैतवादी वाङ्मय के प्रणेता शकराचार्य के बाद के विचारको को दो वर्गो मे बॉटा गया है। पहले वर्ग मे शकराचार्य के समकालीन विचारको पर शाकर-अद्वैत से प्रभावित मतो का अध्ययन है। दूसरे वर्ग मे शाकर-अद्वैत के अनुयायियो का अध्ययन है, जिन्होने तत्त्वदर्शी प्रवृत्ति से ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य पर अपनी टीकाओ और भाष्यो द्वारा अद्वैत सिद्धात की व्याख्या की है।

शाकर-मायावाद को ठीक से समझने के लिए उनके अनुयायियो और समकालीनो द्वारा माया के अर्थ की व्याख्या आवश्यक है। शकर के अनुयायियो मे 'भामती' और विवरण दो मत उभरे जो श्रवण (अध्ययन) मनन (चितन) और निदिध्यासन (ध्यान) से जुडे है तथा ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति मे इनकी महत्ता क्या है, इस विवेचन पर आधारित है। शकराचार्य के शिष्य पद्मपाद का ग्रथ 'पचपादिका', ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य पर टीका है। प्रकाशात्मन ने पचपादिका पर विवरण नामक टीका लिखी, जिससे विवरण प्रस्थान' का जन्म हुआ। अखण्डानद ने विवरण पर टीका लिखी जिसे तत्त्वदीपन कहते है। विद्यारण्य ने विवरणप्रमेय सग्रह लिखकर विवरण के सिद्धातो की व्याख्या की है जबकि 'भामती प्रस्थान' के सस्थापक वाचस्पति मिश्र ने ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य पर भामती टीका लिखी है। अमलानद ने भामती की व्याख्या कल्पतरु' मे की। अप्पय दीक्षित ने कल्पतरु पर टीका परिमल नाम से लिखा। सुरेश्वर कृत नैष्कर्मसिद्धि' सर्वज्ञात्ममुनि प्रणीत 'सक्षेपशारीरक , विमुक्तात्मन कृत इष्टसिद्धि' विद्यारण्य की पचदशी' दयानद का 'वेदातसार , चित्सुख कृत चित्सुखी आदि ग्रथ अद्वैतवादी दार्शनिक विचारो की गहनता को प्रस्तुत करते है। अद्वैत वेदात के समकालीनो और अनुयायियो के 'माया सबधी विचारो के अध्ययन से पूर्व दोनो प्रस्थानो के विचारो की मूल बातो को स्पष्ट कर लेना आवश्यक है। यहॉ सक्षेप मे उन पर विचार किया जा रहा है।

भामती प्रस्थान मे जीव (वैयक्तिक आत्मा) का सबध व्यावहारिक तथा व्यक्तिगत

दोनो अविद्या से होता है। विभिन्न जीवो मे अविद्या भी भिन्न-भिन्न है। इसके कारण एक नही, अनेक है। अविद्या अपने अस्तित्त्व हेतु ब्रह्म पर आधारित है तथा प्राकृतिक भ्रम को उत्पन्न करने मे एकमात्र प्रभावशाली कारण (निमित्तसहकारी) भी है। अविद्या का एकमात्र आधार आवरण शक्ति है। ब्रह्म जगत का कारण होकर भी स्वय मे अकारण (विवर्तोपादान) है। अपरोक्ष ज्ञान मानसिक है, शाब्दिक नही। भामती ने मन को इद्रिय-साधन माना है। आध्यात्मिक सत् की प्राप्ति मे प्रमुख तत्त्व निदिध्यासन (गहन ध्यान) है, जबकि श्रवण (अध्ययन) और मनन (चितन) उसके सहायक तत्त्व है। भामती मतानुसार, सहयुक्त सत् (अपहृत ब्रह्म) को वेदातिक ज्ञान द्वारा जाना जा सकता है लेकिन शुद्ध सत् का ज्ञान इससे प्राप्त नही किया जा सकता है। ज्ञान एक मानसिक प्रक्रिया है, इसे वेदातिक तर्को द्वारा प्राप्त नही कर सकते है। शुद्ध सत् मानसिक प्रक्रिया की वृत्ति और सत् का आभास दोनो ही नही है। इद्रियो के माध्यम से साक्षी का प्रत्यक्ष सभव है, कितु साक्षी द्वारा किसी तरह का मानसिक बदलाव करना असभव है। ब्रह्म की चेतनता का अनुभव समष्टि द्वारा तथा जीव की चेतनता का अनुभव व्यष्टि द्वारा ही सभव है।

विवरण प्रस्थान के अनुसार व्यावहारिक अविद्या (माया) ब्रह्म मे स्थित है तथा व्यक्तिगत अविद्या स्वय जीव मे निहित है। ऐसे मे व्यावहारिक अविद्या एक है तथा वैयक्तिक अविद्या के अनेक रूप है। विवरण ने भी भामती के समान अविद्या को ब्रह्म पर आधारित माना है। समस्त भ्रम का एकमात्र कारण अविद्या है। यह जगत का उपादान कारण भी है। विवरण के अनुसार ब्रह्म और माया दोनो ही उपादान कारण है, जिसमे ब्रह्म भ्रम उत्पन्न करने वाला कारण है, कितु वही माया उसके स्थान पर अन्य वस्तुओ को उत्पन्न करती है। प्रत्यक्ष अनुभव शाब्दिक और मानसिक दोनो है जबकि मन इद्रिय साधन नही है। आध्यात्मिक सत् की प्राप्ति मे श्रवण (अध्ययन) प्रमुख साधन है, मनन (चिंतन) और निदिध्यासन (ध्यान) सहायक कारण है। विवरण ने शुद्ध सत् को वेदातिक ज्ञान द्वारा प्राप्त करना सभव बताया है। शुद्ध सत् (ब्रह्म) मानसिक वृत्ति (अखण्डकारी वृत्ति) से सबद्ध है। इद्रियो का एकमात्र धर्म साक्षी ज्ञान है, जो अनुमान प्रमाण से प्राप्त होता है। ईश्वर मूल चेतना (बिब चैतन्य) है, जबकि जीव उसकी आभास चेतना (प्रतिबिब) और असीमिति (अव चैतन्य) है।

इन दोनो प्रस्थानो मे व्यक्त विचारो की विस्तृत और व्यवस्थित व्याख्या महामहोपाध्याय ए शास्त्री ने की है।[70]

1 शकर के समकालीन अनुयायी और मायावाद

मण्डन मिश्र

नवी शताब्दी के प्रमुख विचारक मण्डन मिश्र रचित ब्रह्मसिद्धि मे अद्वैत वेदात की स्वतत्र व्याख्या की गयी है। ब्रह्मसिद्धि' को चार अध्यायो मे बॉटा गया है। प्रथम अध्याय ब्रह्मकाण्ड है जिसमे ब्रह्म और जगत के मायिक स्वरूप का वर्णन है। द्वितीय अध्याय तर्ककाण्ड' है, जिसमे अनुभव (ज्ञान) के भेद सिद्धात का तार्किक विवेचन है। तृतीय अध्याय नियोगकाण्ड मे मीमासा द्वारा वेदो और अपने से समानता रखने वाले नियमो पर विचार किया गया है। चतुर्थ अध्याय सिद्धिकाण्ड मे उपनिषद् की महत्ता नानाविध जगत के भ्रम तथा वैयक्तिक आत्मा की अज्ञानता की विस्तृत व्याख्या है।

मण्डन मिश्र के अनुसार, ब्रह्म स्वरूपत अखण्ड, नित्य, शुद्ध, सत् तथा सकारात्मक सुख प्रदान करने वाला है।[71] सपूर्ण जगत मे व्याप्त दृष्ट' तथा 'दृश्य' का भेद पारमार्थिक स्तर पर नही है। यह मात्र वैयक्तिक आत्मा की उपज है। पारमार्थिक स्तर पर एक ही ब्रह्म दृष्ट और दृश्य दोनो मे समाहित है। आत्मा परिवर्तित नही होती, कितु उसके आभास द्वारा अत करण मे भ्रमपूर्ण बाह्य परिवर्तन होते है। मण्डन मिश्र के अनुसार यह भ्रमपूर्ण आभास ही अविद्या या माया है। अविद्या ब्रह्म का स्वभाव नही है। ब्रह्म मे रहते हुए भी यह उससे भिन्न है। माया या अविद्या का न तो अस्तित्त्व है और न ही अनस्तित्त्व है। यह अनिर्वचनीय तथा अवर्णनीय है। वैयक्तिक आत्मा (जीव) से ही इसका सबध रहता है। यह मात्र अस्थिरता का ही परिणाम है। मण्डन मिश्र ने अस्थिर अविद्या के स्वभाव के निम्न बिन्दुओ की ओर इगित किया है

---

70 महामहोपाध्याय अनतकृष्ण शास्त्री ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य विद फाइव कमेंट्रीज पृष्ठ 9 10

71 डी सी भट्टाचार्या पोस्ट शाकर अद्वैत द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इडिया भाग तृतीय पृष्ठ 225

माया या अविद्या इन नियमो पर आधारित है कि (1) जीव का अस्तित्त्व ब्रह्म मे है, (2) जीव की विभिन्नता आभास (कल्पना) की उपज है। (3) ब्रह्म कल्पनाशून्य है। (4) समस्त जीव भ्रम से उत्पन्न होते है। प्रश्न यह उठता है कि भ्रम जो जीव को उत्पन्न करता है किस प्रकार उससे सबद्ध है? मण्डन मिश्र ने इसका उत्तर दो स्तरो पर देते हुए कहा है कि एक ओर कल्पना का सबध माया से है, दूसरी ओर अविद्या जीव से और जीव अविद्या से सबद्ध है।[72]

मण्डन मिश्र के विचारो का स्पष्ट प्रभाव भामती मत के वाचस्पति मिश्र मे दिखता है। इस मत ने विवरण मत के विपरीत वेदातिक ग्रथ के अध्ययन व चितन के बजाय ध्यान-योग पर अधिक बल दिया। मण्डन मिश्र के अनुसार अन्यथा-ग्रहण-अविद्या (मिथ्या ग्रहण-अविद्या) द्वारा उत्पन्न सस्कार (शेष प्रभाव) को जड से समाप्त करने के लिए ध्यान योग अति आवश्यक है। दो प्रकार की अविद्या मे से यह अविद्या का प्रथम भेद है। द्वितीय भेद अग्रहण अविद्या या अबौद्धिक अविद्या का है। वेदातिक ग्रथो का मौखिक ज्ञान परोक्ष ज्ञान है और इसके द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार असभव है। इसके विपरीत ध्यान योग अपरोक्ष ज्ञान है जो ब्रह्म साक्षात्कार के साथ मानसिक वृत्ति के सामान्यीकरण के लिए आवश्यक है।[73]

सुरेश्वर

शकर के समकालीन अन्य विचारको मे सुरेश्वर उल्लेखनीय है, जिन्होने नैष्कर्म्यसिद्धि, ब्रह्मसूत्र भाष्यवर्तिका और तैत्तिरीय भाष्यवर्तिका की रचना की। इनमे नैष्कर्म्यसिद्धि प्रमुख ग्रथ है, जो सत् ब्रह्म की विस्तृत व्याख्या करता है।

सुरेश्वर के अनुसार ब्रह्म सत् है और वही जगत का उपादान कारण है। वह

---

72 एस एन दासगुप्ता हिस्ट्री ऑफ इडियन फिलासफी भाग 2 पृष्ठ 87 90

73 Another interesting fact about Mandana is that he accepted the theory of Sphota advocated by Bhartihari and others and he tried to harmonize the doctrine of the Sabdadvaita with the Brahmadvait a of the Advaita For Madana the word is Brahman the word is all

डी सी भट्टाचार्या पोस्ट शाकर अद्वैत, द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इडिया भाग तृतीय पृष्ठ 256 57

अपरिवर्तनीय है किंतु माया द्वारा सपूर्ण जगत मे आभासित होता रहता है। माया जगत का द्वितीयक या सहायक कारण है। अनुभव के सिद्धात के अनुसार जगत और माया दोनो का अस्तित्त्व है। ब्रह्म सिद्धात के अनुसार जगत और माया दोनो का कोई अस्तित्त्व नही है। मात्र शुद्ध सत् चित् और आनद का अस्तित्त्व है। माया और अविद्या समान है जो ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप पर आवरण डाल देती है। इससे ब्रह्म जगत मे आभासित प्रतीत होता है। केवल वैदिक ग्रथो के अध्ययन द्वारा ही अविद्या की समाप्ति और ब्रह्म का उदय सभव है। इसीकारण सुरेश्वर विवरण मत का समर्थन करते है और मण्डन मिश्र से मतभेद रखते है। इस मतभेद की चर्चा डी सी भट्टाचार्या ने अपने एक लेख पोस्ट शाकर अद्वैत मे किया है। वे कहते है कि मण्डन मिश्र के विपरीत सुरेश्वर है। सुरेश्वर मानते है कि आत्मा ब्रह्म है , इसका बोध कराने मे वैदिक ग्रथ सक्षम है। उन्होने ध्यानभाष्य या प्रसख्यान को अपरोक्ष ज्ञान का साधन मानने से अस्वीकार किया है। इसके साथ ही मण्डन मिश्र द्वारा स्थापित अविद्या के दोनो प्रकारो को भी अस्वीकार किया है। सुरेश्वर ने वृहदारण्यक भाष्य मे भ्रमसिद्धात के अन्यथा ख्यातिवाद को न मानते हुए अनिर्वचनीय ख्यातिवाद को स्थापित किया जिसे बाद के सभी अद्वैत अनुयायियो ने स्वीकार किया।[74]

सुरेश्वर ने नैष्कर्म्यसिद्धि के तृतीय अध्याय मे माया सिद्धात की चर्चा की है। उनके लिए माया एक ब्रह्म को अनेक रूपो मे आभासित करने का साधन (द्वार) है। माया सकारात्मक होकर भी अनस्तित्व है। यह ब्रह्म के आगे आवरण के समान है और ब्रह्म को अनेक रूपो मे व्याख्यायित करती है। सुरेश्वर का मायावाद कोई मौलिक सोच नही है, किंतु भ्रमसिद्धात को अनिर्वचनीय ख्याति के रूप मे प्रस्तुत करने के कारण अद्वैत वाड्मय को उनकी यह एक नयी देन है।

पद्मपाद

शाकर अद्वैत विचारको मे सुरेश्वर के अलावा महत्त्वपूर्ण विचारक पद्मपाद है, जिन्होने विवरण' मत की स्थापना की। पद्मपाद ने ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य पर पचपादिक'

---

74 डी सी भट्टाचार्या पोस्ट शाकर अद्वैत द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इडिया भाग तृतीय पृष्ठ 259 60

टीका लिखी। उनके अनुसार माया अव्याकृत प्रकृति, अग्रहण, अव्यक्त, तमह कारण, लय शक्ति महासुप्ति निद्रा और आकाश शब्द अविद्या के समानार्थी है।[75] ब्रह्म के स्वप्रकाश, शुद्ध और स्वतत्र स्वभाव को अविद्या छिपाती है। व्यावहारिक जगत (चित्रभित्ति) मे आभास (अविद्या) कर्म तथा पूर्व-प्रज्ञान-सस्कार के रूप मे विद्यमान है। अविद्या इनके माध्यम से वैयक्तिक जीव को उत्पन्न (जीवोत्पादिका) करती है। इसीलिए वह जीव मे निवास करती है। अविद्या लक्ष्य और उसका सहायक ब्रह्म है। पद्मपाद का यह विचार वाचस्पति मिश्र से भिन्न है। वाचस्पति मानते है कि ब्रह्म अविद्या का उद्देश्य और जीव सहायक है। यह मत भामती और विवरण के मतभेदो का बिदु है।[76]

पद्मपाद ने मिथ्या के दो अर्थ माने है। पहले प्रकार की मिथ्या केवल निषेध (अपह्वव वचन) है। दूसरे प्रकार की मिथ्या अकथनीय तथा अवर्णनीय (अनिर्वचनीयता वचन) है। एस.एन दासगुप्ता के अनुसार—"It ıs probably he who of all the ınterpreters first descrıbed ajnana or avıdya as beıng of a moderıal nature (Jadatmıka) and of the nature of a power (Jadamık avıdya-Shaktı) and ınterpreted Sankara's phrase 'mıthya-jnana-nımıttah' as meanıng that ıt ıs the materıal power of ajnana that ıs constıtutıve or the materıal cause of the world-appearance "[77] पद्मपाद के इस विचार ने शकराचार्य से कही अधिक अविद्या सिद्धात को स्थिरता प्रदान की।[78]

पद्मपाद ने उपादान शक्ति के सिद्धात को लेकर माया और अविद्या मे भेद किया है। जब आवरण द्वारा यह वस्तु के अभाव को उत्पन्न करती है, तब अविद्या कहलाती है। जब उस अभाव के स्थान पर किसी अन्य वस्तु के भाव को (विक्षेप) प्रस्तुत करती है, तब 'माया' कहलाती है।[79] इस फेरबदल के माध्यम से अबौद्धिक और विवेकरहित अभाव (अनिर्वचनीय

---

75 एस एन दासगुप्ता हिस्ट्री ऑफ इडियन फिलासफी भाग द्वितीय पृष्ठ 104

76 वही पृष्ठ 104 05

77 एस एन दासगुप्ता हिस्ट्री ऑफ इडियन फिलासफी भाग द्वितीय पृष्ठ 105

78 डी सी भट्टाचार्या पोस्ट शाकर अद्वैत द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इडिया भाग तृतीय पृष्ठ 263

79 वही पृष्ठ 263

अविद्या) की उत्पत्ति होती है। यही अनिर्वचनीय अविद्या महाछल और आभासिक जगत का उपादान कारण है। पद्मपाद के अनुसार जगत अस्तित्त्व (सत्) और अनस्तित्त्व (असत्) दोनो से भिन्न होने के कारण मिथ्या है। कोई भी वस्तु जो न तो सत् हो और न असत् हो उसे मिथ्या कहते है। इसीलिए सपूर्ण जगत मिथ्या है, एकमात्र ब्रह्म ही सत् है।[80] इसप्रकार पद्मपाद द्वारा स्थापित सिद्धातो ने बाद के अद्वैत वेदात के विकास को बिगाडने वाले विचारो पर अकुश रखा। इनका सिद्धात मण्डन मिश्र की अपेक्षा क्रातिकारी विचारो से रहित तथा दर्पण की तरह स्पष्ट गुण वाला है।

वाचस्पति मिश्र

अद्वैत वेदात के घोर समर्थक और शकराचार्य के अनुयायियो मे महत्त्व का स्थान रखने वाले दार्शनिक वाचस्पति मिश्र है। इन्होने ब्रह्मसूत्र पर भामती टीका लिखी है। शकराचार्य और मण्डन मिश्र, दोनो के सिद्धातो को इन्होने ग्रहण किया है। इनके अनुसार, सत्य और वास्तविकता अपरोक्ष रूप से मोक्ष प्रदान करते है। इनकी दृष्टि मे अविद्या दो प्रकार की है—मन के मनोवैज्ञानिक उपादान कारण एव मानव के आतरिक शारीरिक स्वभाव के रूप मे या फिर बाह्य जगत के उपादान कारण के रूप मे। इसीलिए वाचस्पति मिश्र ने शाकर भाष्य टीका मे कहा है कि महाप्रलय के समय अविद्या के समस्त उत्पाद (अत करण आदि) अपने कार्यो को रोक देते है किंतु ये समाप्त होने की स्थिति मे नही होते है। इस अवस्था मे वस्तुएँ अपने मूल कारण (अनिर्वचनीय अविद्या) मे रहती है। मन के समस्त भ्रम, आभास के मनोवैज्ञानिक रूप सूक्ष्म-शक्तिरूपणा अर्थ मे ठहरे रहते है।[81]

कह सकते है कि वाचस्पति मिश्र की अविद्या या माया का ब्रह्म के साथ सह-अस्तित्त्व है। यह ब्रह्म के सहायक के रूप मे, उसके द्वारा सृजित जगत मे, स्थित रहती है। यह ब्रह्म मे अवस्थित है और वैयक्तिक जीव मे विद्यमान है। जीव स्वय माया पर और माया जीव पर निर्भर है। बाह्य भौतिक जगत केवल वस्तुगत विचार या उमग नही है। इसका

---

80 थामस ओ नील माया इन शकर मीजरिंग द इममीजरेबुल पृष्ठ 108

81 डी सी भट्टाचार्या पोस्ट शाकर अद्वैत द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इडिया भाग तृतीय पृष्ठ 108 09

मन से बाहर भी अस्तित्त्व है। किंतु अविद्या का वर्णन और उसकी व्याख्या (अनिर्वचनीय अविद्या) नही की जा सकती। महाप्रलय के समय सृजन करने वाले सभी तत्त्व आत्मिक और शारीरिक दोनो अगले सृजन तक अविद्या मे ही समाहित रहते है।[82]

वाचस्पति मिश्र ने मण्डन मिश्र से कुछ अलग अविद्या सबधी विचारो को रखते हुए अद्वैत वेदात को समृद्ध किया। एस एस हसूरकर के अनुसार—“His predecessor (Mandana) points to the ultimate undefinability of avidya as the only explanation of meetually inter-dependent position of avidya and its locus, the individual soul, Vacaspati, more logical and rational in his attitude, lays emphasis on the beginninglessness of the two entities inter-dependently involved, and thus refutes the charge of his rivals [83]

वाचस्पति मिश्र के अनुसार, ज्ञानयुक्त ब्रह्म के स्थान पर अविद्या ही तमाम जीवो मे निवास करती है। अविद्या के दो भेद है। पहली सकारात्मक मूलाविद्या या कारण अविद्या है, जो मानव हेतु मनोवैज्ञानिक अविद्या का निर्माण करती है। दूसरी, तूलाविद्या या कार्यअविद्या है जो ब्रह्म को ईश्वर और निमित्तोपादान कारण के रूप मे प्रस्तुत करती है। वास्तव मे यही माया है।[84] इसप्रकार वाचस्पति मिश्र ने भी अद्वैत सिद्धात की माया को ही प्रस्तुत और व्याख्यायित किया है।

2 तत्त्वदर्शी विचारक और माया

श्रीहर्ष

शकराचार्य के उत्तरवर्ती अनुयायियो की परपरा मे उन अद्वैतवादी तत्त्वदर्शी विचारको के मतो का विवेचन भी आवश्यक है जिन्होने अपनी टीकाओ द्वारा इस सिद्धात मे व्यापक फेर-बदल किया। इसे व्यवस्थित और सतुलित ढग से प्रस्तुत किया। इस परपरा का प्रारभ

---

82 डी सी भट्टाचार्या पोस्ट शाकर अद्वैत द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इडिया भाग तृतीय पृष्ठ 48

83 एस एस हसूरकर वाचस्पति मिश्र ऑन अद्वैत वेदात पृष्ठ 26

84 डी सी भट्टाचार्या पोस्ट शाकर अद्वैत , द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इडिया, भाग तृतीय पृष्ठ 267

श्रीहर्ष से माना जा सकता है जोकि 12वी शताब्दी के प्रमुख विचारक थे। इनकी प्रसिद्ध कृति खण्डन-खण्ड-खाण्ड्य है। श्रीहर्ष ने अन्य सिद्धातो के खण्डन द्वारा अपना दार्शनिक मत विकसित किया।

श्रीहर्ष के अनुसार ब्रह्म सत् है और अतिम सत्ता के रूप मे है। वे कहते है कि अतिम सत्ता (ब्रह्म) के विचार का होना ही उसकी सत्ता को सिद्ध करता है। यदि वह अनुभव मे नही रहता तो कोई भी मानव उसके बारे मे तर्क प्रस्तुत करने को नही कहता। श्रीहर्ष ने तत्त्वदर्शी मीमासा द्वारा 'भेद सिद्धात' की परिभाषा को असभव बताया है। इसे सगठनात्मक स्वभाव द्वारा व्याख्यायित करना कठिन है। एस एन दासगुप्ता का मत है कि श्रीहर्ष का तत्त्वदर्शी सिद्धात किसी वस्तु की निर्दोष परिभाषा जैसा है। लेकिन सभी परिभाषाएँ सदोष होती है। परिभाषाएँ चक्रक दोष से युक्त है इसीलिए इनके पार वस्तुओ के सही स्वरूप की व्याख्या करने का कोई सुगम रास्ता नही है। हमारे आनुभविक जगत मे ज्ञाता ज्ञेय और ज्ञान का सबध रहता है। ज्ञाता ज्ञान का अधिकारी है। ज्ञान, ज्ञाता द्वारा मिलता है। जबकि ज्ञेय, ज्ञान के रास्ते को समझने से उपलब्ध होता है। इसप्रकार सबधो का एक चक्र है और इस आधार पर किसी भी वस्तु की परिभाषा स्वतत्र रूप से दी जा सकती।[85]

चित्सुख

श्रीहर्ष के मत का अनुपालन चित्सुख ने भी किया है। उन्होने तत्त्वदर्शी तर्कों का प्रयोग करके बडी गहराई से अद्वैत सिद्धात की महत्त्वपूर्ण व्याख्या की है।[86] उनकी प्रमुख कृति तत्त्वप्रदीपिका या चित्सुखी' है। उन्होने न्याय-वैशेषिक सिद्धातो का खण्डन किया है। चित्सुख के दर्शन का प्रारभ आत्म-ज्ञान सिद्धात की व्याख्या से होता है। उनके अनुसार, आत्म-ज्ञान किसी ऐद्रिय ज्ञान का विषय या किसी विचारयोग क्रिया (अवेद्यतऽपि) नही है। इसीकारण आत्मज्ञान को अपरोक्ष व्यवहार योग नाम देते है।[87] दूसरे शब्दो मे, स्व-चेतना

---

85 एस एन दासगुप्ता हिस्ट्री ऑफ इडियन फिलासफी भाग द्वितीय पृष्ठ 133

86 वही पृष्ठ 147

87 वही पृष्ठ 149

को ज्ञान का विषय बने बिना अपरोक्षत अनुभव कर सकते है या अत प्रज्ञा प्राप्त कर सकते है। यह परिभाषा मात्र आत्मा के लिए है, क्योकि वह किसी ऐद्रिय ज्ञान का विषय नही है। इसकी व्याख्या शुद्ध स्व प्रकाशन चेतनता (आत्मन् समविद् रूपत्व) के रूप मे करते है।

चित्सुख के भ्रम सिद्धात का वर्णन करते हुए दासगुप्त कहते है कि उन्होने वस्तु के अनस्तित्त्व को मिथ्यात्त्व के रूप मे परिभाषित किया है। वस्तु का अस्तित्व अपने कारण मे छिपा रहता है। सपूर्ण के प्रगट होने की स्थिति मे ही वह दृष्टिगत होता है। किसी वस्तु का अस्तित्त्व उसका अपने उपादान कारण के रूप मे विद्यमान होने से है। यदि वह वहॉ नही है, तो वह कही भी नही है। वह मिथ्या है। इसलिए सपूर्ण अपनी सपूर्णता मे कही खण्डित नही है। चित्सुख के अनुसार दृश्य जगत आभास मात्र है। यह मिथ्या है। ज्ञाता और अनुभव (ज्ञेय) मे कोई सबध नही है किंतु व्यावहारिक जगत मे इस सबध का आभास होता है।[88]

चित्सुख ने अविद्या के स्वभाव पर मौलिक विचार प्रस्तुत करते हुए कहा है कि यह अनादि, सकारात्मक सत्ता है। केवल निषेध न होने के अर्थ मे यह सकारात्मक नही है। यह ज्ञान का अभाव भी नही है। अभाव को ऐद्रिय प्रक्रिया द्वारा नही जान सकते है, किंतु स्व-प्रकाश चेतना (साक्षी) द्वारा अपरोक्षत ज्ञात होता है। किसी द्रव्य के अनुभूत होने से पहले अज्ञान उसे ढॅक लेता है, तब साक्षी अज्ञान द्वारा प्रस्तुत अव्याकृत रूप मे उसे ग्रहण करता है। इसप्रकार समस्त ऐद्रिक वस्तुऍ साक्षी द्वारा अनुभूत होती है। चाहे वह ज्ञात हो या न हो। चित्सुख के अनुसार साक्षी शुद्ध ब्रह्म से भिन्न नही है। वह स्वय ब्रह्म ही है। वह ब्रह्म, जो जीव मे उसके अपरिवर्तनीय अग के रूप मे रहता है। चित्सुख ने स्पष्टत कहा कि भ्रम अनुभव के अनिश्चित स्वभाव की उलट प्रस्तुति (अनिर्वचनीय ख्याति) है।[89]

इसप्रकार चित्सुख ने मानसिक, ऐद्रिय विषयक उन प्रस्तुतियो की सही व्याख्या को अपना लक्ष्य बनाया जिन्हे न तो सत् कहा जा सकता है और न असत्। ये अवर्णनीय, भ्रामक और अनिश्चित है। इन्ही तत्त्वदर्शी विचारो का विस्तार चित्सुख के सपूर्ण दर्शन मे है।

---

88 एस एन दासगुप्ता हिस्ट्री ऑफ इडियन फिलासफी, भाग द्वितीय पृष्ठ 152

89 डी सी भट्टाचार्या पोस्ट शाकर अद्वैत द कल्चरल हेरिटेज ऑफ इडिया, भाग तृतीय पृष्ठ 273

विद्यारण्य माधव

चितसुख के बाद तत्त्वदर्शी विचारको मे विद्यारण्य माधव का स्थान है। उन्होने पचदशी विवरण प्रमेय सग्रह तथा जीवन मुक्ति विवेक आदि ग्रथो की रचना की। पचदशी ग्रथ मे विवरण के अद्वैत सिद्धात पर व्यापक चर्चा की गयी है। विद्यारण्य के अनुसार वेदो मे ब्रह्म को समस्त सबधो से रहित घोषित किया गया है। इसीलिए ब्रह्म और माया के मध्य कोई वास्तविक सबध नही है। जिसप्रकार आकाश और उसके नीले रग के बीच वास्तविक सबध नही है, उसीप्रकार ब्रह्म और माया के बीच भी वास्तविक सबध नही है। इस सबध को अनिर्वचनीय तादात्म्य सबध के नाम से अभिहित किया गया है।[90] माया ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को आच्छादित करती है। माया मे जगत को आभासित रूप मे प्रस्तुत करने की शक्ति है। ब्रह्म शुद्ध सत् है। माया ब्रह्म की सहयोगिनी है। यह ब्रह्म के उस हिस्से से सबद्ध है जो स्वय को हृदय और उसके नये रूप मे परिवर्तित करता है। इसीलिए सपूर्ण विश्व के द्रव्य ब्रह्म और माया के सयुक्त रूप है।[91]

ईश्वर और जीव सयुक्त सर्जनात्मक शक्ति है, जिनसे आभासित जगत उत्पन्न होता है। ईश्वर परमपिता है, जीव उसका सहायक है। ईश्वर जगत के अस्तित्त्व का आधार है। जीव आनद का बिदुपथ है। ईश्वर स्वभावत सगुण है जीव मानसिक है।[92] इस भ्रम को आत्मसात करने से पूर्व विद्यारण्य मानते है कि अखण्ड, सर्वव्यापी, परमसत् स्वय को ईश्वर और जगत से भिन्न रखता है। परतु ईश्वरत्त्व और जीवत्त्व असत् के आरोपण मात्र है। यह माया और पॉच शारीरिक खोलो से ढॅके है। यह खोल माया के परिवर्तित स्वरूप है। मायाशक्ति का सबध ईश्वर से है। ईश्वर जगत का कर्त्ता धर्त्ता, और नियता है। सत् ज्ञान के आभास के कारण चेतनयुक्त प्रतीत होता है। ब्रह्म ईश्वर रूप मे दृष्टिगत होता है, क्योकि वह माया शक्ति से युक्त है। जब आत्मा पॉच खोलो से घिरी होती है, तभी जीव उत्पन्न होता है। यह व्यावहारिक आत्मा है। लेकिन प्रधान ब्रह्म है, जो ईश्वर रूप मे प्रकट

---

90 टी एम पी महादेवन द पचदशी ऑफ भारतीतीर्थ विद्यारण्य पृष्ठ 19

91 एस एन दासगुप्ता हिस्ट्री ऑफ इडियन फिलासफी भाग 2 पृष्ठ 215

92 टी एम पी महादेवन द पचदशी ऑफ भारतीतीर्थ विद्यारण्य पृष्ठ 44 45

होता है माया से जुडता है जीव द्वारा पाच खोलो को आरोपित करता है। परम ब्रह्म की तुलना उस मानव से होनी स्वाभाविक है, जो एक ओर किसी का पिता है तो दूसरी ओर दादा है। किंतु अपने स्वय के व्यक्तित्व मे न किसी का पिता है और न दादा है। जब हम माया उसके प्रभाव और अनस्तित्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लेते है तो ब्रह्म के वास्तविक शुद्ध और असीमित स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेते है।[93]

विद्यारण्य ने माया के स्वभाव की व्याख्या करते समय कहा है कि माया जगत का उपादान कारण है। वह स्वभावत अज्ञान है। इसका प्रमाण स्वअनुभव है। अज्ञानी से विवेकी तक प्राकृतिक वस्तुओ के एक स्थान पर दूसरे के होने और मायावी होने का अनुभव करते है। यद्यपि अपरोक्ष तथा सर्वव्यापी अनुभव मे माया अनिश्चयकारी है। माया तर्कपूर्ण नही है। माया असत् नही है, क्योकि इसका अनुभव होता है। वह सत् भी नही है क्योकि इसका खण्डन होता है। इसलिए तार्किक दृष्टि से माया एक पहेली है। लेकिन सोपाधिक रूप से माया अवास्तविक है। ज्ञान के स्तर पर ससार मे जो नही है, वही माया है। धार्मिक ग्रथो मे आस्था रखने वालो के लिए माया किसी भी समय वास्तविक नही है। उनके लिए माया कभी नही है। तर्कशास्त्रियो के लिए माया अनजान है। इसका वर्णन न तो सत् और न ही असत् रूप मे किया जा सकता है। व्यावहारिक जीव के लिए माया का आभास वास्तविक है। सिद्ध हुआ कि माया तीन प्रकार की है – अवास्तविक अनिश्चित और वास्तविक।[94]

मधुसूदन सरस्वती

शाकर-अद्वैत के उत्तरवर्ती अतिम महान विचारक मधुसूदन सरस्वती है, जिन्होने अद्वैतसिद्धि ग्रथ की रचना की है। उन्होने सिद्धात बिदु मे अविद्या को भावरूप तथा सत्-असत्, सदसत् से विलक्षण अतएव अनिर्वचनीय माना है। 'अद्वैतसिद्धि' के अनुसार अविद्या अनादि व भावरूप होकर भी ज्ञान से निवृत्त हो सकती है। भावरूपता का तात्पर्य अभाव से

---

93 टी एम पी महादेवन द पचदशी ऑफ भारतीतीर्थ विद्यारण्य पृष्ठ 38

94 वही पृष्ठ 71

विलक्षण होना है।[95] यह भावरूपता वास्तव मे त्रिकाल से बॅधा रूप नही है। भावरूपता ब्रह्म का गुण है। अविद्या ब्रह्मज्ञान द्वारा बाधित हो जाती है। इसीकारण वह अबाधित सत् नही है।

मधुसूदन सरस्वती के अनुसार, अविद्या की दो शक्तियॉ है। पहली शक्ति है – अपने आश्रय और विषय को ढॅक लेना अर्थात् उसके स्वरूप को प्रकट न होने देना। यह अविद्या का स्वभाव है। दूसरी शक्ति है – अपने स्वरूप के विपरीत अन्य स्वरूप का बोध कराना अर्थात विक्षेप करना। माया या अविद्या को अलीक' कहा गया है। अद्वय ब्रह्म प्रकाशित नही होता है अत, वह नही है , ऐसा व्यवहार योग्यता का आवरण है। इसकी प्रायोजिका आवरण शक्ति है। मै कर्त्ता भोक्ता, प्रमाता हूँ इसतरह का भ्रम पैदा करने वाली शक्ति विक्षेप शक्ति है।

अविद्या के आश्रय एव विषय के सबध मे अद्वैत वेदातिक विचारको की दो धाराएँ है। एक धारा मे ब्रह्म को ही अविद्या का आश्रय और विषय दोनो माना गया है तथा दूसरी धारा मे अविद्या का आश्रय जीव को और विषय ब्रह्म को माना गया है। मधुसूदन सरस्वती पहली धारा के समर्थक है। उनके अनुसार अविद्या का आश्रय ब्रह्म है। यद्यपि अविद्या के आश्रयत्त्व से ब्रह्म की शुद्धता मे कोई दोष नही आता है। दर्पण का सबध मुख से होने पर दर्पणगत मालिन्य या अन्य दोष उसमे पडने वाले प्रतिमुख मे ही आता है, वैसे ही अविद्या ब्रह्माश्रिता है पर उसका प्रभाव प्रतिबिब भूत जीव पर ही पड़ता है बिबभूत ब्रह्म पर नही।[96] अविद्या साक्षिवेद्य है, शुद्ध चैतन्य से प्रकाशित नही मानी जाती है।

समीक्षा

शकराचार्य जगत को माया कहते है। उनके अनुयायियो ने भी माया के सिद्धात पर

---

95 अनादिभावरूपत्वे सति ज्ञाननिवर्त्या अविद्या ।
भावत्व चात्राभावविलक्षत्मात्र विवक्षितम ।।

अद्वैतसिद्धि पृष्ठ 544

96 अविद्याया आश्रयस्तु शुद्ध ब्रह्ममैव दर्पणस्य मुखमात्र सबधेऽपि प्रतिमुखे मालियन्यवत प्रतिबिंब जीवे ससार। बिबे ब्रह्माणि उपाधे प्रतिबिंबपक्षपातित्वात ।

वही पृष्ठ 577

आधारित जगत की अवधारणा का प्रतिकार नही किया। लेकिन बाद मे माया का स्वरूप मूल्यपरक न होकर वर्णनात्मक और सृजनात्मक सिद्धात के रूप मे वर्णित है।[97] शाकर-अद्वैत के उत्तरवर्ती अनुयायी ब्रह्म ज्ञान के केद्रीय विषय से हटकर ब्रह्म और माया के बीच सबध तलाशने की ओर अधिक झुके हुए दिखते है। ब्रह्म और माया के सबध को लेकर तीन प्रमुख मत उभरे। वे मत है—

(1) आभासवाद (Appearance Theory)

(2) प्रतिबिबवाद (Reflection Theory)

(3) अवच्छेदवाद (Determination Theory)

आभासवाद मे सुरेश्वर के अनुसार अविद्या के कारण ब्रह्म परदे मे है। यह साक्षी के रूप मे आभासित होता है। साक्षी ईश्वर के समान है। ब्रह्म बुद्धि के कारण भी परदे मे रहता है और जीवरूप मे आभासित होता है। प्रतिबिबवाद मे ब्रह्म का माया मे प्रतिबिंब ईश्वर है। ब्रह्म का अविद्या मे प्रतिबिब जीव है। अविद्या माया का ही हिस्सा है। [98] अवच्छेदवाद मे, वाचस्पति मिश्र के अनुसार, माया असत् है। असीमित ब्रह्म के स्वभाव से माया सीमित होती है और उसके द्वारा जीव प्राप्त होता है। ब्रह्म ईश्वर की भॉति सीमित नही है। वही ब्रह्म अविद्या के विषय के रूप मे ईश्वर है। लेकिन अविद्या का आश्रय जीव है। यद्यपि अविद्या जीव को निश्चित स्वरूप प्रदान करती है और उसे अपने घेरे मे लेती है। लेकिन ईश्वर को निश्चित स्वरूप नही देती है और न ही अपने घेरे मे ले पाती है।[99]

ज्ञानमीमासीय दृष्टिकोण से अतीद्रिय ज्ञान से ऐद्रिक ज्ञान की अवस्था मे जाना कठिन है। बल्कि कुछ सदर्भ मे ज्ञान द्वारा विषयीगत अनुभव के सकेत को स्थापित करना कठिन है। ज्ञान का आध्यात्मिक से ऐद्रिय की ओर आना बौद्धिक तर्क होकर भी पूर्णत वैचारिक नही है। यह शकराचार्य के माया सिद्धात का ज्ञानमीमासीय उलझाव है। प्रस्तुत

---

97 पी टी राजू पोस्ट शाकर हिस्ट्री ऑफ फिलासफी ईस्टर्न एण्ड वेस्टर्न भाग 1 पृष्ठ 292

98 वही पृष्ठ 295

99 वही पृष्ठ 295

दृष्टिकोण शकराचार्य के स्थान पर शकरवाद' मे अधिक विकसित हुआ है।[100] अद्वैत के विभिन्न सिद्धातो की आलोचना और खण्डन के लिए इसका विकसित होना आवश्यक भी था। इन आलोचनाओ से स्वतत्र सिद्धात के विकसित होने की दिशाएँ खुली। इसी का परिणाम है कि मण्डन मिश्र सुरेश्वर पद्मपाद और वाचस्पति मिश्र ने अपने दार्शनिक विचारो के माध्यम से चार दर्शन धाराओ का प्रवर्तन किया। इनके भी अनेक अनुयायी हुए। यद्यपि यह सभी धाराएँ परस्पर सबद्ध रही है। ये अलग अलग और स्वतत्र विचारो के प्रवाह नही है।[101]

शाकर अद्वैत के उत्तरवर्ती विचारको ने आभासित जगत के उलझे हुए स्वरूप की बात कही है। उन्होने जगत को अनिर्वचनीय बताया है। जगत और ब्रह्म मे कार्य-कारण सबध है। यह सबध वास्तविक और बोधगम्य नही है। यह आभासिक जगत मे ही अस्तित्त्व रखता है ब्रह्म की वास्तविकता को व्याख्यायित नही करता। हमारे समक्ष वस्तुएँ सत् रूप मे प्रगट तो होती है, किंतु वास्तव मे वह ब्रह्म के साथ ही है। वह वास्तविक होने का आभास देती है जबकि यथार्थ मे उनका अस्तित्त्व नही होता है। सुरेश्वर के अनुसार, जगत की उत्पत्ति सत् से होती है। वह सत् मे ही समाहित भी होता है। इस नाते सपूर्ण जगत सत् है। सत् से अलग जगत का कोई अस्तित्त्व नही है।[102]

सक्षेप मे, तत्त्वदर्शी विचारको की धारणा है कि मायावाद' या अविद्यावाद' से तीन स्तरीय निष्कर्ष प्राप्त होते है

1 वैचारिक स्वभाव की देन आत्मव्याघात है।

2 ब्रह्मज्ञान के बाद वैचारिक निरर्थकता का ज्ञान होता है।

3 तत्त्वदर्शी विचारको ने परोक्ष रूप से अन्य विचार पद्धतियो को भी महत्त्व दिया है।[103]

---

100 ए वी शास्त्री स्टडीज इन पोस्ट शाकर डायलेक्टिक्स पृष्ठ 199

101 पी टी राजू पोस्ट शाकर हिस्ट्री ऑफ फिलासफी ईस्टर्न एण्ड वेस्टर्न भाग प्रथम पृष्ठ 290

102 ए बी शास्त्री स्टडीज इन पोस्ट शाकर डायलेक्टिक्स पृष्ठ 74

103 वही पृष्ठ 242 43

इन विचारो ने अद्वैत सिद्धात को और अधिक पल्लवित एव विकसित किया है। इस सिद्धात मे प्रमुखता मायावाद को ही मिली है। ए.बी शास्त्री के अनुसार माया अबोधगम्य और रहस्यात्मिका है। शकराचार्य ने अद्वैत वेदात मे अध्यास की व्याख्या मे अनिर्वचनीय सिद्धात के सार मे माया को स्थापित किया है। अविद्या सभवन सिद्धात के रूप मे भ्रमात्मक विचारो मे नये आभासो का सृजन करती है।[104] वस्तुत यह आभास माया या अविद्या द्वारा ब्रह्म पर आरोपित होते है। ब्रह्म हर दृष्टि से शुद्ध सत् और आनद स्वरूप है।

स. मायावाद के संबंध में अन्य वेदांतियों के मत

शकराचार्य के परवर्ती अन्य वेदातियो मे रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य और बल्लभाचार्य प्रमुख है। इन सभी दार्शनिको ने ब्रह्मसूत्र पर अपना भाष्य लिखा है। इनकी सफलता का आकलन मायावाद पर इनके विचारो के अध्ययन के बाद ही सभव है। किंतु यह निर्विकल्प रूप से सत्य है कि रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवाद मध्वाचार्य का द्वैतवाद निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैतवाद और वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद शकराचार्य के अद्वैतपोषक मायावाद सिद्धात का प्रतिक्रियात्मक स्वरूप है। दर्शन ही नही अपितु सपूर्ण ब्रह्माण्ड का प्राकृतिक विकास प्रतिक्रिया द्वारा ही होता है। यही लक्षण मायावाद के सिद्धात मे भी परिलक्षित होता है। शकराचार्य का दर्शन मूलत बौद्ध दर्शन की प्रतिक्रिया स्वरूप विकसित हुआ है। बौद्ध दर्शन भी वैदिक धर्म और दर्शन की प्रतिक्रिया का ही रूप है। शकराचार्य ने बौद्ध दर्शन की प्रतिक्रिया स्वरूप वैदिक मत–अद्वैत की स्थापना के लिए मायावाद का सिद्धात प्रस्तुत किया था, जिसकी प्रतिक्रिया मे रामानुज प्रभृति आचार्यो की दर्शन पद्धतियो की उत्पत्ति हुई थी। यह बात अलग है कि इन आचार्यों को अपने मतवादो की स्थापना करते समय भागवत धर्म से कुछ और आधार भी मिला था।[105]

यह सत्य है कि शकराचार्य के बाद के आचार्यो के दार्शनिक सिद्धात मायावाद की

---

104 ए बी शास्त्री स्टडीज इन पोस्ट शाकर डायलेक्टिक्स पृष्ठ 242 43

105 डॉ राममूर्ति शर्मा शकराचार्य पृष्ठ 197

प्रतिक्रिया स्वरूप ही विकसित हुए, लेकिन इस सत्य को भी अनदेखा नही किया जा सकता है कि बाद के दार्शनिको ने किसी न किसी रूप मे मायावाद के सिद्धात को स्वीकार ही किया है। इसलिए यह आवश्यक है कि शकराचार्य के मायावाद सिद्धात की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न विचारो और उनके दर्शन मे मायावाद से सबधित विचारो का अनुशीलन किया जाय। यहॉ मुख्यत आचार्य रामानुज निम्बार्क मध्व और वल्लभ की दर्शन-पद्धतियो का माया के सदर्भ मे अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

रामानुजाचार्य

शकराचार्य के परवर्ती वेदातियो मे रामानुज सर्वप्रमुख है। इन्होने विशिष्टाद्वैतवाद की स्थापना की। अद्वैत वेदात के निर्विकार निर्विकल्प ईश्वर को रामानुज ने अस्वीकार कर दिया। उसके स्थान पर सगुण, सविशेष व्यक्तित्वपूर्ण ईश्वर की सकल्पना को रखते हुए विशिष्टाद्वैत का सिद्धात स्थापित किया। यह सिद्धात भी अद्वैतवाद की प्रतिक्रिया मे ही विकसित हुआ था। रामानुज ने शकराचार्य के मायावाद को अस्वीकार करते हुए चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म की सकल्पना की तथा व्यावहारिक (मायिक) जगत को शकर की भॉति मिथ्या न कहकर सत् रूप मे ग्रहण किया। रामानुज ने मायावी ईश्वर और निर्गुण ब्रह्म को दो पृथक् तत्त्व न मानकर सगुण ब्रह्म को ही परम तत्त्व स्वीकारा है।

शकराचार्य माया को मिथ्याभूता सनातनी मानकर मिथ्या सिद्ध करते है। लेकिन रामानुजाचार्य ने माया को ईश्वर की विचित्रधर्मी शक्ति के रूप मे स्वीकार किया है। इसीकारण उन्होने माया शब्द को आश्चर्यवाची कहा है।[106] जिसतरह निद्रा अवस्था मे ज्ञात रथादि की सत्ता का पूर्णतया अभाव होने पर भी उसके आश्चर्यजनक अस्तित्त्व का बोध होता है उसीप्रकार ईश्वर द्वारा सृजित यह सपूर्ण जगत भी आश्चर्यरूपा है। परमात्मा की यह सृजनात्मक शक्ति अचित्य है।[107] रामानुज ने कुछ स्थलो पर माया को

---

106 मायाशब्दो ह्याश्चर्यवाची।

श्रीभाष्य 3 2 3

107 वही 3 2 3

कूटयुक्ति भी कहा है।[108] उनकी विवेचना से यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि मायावाद सबधी अवधारणा शकराचार्य से भिन्न है। शकर के मायावाद की आलोचना मे उन्होने सात अनुपपत्तियो का उल्लेख किया है। किंतु शकराचार्य के अनुयायियो और अन्य वेदातियो ने रामानुजाचार्य की इन सभी अनुपपत्तियो का तर्कपूर्ण निराकरण करने का भी प्रयास किया है। वे निम्नवत् है—

1 **आश्रयानुपपत्ति**–रामानुजाचार्य ने शकर की माया के आश्रय पर प्रश्नचिह्न लगाया है। उनका मानना है कि जिस अविद्या से सपूर्ण नानारूपात्मक व्यावहारिक जगत उत्पन्न होता है उसका आश्रय कहॉ है? जीव को माया का आश्रय मानना उचित नही है क्योकि जीव तो स्वय अविद्या या माया से उत्पन्न होता है। इसलिए जीव माया का आश्रय नही हो सकता। यदि ब्रह्म को आश्रय मानेगे तो वह भी उचित नही है क्योकि ब्रह्म तो स्वय प्रकाशवान और ज्ञान स्वरूप है। वह अधकारमय तथा अज्ञानरूप माया का आश्रय कैसे हो सकता है? इसलिए माया ब्रह्माश्रित भी सिद्ध नही की जा सकती है।[109]

समाधान डॉ प्रभुदत्त शास्त्री ने रामानुज की उक्त आलोचना का प्रतिवाद किया है। उनके अनुसार, रामानुज की अनुपपत्ति मे मुख्यत दो त्रुटियॉ दृष्टिगोचर होती है—प्रथम त्रुटि यह है कि वे अविद्या को सत् पदार्थ मानकर उसका आश्रय खोजने का प्रयास कर रहे है, किंतु अविद्या सत् पदार्थ न होकर अभाव या आवरण मात्र है। जिसप्रकार लकडी मे अग्नि छिपी होती है, उसीप्रकार ब्रह्म चेतनता या सत्ता उपाधियो मे छिपी है।[110] किंतु शास्त्री का यह वैचारिक दृष्टिकोण उचित नही है। यदि माया या अज्ञान को ज्ञान का अभाव रूप मानेगे तो वह आवरण शक्ति का कार्य

---

108 रामानुज भाष्य 7 15

109 श्रीभाष्य 1 1 1

110 पी डी शास्त्री द डाक्ट्रिन ऑफ माया पृष्ठ 122

कदापि नही करेगी। जबकि शकराचार्य ने अद्वैत वेदात मे स्वय ही स्वीकार किया है कि माया अभाव रूप न होकर भाव रूप है।[111]

द्वितीय त्रुटि यह है कि रामानुजाचार्य द्वारा स्वीकार्य ब्रह्म और जीव का भेद ही व्यर्थ है। उपाधियॉ ही आत्मा को ब्रह्म और जीव के रूप मे विभक्त करती है। इसीकारण रामानुज का अपेक्षित अविद्या का आश्रय मन और इद्रियो की उपाधियॉ ही है।[112]

कितु यह त्रुटि भी मान्य नही है क्योकि वेदात मे भी अविद्या उपाधि के कारण जीव और ब्रह्म का भेद स्वीकारा गया है। यह सत्य है कि परमार्थ मे जीव ब्रह्मभाव को प्राप्त करता है, किंतु इसके लिए मन और इद्रियो की उपाधियो को अविद्या का आश्रय नही माना जा सकता है, क्योकि मन और इद्रियो की उपाधियॉ भी अविद्या ही है।[113]

वस्तुत रामानुजाचार्य के ब्रह्म और अज्ञान के विरोध का समाधान यह है कि धर्मभूत ज्ञान और अज्ञान मे ही विरोध है, न कि स्वरूपभूत ज्ञान और अज्ञान मे। ब्रह्म को स्वरूप ज्ञान मान लेने पर उसका अज्ञान से विरोध नही हो सकता है। इसीकारण ब्रह्म और अविद्या को विरोधी नही माना जा सकता।

2 **तिरोधानानुपपत्ति**–रामानुज का कहना है कि शकराचार्य ने माया को अविद्या कहा है। अविद्या का अर्थ है ज्ञान का नष्ट हो जाना। जबकि शुद्ध ज्ञान नष्ट नही होता। शुद्ध ज्ञान की सत्ता अनत है। यह मानसिक वृत्ति या विकल्प नही है। क्योकि उसका उद्भव नही होता, इसीलिए उसका विनाश भी सभव नही है। शुद्ध ज्ञान स्वय प्रकाश है अत उसका तिरोधान नही हो सकता। ज्ञान का तिरोधान करना ही माया

---

111 वेदातसार 6

112 पी डी शास्त्री द डाक्ट्रिन ऑफ माया पृष्ठ 122

113 डॉ राममूर्ति शर्मा शकराचार्य पृष्ठ 205

का कार्य है। लेकिन ज्ञान का तिरोधान भी असभव है। इसलिए माया असिद्ध है। रामानुज का शकर की माया के विरुद्ध यह आपत्ति है कि अद्वैत वेदात मे तिरोधान का आशय प्रकाश के नाश से ही समझा जा सकता है।[114]

समाधान रामानुजाचार्य की इस शका का एकमात्र कारण शकराचार्य का माया के प्रति उचित दृष्टिकोण का न होना है। वस्तुत शाकर वेदात के अनुसार माया प्रकाश का नाश नही करती वरन् (माया के वश) जीव को आध्यात्मिक ब्रह्म के स्वरूप ज्ञान से वचित कर देती है। कितु रामानुजाचार्य की यह शका निराधार है। ऑख के सामने एक छोटा-सा मेघ का टुकडा आने पर अज्ञानी व्यक्ति सूर्य को भी प्रकाशहीन और घनाच्छन्न समझ लेता है।[115]

3 **स्वरूपानुपपत्ति**–रामानुजाचार्य ने इस अनुपपत्ति मे मायावाद का खण्डन करते हुए कहा है कि अद्वैत वेदात मे ज्ञान निर्विषय, निराश्रय एव स्वय प्रकाशवान है, कितु स्वाश्रयभूत अविद्या रूप दोष के कारण अनत ज्ञाताओ तथा ज्ञेयो की परिकल्पना मात्र ही सभव है। जबकि ज्ञाता और ज्ञेय की अनतता की द्योतक इस माया के स्वरूप की सिद्धि ही नही हो पाती है। तर्कानुसार माया न सत् है और न ही असत्। अद्वैत के अनुसार, ब्रह्म ही एकमात्र सत् है। अत माया को सत् स्वीकार नही किया जा सकता है।[116] इसके साथ ही माया असत् भी नही है, क्योकि माया द्वारा उत्पन्न ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान के व्यावहारिक भेद को असत् भी नही माना जा सकता है। असत् ज्ञान को मानने से शून्यवाद की ही स्थापना सभव है और माया को असत् मानने से उसका आश्रय असत् ही हो जायगा। यदि ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान तीनो असत् है तो जिसतरह अविद्या रूपी असत् पदार्थ की कल्पना की गयी उसीतरह अविद्या को मानने के लिए एक अन्य असत्

---

114 श्रीभाष्य 1 1 1

115 हस्तामलक 121

116 श्रीभाष्य 1 1 1

पदार्थ को मानना होगा जो अनवस्था दोष को उत्पन्न करता है।[117] मायावादियो का यह विचार अमान्य है कि ब्रह्म स्वरूप सत् ज्ञान विद्या है क्योकि तब ब्रह्म ही समस्त प्रपच का मूल होगा। ऐसे मे ब्रह्म के अलावा माया को जगत का कारण मानने की आवश्यकता ही नही है। यदि यह स्वीकार कर लिया जाय कि माया स्वरूपत ब्रह्म द्वारा प्रगट की जा सकती है, तो वह नित्य हो जायगी इसलिए कि ब्रह्म नित्य है। इसके अतिरिक्त यदि माया नित्य हो जायगी, तो जीव निरतर माया का दर्शन करता रहेगा। इसका फल यह होगा कि वह कभी मुक्त नही हो सकेगा। यह मान लेने पर कि माया ब्रह्म द्वारा अभिव्यक्त होती है, मुक्ति असभव हो जायगी। अद्वैत वेदातियो की मान्यता है कि रामानुज के उक्त खण्डनो मे तर्क के स्थान पर मात्र खण्डन की प्रवृत्ति झलकती है। उन्होने शकराचार्य द्वारा स्थापित प्रतिभासिक, व्यावहारिक और पारमार्थिक सत्ताओ और इसके साथ ही माया के अनिर्वचनीय स्वरूप पर ध्यान ही नही दिया है। सतात्रय और अनिवर्चनीयवाद मे ही माया का स्वरूप परिलक्षित होता है। शकराचार्य ने अनिर्वचनीयता के माध्यम से माया के स्वरूप को स्पष्ट किया है। उनका मत है कि माया न परमार्थ मे सत् है और न व्यवहार मे शशश्रृग या बध्यापुत्र के समान असत् ही है। तब माया का व्यावहारिक रूप ही ग्रहणीय है। माया का अनिर्वचनीय स्वरूप मान्य है। वास्तविकता यह है कि माया को यदि ब्रह्म मे ही निहित मान लिया जाय तो कोई क्षति सभव नही है क्योकि माया स्वय मिथ्या है। अतएव यह मानना कि माया कही निवास नही कर सकती है, भ्रमात्मक है।

4 **अनिर्वचनीयानुपपत्ति**–रामानुज शकर से असहमति जताते हुए तर्क देते है कि यदि माया को अनिर्वचनीय मान ले तो एक ओर माया का निर्वचन करना और दूसरी ओर उसे अनिर्वचनीय कहना आत्मव्याघाती है। माया को अद्वैत वेदात मे 'सदसद्विलक्षण' कहा गया है। परतु सत्ता का ज्ञान या तो सत् रूप मे होता है या असत् रूप मे। इन दो कोटियो के अतिरिक्त अनिर्वचनीय की एक और कोटि मानना विरोधात्मक है।

---

117 श्रीभाष्य 1 1 1

यदि सदसत् विलक्षण के रूप मे ज्ञान होने लगेगा तो ज्ञान की कोई मर्यादा शेष नही रह जायगी।[118] अतएव रामानुज की दृष्टि मे जिसका हमे ज्ञान नही होता, उसकी सत्ता है यह कहना अनुचित है।

समाधान रामानुजाचार्य का आक्षेप प्रतीतगत सत् को न मानने के कारण से है, क्योकि माया के सदसद् विलक्षणत्व से युक्त अनिर्वचनीयत्व का अर्थ है कि माया न पारमार्थिक रूप से सत् है और न ही शशश्रृगवत् पूर्णतया असत् है। यह नही कि माया न सत् है और न असत् ही है। इसी कारण माया की प्रातीतिक सत्ता स्वीकार्य है और आत्मा की पारमार्थिक सत्ता। ऐसा मानने पर न अद्वैत का खण्डन होता है और न माया की अनिर्वचनीय रूप की अनुपपत्ति होती है।[119]

5 **प्रमाणानुपपत्ति**–इस अनुपपत्ति मे रामानुजाचार्य ने प्रमाण के अभाव के आधार पर भी मायावाद को खण्डित किया है। उनके अनुसार, यदि माया है तो उसे हम किस प्रमाण से जान सकते है? प्रत्यक्ष द्वारा इसका ज्ञान असभव है, क्योकि प्रत्यक्षत, या तो भावात्मक वस्तु का ज्ञान सभव है अथवा अभावात्मक वस्तु का। माया न भावात्मक है और न अभावात्मक है। माया को अनुमान द्वारा भी नही जाना जा सकता है क्योकि माया कोई वैध लिग नही है। श्रुति के आधार पर भी माया को नही जान सकते है। श्रुति या तो इस विषय मे मौन है या माया को ईश्वर की वास्तविक शक्ति के रूप मे स्वीकार करती है। स्पष्ट है कि माया को हम किसी प्रभाव से नही जान सकते है। अत उसका कोई अस्तित्त्व नही है।[120]

समाधान अद्वैत वेदातियो का मानना है कि रामानुजाचार्य का उक्त आक्षेप भी उचित नही है, क्योकि माया का अस्तित्त्व व्यावहारिक सत् पर निर्भर है, जो पारमार्थिक सत् तथा पूर्ण असत् से विलक्षण है। इसका

---

118 श्रीभाष्य 1 1 1

119 डॉ राममूर्ति शर्मा शकराचार्य पृष्ठ 207 208

120 श्रीभाष्य 1 1 1

ज्ञान प्रत्यक्षादि प्रमाणो द्वारा ही सभव है। सारा मायिक जगत, व्यवहारत सत् है और प्रत्यक्ष आदि प्रमाणो से अनुभव का विषय है। अत प्रमाणानुपपत्ति का आक्षेप ही असगत सिद्ध हो जाता है। वास्तविकता यह है कि माया कोई वस्तु नही है। वह भाव न होकर भावरूप है। अतएव यह प्रश्न उठाना ही असगत है कि माया का ज्ञान किसप्रकार से होता है?

6 **निवर्तकानुपपत्ति**–श्रीभाष्यकार रामानुजाचार्य ने इस अनुपपत्ति मे अद्वैत वेदातियो के इस मत का खण्डन किया है कि निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर माया या अविद्या का निवर्तन हो जाता है। रामानुजाचार्य का मानना है कि निर्गुण निराकार ब्रह्म का ज्ञान असभव है। ज्ञान सदैव सविशेष वस्तु का ही हो सकता है और ज्ञान के लिए अभेद के साथ भेद का होना भी अत्यत आवश्यक है। ऐसे मे किसी निर्गुण, निराकार वस्तु का जिसमे गुण या भेद का अभाव हो, ज्ञान प्राप्त करना असभव है। इस अवस्था मे माया का विनाश भी असभव है, क्योकि वेदाहमेत पुरुष महातमादित्यवर्ण तमस परस्यात् इत्यादि श्रुतिवाक्यो मे ब्रह्म के विशेषणो का ही वर्णन है।[121]

समाधान रामानुजाचार्य की यह अनुपपत्ति भी उचित प्रतीत नही होती है। अद्वैत वेदातियो का मानना है कि शकराचार्य के अद्वैत दर्शन मे इस अनुपपत्ति का समाधान मौजूद है। शकराचार्य ने परा और अपरा दो प्रकार की विद्याओ की स्थापना की है। जहॉ अपराविद्या का ब्रह्म सगुण है, वही पर पराविद्या का ब्रह्म निर्गुण है। इसीकारण परमब्रह्म निर्गुण व निराकार स्वरूप ही है। यहॉ रामानुजाचार्य का आक्षेप निराधार है। पुनश्च, निर्गुण ब्रह्म ज्योतिस्वरूप है। उसके ज्ञान के लिए ज्ञाता की अपेक्षा नही है। केवल अज्ञान, जो ज्ञान का अवरोध करता है, के निवारण से वह प्रकाशित हो जाता है।

7 **निवृत्यानुपपत्ति**–रामानुजाचार्य इस अनुपपत्ति मे, अद्वैतवादियो के मत, ब्रह्म और

---

121 श्रीभाष्य 1 1 1

आत्मा के एकत्व द्वारा अविद्या की निवृत्ति का विरोध करते है। उनके अनुसार बधन वास्तविक है इसलिए ज्ञान के द्वारा उसकी निवृत्ति सभव नही है।[122]

इसके साथ ही वेदातियो ने माया को भावरूप माना है। जो वस्तु भाव रूप है उसकी निवृत्ति नही हो सकती है क्योकि किसी भावरूप वस्तु का ज्ञान द्वारा निराकरण सभव नही है। पुण्य-पापरूप कर्मो के निमित्त से ही देव आदि का शरीर प्राप्त होता है। इसलिए बधन को मिथ्या नही कहा जा सकता।[123] जीव का बधन कर्म सस्कार द्वारा होता है जो एक वास्तविकता है। अमूर्त ज्ञान द्वारा इसका निराकरण नही किया जा सकता है। कर्म सस्कारो का बधन कर्म, ज्ञान भक्ति और ईश्वरीय प्रसाद द्वारा ही दूर किया जा सकता है। इसप्रकार रामानुज यह प्रतिपादित करते है कि माया की निवृत्ति ईश्वर के सतत चिंतन, आत्मा के यथार्थ ज्ञान तथा वर्णाश्रम धर्म के पालन से ही हो सकती है।

समाधान रामानुजाचार्य द्वारा प्रस्तुत आक्षेप उनकी स्वय की कल्पना प्रतीत होती है। अद्वैत वेदात मे बधन वास्तविक न होकर अविद्या-जन्य है। अविद्या निवृत्ति होने पर मिथ्या बधन से मुक्ति प्राप्त होती है। ज्ञान होने पर अविद्या की निवृत्ति स्वत हो जाती है। इसके साथ ही अद्वैत वेदात कर्म की सत्ता पारमार्थिक न मानकर व्यावहारिक ही मानता है। अविद्या के रहते जीव और ब्रह्म की पृथक अनुभूति प्राप्त होती रहती है, किंतु अविद्या का नाश होते ही जीव और ब्रह्म के बीच व्याप्त पृथकत्त्व का अनुभव समाप्त हो जाता है तथा दोनो मे एकत्व का भाव दृष्टिगोचर होने लगता है। इसलिए यह अनुपपत्ति भी असिद्ध है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि रामानुजाचार्य द्वारा मायावाद की प्रतिक्रिया मे व्यक्त विचार एकागी है। मायावाद के विरोध मे किये गये आक्षेप पक्षपातपूर्ण

---

122 यत पुनरिदमुक्त ज्ञाननिवर्त्यत्वा भावात ।
श्रीभाष्य 1 1 1

123 वही 1 1 1

कहे जा सकते है। रामानुज के प्रति-विचारो और खण्डनो से शकर का मायावाद तनिक भी प्रभावित नही हुआ बल्कि निर्दोष ही साबित हुआ है। समकालीन अद्वैतवाद के समर्थक विद्वान् डॉ सगमलाल पाण्डेय ने अपने भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण ग्रथ मे रामानुज द्वारा शकर के मायावाद के खण्डन पर विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि रामानुज की सातो युक्तियॉ ठीक नही है। उन्होने माया को समझने का प्रयास ही नही किया है। भ्राति से उन्होने माया की अपनी एक कल्पना की है और उसी कल्पना की आलोचना की है। उनकी आलोचना मे अर्थातर दोष है। वास्तव मे वेदात की माया वह नही है, जो रामानुज समझते है।

निम्बार्काचार्य

निम्बार्काचार्य के दार्शनिक सिद्धात को द्वैताद्वैतवाद या भेदाभेदवाद' के नाम से अभिहित किया जाता है। इनका सिद्धात आठवी शताब्दी मे भास्कर और ग्यारहवी शताब्दी मे यादव के भेदाभेदवाद के आगे की कडी है। जीव जगत और ईश्वर के विषय मे निम्बार्काचार्य का मत शकराचार्य और रामानुजाचार्य से काफी भिन्न है।

निम्बार्काचार्य ने चित् अचित् तथा ईश्वर—तीनो तत्त्वो को स्वीकार किया है। यह तीनो क्रमश भोक्ता, भोग्य और नियता है। चित् जीव स्वरूप है। यह ज्ञान स्वरूप, प्रज्ञानर्घन स्वय-ज्योति और ज्ञानमय है। इद्रिय निरपेक्ष जीव इद्रियो की अनुपस्थिति मे ही विषय ज्ञान प्राप्त कर लेता है। जीव और उसके ज्ञान, इन दोनो के ज्ञानत्व विषय मे भेद न होने पर भी जीव धर्मी और उसका ज्ञान धर्म है।[124] जीव का स्वरूपभूत ज्ञान एव गुण ज्ञान रूप से अभिन्न है, परतु धर्म धर्मी भाव की दृष्टि से दोनो भिन्न है।

इसीलिए इस सिद्धात के मूल तत्त्व भेदाभेद एव द्वैताद्वैत के नाम से जाने जाते है। निम्बार्काचार्य ने द्वैत और अद्वैत के उभय सामजस्य को श्रुतियो से प्राप्त किया है। उनका मानना है कि जीव उसीप्रकार ज्ञानस्वरूप और ज्ञानाश्रय है, जिसप्रकार सूर्य और उसका प्रकाश।

---

124 वेदात पारिजात सौरभ 2 3 27

जीव अणु परिणाम युक्त हरि का अश है। यहॉ 'अश शब्द शक्ति स्वरूप है।[125] अनादि मायायुक्त होने से जीव का धर्मभूत ज्ञान सकुचित हो जाता है। ईश्वर की कृपानुसार सत्य रूप ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है।[126] जीव की कर्तृत्त्व और भोक्तृत्त्व प्रवृत्ति अह बुद्धि मुक्तावस्था मे भी रहती है।[127]

अचित् जड पदार्थ युक्त जगत है। निम्बार्काचार्य ने अचित् जड जगत के तीन रूप माने है—प्राकृत अप्राकृत तथा काल।[128] सपूर्ण ब्रह्माण्ड प्रकृति है। प्रकृति साख्यवत् त्रिगुणात्मिका अवश्य है किंतु ईश्वर द्वारा नियत्रित भी है। ईश्वरीय लोक प्रकृति नही है। यह अप्राकृत तत्त्व रामानुज के शुद्ध सत्त्व के समान है। काल तत्त्व प्राकृत और अप्राकृत दोनो से भिन्न समस्त सासारिक चक्रो का नियामक है। उसके ऊपर मात्र ईश्वर है।

रामानुज की विचारधारा को स्वीकारते हुए और शकराचार्य का विरोध करते हुए निम्बार्काचार्य ने सगुण ईश्वर के विचार का समर्थन किया है। ईश्वर अशेषज्ञान, बलादि कल्याण गुणो का निधान है और अविद्या आदि समस्त दोषो से रहित है। निम्बार्काचार्य ने कमलनेत्र भगवान कृष्ण को ईश्वर का रूप दिया है।[129] भेदाभेदवाद मे सृष्टि विवर्त न होकर सूक्ष्म चित् और अचित् का स्थूल रूप परिणाम है। ईश्वर की चित् व अचित् शक्तियो की स्थूल रूप मे अभिव्यक्ति उपादान कारण की सूचक है और नियता ईश्वर कर्म के अनुसार फलादि की योजना का व्यवस्थापक होने से निमित्त कारण है। चित् और अचित् ईश्वरीय शक्तियॉ है।

निम्बार्काचार्य ने माया सबधी दृष्टिकोण मे रामानुजाचार्य का ही अनुगमन किया है। उन्होने भी माया को आश्चर्यवाची कहा है।[130] उनके अनुसार सत्यसकल्प सर्वज्ञ परमेश्वर

---

125 श्रीनिवासाचार्य वेदात कौस्तुभ 2 3 42

126 दशश्लोकी 2

127 घाटे द वेदात ए काप्रहेसिव स्टडी पृष्ठ 9

128 अप्राकृत प्राकृतरूपक च कालस्वरूप तदचेतनम् मतम मायाप्रधानादिं पदप्रवाच्य शुक्लदिभेदाश्च समोप तत्र । दशश्लोकी 3

129 वही 4

130 वेदात पारिजात सौरभ, 3 2 3

ही स्वप्नदृष्ट रथादि कार्यो का निर्माता है। ईश्वर की यह मायिक सृष्टि अत्यत आश्चर्यजनक है। इस सृष्टि का ऋष्टा बद्ध जीव नही है। बद्धावस्था मे जीवो के सत्य सकल्प आदि प्रकाशित नही होते है। त्रिगुणात्मिका प्रकृति के अर्थ मे ही निम्बार्काचार्य के दर्शन मे माया का प्रयोग मिलता है।[131] एक स्थान पर उन्होने कहा है कि गुणमयी प्रकृतिरूपिणी अनादि माया से आवृत्त होने के कारण जीव का धर्मभूत ज्ञान हो जाता है।[132]

निम्बार्काचार्य की माया सबधी विचारधारा के अध्ययन से यह स्पष्टतया परिलक्षित होता है कि शकराचार्य के दर्शन मे माया के मिथ्या स्वरूप का नितात अभाव निम्बार्क दर्शन मे मिलता है। यह माया साख्यगत प्रकृति के अधिक निकट प्रतीत होती है, जो स्वतत्र न होकर ईश्वर के नियत्रण मे सचालित और सरक्षित होती है।

मध्वाचार्य

शकराचार्य के मायावादी सिद्धात की प्रतिक्रियास्वरूप रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद की स्थापना हुई, लेकिन इसका पूर्णतया पर्यवसान मध्वाचार्य के द्वैतवाद मे होता है। मध्वाचार्य ने जगत को ईश्वर से पृथक सत्य स्वीकार करते हुए द्वैतवादी सिद्धात की स्थापना की जिसके अनुसार रज्जुगत सर्प भ्रम अथवा मिथ्या न होकर सत् स्वरूप है।

मध्वाचार्य ने अपने द्वैतवादी दर्शन मे पॉच प्रकार का द्वैत स्वीकार किया है, जो इस प्रकार है—ईश्वर और जड जगत का द्वैत, जीव और जगत का द्वैत ईश्वर और जीव का द्वैत जीव और जीव का द्वैत तथा जड और जड का द्वैत। इसके साथ ही उनके दर्शन मे ईश्वर जीव तथा जगत के विषय मे दूसरो से भिन्न मतो की समाहिति भी है।

मध्वाचार्य के अनुसार, विष्णु परमात्मा के ही रूप है। वे उत्पत्ति, स्थिति, सहार, नियमन, ज्ञान आवरण, बधन और मोक्ष इन आठो के कर्त्ता के रूप मे प्रतिष्ठित है। ईश्वर निमित्त कारण मात्र है। जीव परमात्मा से अलग और अनत है। जीव की तीन कोटियॉ है—

---

131 मायाप्रधानादि पद प्रवाच्यम ।

दसश्लोकी 3

132 वही 3

(अ) मुक्तियोग्य (ब) नित्य ससारी और (स) तमोयोग्य। मुक्तियोग्य जीव देव, ऋषि, पितृ, चक्रवर्ती और उत्तम मनुष्य के रूप मे पॉच प्रकार के होते है। नित्य ससारी जीव कर्म के अनुसार सदैव स्वर्ग और नरक आदि लोको मे विचरण करते रहते है। वे कभी मुक्त नही होते। तृतीय कोटि के तमोयोग्य जीवो मे दैत्य, राक्षस, पिशाच तथा अधम मनुष्य, ये चार प्रकार के जीव आते है।

मध्वाचार्य के दर्शन मे मोक्ष सबधी विचारधारा मे भी शकराचार्य के दर्शन से पर्याप्त भिन्नता परिलक्षित होती है। उनके अनुसार मोक्ष ब्रह्म के साथ तादात्म्य न होकर भगवान विष्णु का साक्षात्कार है।[133] मुक्त पुरुष आनद अनुभव करने के साथ ही परस्पर तारतम्यता का अनुभव अवश्य करता है।

मध्वाचार्य के दर्शन मे माया का स्वरूप अत्यत महत्त्वपूर्ण है जो कि शकराचार्य के मायावादी सिद्धात की चरम प्रतिक्रिया का परिणाम है। मध्वाचार्य ने ब्रह्म के अतिरिक्त जगत की सत्य सत्ता को भी स्वीकार किया है। इसलिए उनमे शकराचार्य की माया की प्रतिच्छाया या प्रतिबिब तलाशना एक धोखा ही होगा। यह अवश्य है कि एक भाष्यकार होने के कारण मध्वाचार्य अपने दर्शन मे माया शब्द से स्वय को मुक्त करने मे असमर्थ रहे है।

मध्वाचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य पूर्णप्रज्ञ दर्शन नामक पुस्तक मे माया' शब्द का अभिप्राय स्वप्न से लिया है।[134] उनके अनुसार जीव ईश्वर का अश है, जो प्रतिबिबवाद पर आधारित है। प्रतिबिब अनुपाधिक और सोपाधिक दो प्रकार के होते है। जीव ब्रह्म का अनुपाधिक प्रतिबिब है। जीव को अविद्या का आश्रय भी माना गया है। यह अविद्या ज्ञान का निषेध होते हुए भी भाव रूप है।[135] अविद्या के चार प्रकार माने गये है—(अ) जीवाच्छादिका जीव के चैतन्य और आनद स्वरूप पर आवरण डालती है। (ब) परमाच्छादिका जीव को

---

133 घाटे द वेदात ए काम्प्रहेसिव स्टडी पृष्ठ 34

134 माया मात्रतु कात्स्न्र्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात ।

पूर्णप्रज्ञ दर्शन 3 2 3

135 न वय भावरूपाज्ञानस्य परिपथिन ।

न्यायसुधा पृष्ठ 63

परमात्मा के स्वरूप को जानने से रोकती है। (स) शैवल जगत के बधन मे जीव को कस कर बॉधती है। (द) माया मायिक कार्यो की सृष्टि करती है। सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि मध्वाचार्य ने परमात्मा की शक्ति को भी परमात्मा की कल्पना से भिन्न माना है।[136] यह मात्र द्वैतवाद की मानसिकता को स्थापित करने का प्रयास है, जो स्वय उनके दर्शन की सत्यता को खण्डित करता है। द्वैतवाद मे शकराचार्य के मायावाद का उचित रूप मे न तो खण्डन हो पा रहा है और न मध्वाचार्य द्वारा माया द्वैतवाद की स्थापना ही ठीक से हो पा रही है।

वल्लभाचार्य

वल्लभाचार्य के दार्शनिक मत को शुद्धाद्वैतवाद के नाम से जाना जाता है, जिसकी स्थापना तेरहवी सदी मे विष्णुस्वामी ने की थी। इसी मत का विकास वल्लभाचार्य ने किया।[137] उन्होने भी शकराचार्य की भॉति अद्वैत सिद्धात को स्वीकार किया है किंतु उनका अद्वैत ब्रह्म मायावादी सिद्धात के समर्थको के ब्रह्म की तरह माया-शक्ति से युक्त न होकर शुद्ध ब्रह्म है। इसीकारण वल्लभाचार्य के अद्वैतवाद को शुद्धाद्वैतवाद का नाम दिया गया है। उनका मानना है कि ब्रह्म माया शक्ति से रहित होकर भी जगत की उत्पत्ति मे समर्थ है। ब्रह्म मायिक नही है।[138] माया तो ब्रह्म की अद्वैतता को खण्डित कर देती है। वल्लभाचार्य और शकराचार्य के सिद्धातो की ऊपरी एकता के होते हुए भी यदि गहराई मे जाया जाय तो इनके मतो मे अतर दिखायी देता है। इस सदर्भ मे वल्लभाचार्य के ब्रह्म, जीव, जगत आदि के सबध मे व्यक्त मतो को जान लेना आवश्यक है।

शुद्धाद्वैतवादी सिद्धात के अनुसार ब्रह्म सर्वशक्तिमान, सर्वगुणसपन्न, सच्चिदानद स्वरूप तथा सर्वज्ञ है। वल्लभाचार्य का यह मानना है कि श्रुतियो मे ब्रह्म के साधारण गुणो

---

136 परमात्माभिन्ना तमात्राधीना लक्ष्मी ।

मध्वसिद्धात सार पृष्ठ 26

137 सकलाचार्य मत सग्रह मे विष्णुस्वामी का मत

138 न तु भगवानेवमायिक. ।

अणुभाष्य 1 1 20

का निषेध किया गया है, इसीकारण ब्रह्म निर्गुण स्वरूप है।[139] ब्रह्म के तीन रूप है— (अ) आधिदैविक परब्रह्म (ब) आध्यात्मिक अक्षर ब्रह्म, (स) भौतिक जगत रूप ब्रह्म। जगत भी ब्रह्म का ही एक रूप है। आविर्भावकाल मे जो जगत रूप मे परिलक्षित होता है, वही तिरोभावकाल मे ब्रह्म रूप हो जाता है।[140] ईश्वर कृष्ण स्वरूप है। भगवान कृष्ण लीला हेतु व्यावहारिक जगत की सृष्टि करते है। भक्तवत्सल भगवान भक्तो की इच्छानुसार विभिन्न रूप धारण करके उनके समक्ष आते है। अक्षर ब्रह्म विशुद्ध ज्ञानैकगम्य है परतु पुरुषोत्तम की प्राप्ति अनन्य भक्ति के द्वारा ही सभव है।[141]

ब्रह्म सत् चित् और आनदस्वरूप है। उसके विकृत अश से जड तत्त्वो की उत्पत्ति होती है तथा चित् अश से चेतन जीव की। जीव अश, ब्रह्म अशी है। दोनो एक दूसरे से अभिन्न है। भिन्नता ब्रह्म की लीला है। वल्लभाचार्य यहॉ पर स्पष्ट रूप से रामानुज तथा निम्बार्क के विपरीत मत रखते है। वल्लभाचार्य के अनुसार, जीव ज्ञाता, ज्ञानस्वरूप और अणुरूप है। मुक्त, ससारी तथा शुद्ध भेद से जीव को तीन कोटियो मे उन्होने विभाजित किया है।

वल्लभाचार्य के अनुसार, शुद्ध परमब्रह्म ही कारण और कार्य दोनो है। व्यावहारिक जगत की उत्पत्ति ब्रह्म के स्वय स्वरूप से होती है। इसके लिए उसे किसी अन्य की आवश्यकता नही होती है।[142] ब्रह्म स्वय आविर्भाव काल मे व्यावहारिक जगत का रूप धारण कर लेता है। इसीलिए वह जगत से अभिन्न और अद्वैत है। वल्लभाचार्य ने अविकृत परिणामवाद के सिद्धात को स्वीकार किया है। ब्रह्म अपनी इच्छा से ही जगत की सृष्टि या सहार करता है। ब्रह्म जगत के रूप मे परिणत होकर भी उसीप्रकार अधिकृत बना रहता है, जिसप्रकार स्वर्ण आभूषण बनकर भी अपने स्वरूप को नही खोता है। जैसे सर्प स्वय को

---

139 अणुभाष्य 3 2 22

140 वही 3 2 27

141 वही 3 3 33 एव गीता 8 22

142 माया सबधरहित शुद्ध मित्त्युच्यते बुधै ।
कार्यकारणरूप हि शुद्ध ब्रह्म न मायिकम ।।
शुद्धाद्वैत मार्तण्ड 28

सकुचित और विकसित करता है उसीप्रकार ईश्वर भी अपनी क्रीडा के लिए जगत का रूप बदलता है और फिर समेटता है। किसी भी वस्तु का न तो एकदम से नाश होता है और न ही विनाश। वस्तुत समस्त चेतन-अचेतन नित्य-अनित्य पदार्थो की द्विविध सृष्टि ब्रह्म के द्वारा ही हुई है।[143] वे अनित्य इसकारण प्रतीत होते है क्योकि ब्रह्म के आनद और चैतन्य इनमे दबे रहते है। भौतिक पदार्थो मे चैतन्य और चेतन जीवो मे आनद गुण आवृत्त है।[144]

वल्लभाचार्य ने मोक्ष प्राप्ति के लिए मुख्यत दो साधनो को स्वीकार किया है—(1) भक्ति और (2) ज्ञान। वास्तविक परमानद की प्राप्ति भक्ति द्वारा ही हो सकती है। उनकी दृष्टि मे भक्ति भी दो प्रकार की है—(अ) मर्यादा भक्ति, (ब) पुष्टि भक्ति। मर्यादा भक्ति मे भक्त शास्त्रानुकूल और साधना के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति कर पाते है। लेकिन पुष्टि भक्ति मे भक्त भगवान को सर्वात्मना आत्मसमर्पण करता है। भगवदनुग्रह द्वारा ही जीव को वास्तविक मुक्ति प्राप्त होती है। भगवदनुग्रह को ही पुष्टिभक्ति कहते है।[145] इसीकारण मुक्त जीव मे तिरोहित आनदाश का पुन आविर्भाव होता है। मुक्त जीव भगवान के साथ अभेद सबध को प्राप्त करके स्वय सच्चिदानद बन जाता है।

शुद्धाद्वैतवादी दर्शन मे मायिक जगत मिथ्या न होकर सत्य है। इस आधार पर शकराचार्य के मायावादी सिद्धात की मिथ्यात्मक धारणा से भिन्न तथा कुछ विपरीत धारणा वल्लभाचार्य की है। उनके अनुसार ब्रह्म रूप से जगत की वास्तविक सत्ता है।[146] जीव ब्रह्म का अश है। ब्रह्म अपने आनद अश को तिरोहित कर लेता है तथा चित् अश की व्यामोहिका माया जीव को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नही होने देती है। यही जगत की उत्पत्ति का

---

143 द्विविधा हि वेदाते सृष्टि । भूत भौतिक सर्व ब्रह्मण एव। विस्फुलिंग न्यायेनैका अपरा विद्यादि क्रमेण सा चानामरूपवत्वेनाभिव्यक्ति स जड़स्यैव कार्यत्वात्तस्य जीवस्य त्वशत्वेनैव न नामरूप सबध ।

अणुभाष्य, 2 3 1

144 सदशेन जड़ा पूर्व चिदशेनेतरे अपि।

डॉ एन के देवराज भारतीय दर्शन पृष्ठ 630 पर उद्धृत

145 श्रीमदभागवत 2 10

146 अतो ब्रह्मरूपेण सत्यस्य जगतो ब्रह्मैव समवायिकाराम ।

अणुभाष्य 1 4 23

प्रमुख हेतु है। माया ब्रह्म की अपृथक-भूता शक्ति है। यह सपूर्ण नानारूपात्मक जगत ब्रह्म का ही कार्य रूप है और प्रकृति इसका अश है। माया का ही रूप अविद्या है और वही प्रकृति है।[147] वल्लभाचार्य ने मुख्यत दो प्रकार की प्रकृतियो का उल्लेख किया है—(1) व्यामोहिका माया तथा (2) प्रकृति या मूल प्रकृति।[148] मूल पुरुष इन दोनो ही प्रकृतियो को अपनाता है। इसमे ईश्वर की इच्छा ही मुख्यत कारण रूप होती है।

वल्लभाचार्य ने मायारूप जगत को अवास्तविक नही माना है [149] क्योकि माया इसके अतिरिक्त और कुछ नही है जिसे ईश्वर की इच्छा से ही उत्पन्न किया जाता है। ईश्वर के पास ऐसी शक्ति है जिससे वह जगत का विकास और विनाश दोनो ही कर सकता है। माया अविद्या से भिन्न है। अविद्या वस्तुओ के एकत्व को आवृत्त किये रहती है और भेद का ज्ञान नही होने देती।[150] किंतु वल्लभाचार्य माया को क्रियाहीन भी नही मानते है, क्योकि इसके द्वारा ही ब्रह्म मे शक्ति का अतर्भाव विद्यमान रहता है। यह सपूर्ण ससार अयथार्थ है। आत्मा का व्यवहार ससार को सत्य मानने मे तो उचित है, लेकिन जब वह इसको अनेक रूपात्मकता के साथ देखती है तब वह अनुचित है। इसप्रकार ससार सत्य अवश्य है, किंतु उसकी प्रतीति सत्य नही है। जब यह जीव के अनुभव से परे हो जाता है कि यह ससार ब्रह्म की एक आकृति मात्र है तो यहॉ जीव के मस्तिष्क मे जगत के स्वरूप को लेकर भ्राति उपस्थित होती है। वह व्यक्ति जिसने धर्मशास्त्रो द्वारा सत्य ज्ञान की प्राप्ति कर ली है, उसके समक्ष यह ब्रह्म और माया दोनो ही रूपो मे प्रस्तुत हो जाता है। यद्यपि यह ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है कि ब्रह्म यथार्थ है और माया अयथार्थ। अज्ञानी जीव ब्रह्म की यथार्थता और अनेको प्रतीतियो की अयथार्थता के मध्य भेद करने मे असमर्थ हो जाता है। यह मायिक प्रतीतिमान वस्तुऍ स्वय को बाह्य और स्वतत्र रूप मे प्रकट करती है। अविद्या का स्थान मानव की बुद्धि मे है। यहॉ वल्लभाचार्य जगत की अयथार्थता के विचार को इस रूप मे

---

147 प्रस्थान रत्नाकर पृष्ठ 161

148 तत्र द्रव्य माया प्रकृतिर्ह्यस्योपादानम इति ।

वही पृष्ठ 163

149 अणुभाष्य 1 1 4

150 डॉ राधाकृष्णन भारतीय दर्शन भाग 2 पृष्ठ 665 पर उदधृत ।

अस्वीकार कर देते है। यदि जगत अयथार्थ है तो यह भी नही कह सकते है कि वह ब्रह्म के साथ एकाकार है क्योकि अयथार्थ वस्तु तथा प्रतीतिमान अयथार्थ वस्तु मे तादात्म्य सबध नही हो सकता है। धोखे की सभावना तो है, किंतु यह ईश्वर द्वारा निर्धारित नही है।[151]

माया द्वारा बद्ध जीव बिना ईश्वर की कृपा के मोक्ष को प्राप्त नही कर पाते है। जीव को मुक्ति प्राप्ति के लिए ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखनी होगी। इस तरीके से ही पाप दूर होते है। वल्लभाचार्य ने समस्त कठोर तपस्याओ को तुच्छ मानकर मानव शरीर को ईश्वर का मदिर कहा है। यह सर्वोपरि सत्ता के ज्ञान के पूर्व कर्म का स्थान है। उसका ज्ञान प्राप्त होने पर भी कर्म विद्यमान रहता है। मुक्तात्मा पुरुष सभी कर्मो को करते है।[152] वल्लभाचार्य के अनुसार, अपने माहात्म्य को प्रकट करने के लिए ब्रह्म अपने से सृष्टि करता है।[153] इसप्रकार स्वय ब्रह्म ही समस्त व्यवहार का कर्त्ता है तथा यह उसका स्वभाव है। सृष्टि को मायिक या मिथ्या नही माना जा सकता है। ऐसे सिद्धात से ब्रह्म और उसकी शक्ति माया मे परस्पर भेद रखकर सबध नही मानना चाहिए। 'माया आदि शब्दो के प्रयोग से स्पष्टतया परिलक्षित होता है कि इसप्रकार के शब्द तो परमब्रह्म और उनकी माया की एकात्मकता यानि कि अभिन्नता को सूचित करते है। निष्कर्ष रूप मे हम यह कह सकते है कि शकराचार्य की अद्वैतवादी सिद्धात की माया का अविद्या के अर्थ मे प्रतिपादकता, वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद सम्मत माया से अलग तथा नये अर्थ मे प्रतिस्थापित होती है।

चैतन्याचार्य

रामानुजाचार्य निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य और वल्लभाचार्य वैष्णव दर्शन के चार प्रमुख दार्शनिक है। इन्होने वैष्णव मत तथा अद्वैत सिद्धात मे एक तरह का सामजस्य स्थापित करने का प्रयास किया। इसके माध्यम से विभिन्न सप्रदायो तथा सिद्धातो को

---

151 डॉ राधाकृष्णन भारतीय दर्शन भाग 2 पृष्ठ 665 667

152 अणुभाष्य 1 1 1

153 साक्षेपमणि कुर्वंतीश्वर इति माहात्म्यम ।

प्रस्थान रत्नाकर 2 1-34

स्थापित किया गया। इन्ही दार्शनिको का अनुसरण व अध्ययन करके कतिपय दार्शनिको ने इनसे पृथक सिद्धात की स्थापना की है। ऐसे दार्शनिको मे प्रमुख भक्त चैतन्याचार्य है। चैतन्य महाप्रभु वैष्णव सप्रदाय के अचिंत्य भेदाभेदवाद सिद्धात के सस्थापक है। अन्य वैष्णव सप्रदायो की तरह ही यह वेदात सप्रदाय भी जगत की वास्तविक सत्ता को मानकर शकराचार्य के मायावाद का खण्डन करता है।

अचित्य भेदाभेद सिद्धात के अनुसार सपूर्ण व्यावहारिक प्रपचात्मक स्वरूप जगत ब्रह्म के माध्यम से न तो पूर्ण रूप से भिन्न सिद्ध होता है और न ही उसमे पूर्णतया समाहित हो पाता है। भेद और अभेद के अचित्य होने के कारण ही इस सिद्धात को 'अचिंत्य भेदाभेदवाद कहा गया।[154] चैतन्य महाप्रभु ने सगुण ब्रह्म और सगुण उपासना पर विशेष बल देकर तथा निर्गुण ब्रह्म को गौण मान कर मध्वाचार्य के द्वैतवाद का अनुसरण किया है। इसीकारण उन्हे माध्वगौडेश्वर वेदात भी कहते है। इसके साथ ही कार्य-कारण सबधो मे चैतन्य रामानुज के अत्यधिक निकट है। चित् और अचित् शक्तियो से युक्त ब्रह्म कारणावस्था मे सूक्ष्मशक्तिक और कार्यावस्था मे स्थूलशक्तिक कहा जाता है। ये दोनो शक्तियाँ अपने शक्तिमान ब्रह्म से स्वरूपत, अभिन्न है, किंतु स्थूलावस्था मे उससे भिन्न भी है। यह भेद और अभेद अचित्य है, क्योकि ब्रह्म की अचिंत्य शक्ति द्वारा ही यह कार्य सभव हो पाता है। शक्तिमान ब्रह्म की चित् अचित् शक्तियो मे परिणाम होने पर भी वह स्वरूपत अपरिणमित बना रहता है। उसकी स्वरूप शक्ति-विशेष जो अपरिणमित रहती है, निमित्त कारण है। चिदचित् शक्तियो से उस शक्ति का योग होने से ब्रह्म उपादान कारण भी है। अत ब्रह्म अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है।

चैतन्य प्रभु ने उपास्य ब्रह्म और उसकी शक्ति को नारायण लक्ष्मी के ऐश्वर्य के स्थान पर कृष्ण-राधा के माधुर्य रूप तथा तदनुकूल ज्ञानरूपा पराभक्ति के स्थान पर प्रेमरूपा भक्ति को स्वीकार किया है। ब्रह्म की तीन शक्तियो को मान्यता दी गयी है—(अ) स्वरूप शक्ति या अतरग शक्ति या विष्णु शक्ति। यह प्रथम और सर्वोच्च शक्ति है। (ब) जीव

---

154 स्वरूपादि भिन्नत्त्वेन चिंतयितुमशक्यत्त्वादभेद भिन्नत्त्वेन चिंतयितुमशक्यत्त्वादभेदश्च प्रतीयत इति शक्ति शक्ति मतोर्भेदाभेदावगीकृतौ। तौ च अचिंत्यौ। स्वमतेनु अचिंत्य भेदाभेदावेव अचिंत्य शक्तित्त्वात ।

जीवगोस्वामी भागवत सदर्भ सर्व सवादिनी ।

शक्ति या तटस्थ शक्ति या क्षेत्रज्ञ शक्ति। (स) मायाशक्ति, जो बहिरग शक्ति है, इसके भी दो रूप है—प्रकृति और अविद्या। इन्ही के माध्यम से भगवान जगत की सृष्टि और सहार करते है। चैतन्य मत के अनुसार जगत मिथ्या न होकर वास्तविक और सत्य है। भक्त सदैव भगवत् भक्ति मे लीन रहता है और इसी सिद्धि के माध्यम से मुक्ति की श्रेष्ठ सगति सभव होती है। स्पष्ट है कि चैतन्य महाप्रभु ने भी माया को स्वीकार किया है। यद्यपि वह शकराचार्य के मायावाद से नितात भिन्न तथा मध्वाचार्य के अत्यत निकट है।

कृष्णदास

कृष्णदास चैतन्य के अनुयायियो मे प्रमुख है। उनके अनुसार, परम उपास्य देव कृष्ण है जिनका स्वरूप सपूर्ण आनदमय, प्रेमसागर और शुद्ध सत्त्व है। कृष्ण की शक्ति राधा है, जिसके द्वारा कृष्ण अभिन्न रूप से शक्तिमान के रूप मे प्रस्तुत होते है। समस्त विरुद्ध धर्मो से युक्त कृष्ण सर्वव्यापी है, तथापि वे परिमित भौतिक रूप को भी ग्रहण करते है। स्वतत्र तथा चैतन्य स्वरूप भी प्रेम के वशीभूत है। प्रेम उनका वास्तविक स्वभाव है। प्रेम द्वारा ही जीव और कृष्ण के मध्य सबध स्थापित होता है। भावनात्मक प्रेम के माध्यम से ही भक्त समस्त अनुष्ठानो का अतिक्रमण करता है तथा अप्राकृत दिव्यलोक दैवीय गुणो से युक्त माया से दूर होकर तुरीयावस्था को प्राप्त करता है। चमकते सूर्य की भॉति कृष्ण है, जिनसे जीव रूपी किरणे फूटती है। जीव ब्रह्म की शक्ति होते हुए भी उससे अलग है। नित्य सेवक रूपी भक्ति द्वारा अपने विस्मृत स्वरूप को जानकर वह माया के बधन से मुक्त हो जाता है। माया द्वारा उसका बधन होता है और ईश्वर समर्पण द्वारा मुक्ति। ईश्वर के नाम स्मरण, भक्ति आदि से अविद्या का नाश होता है। कृष्णदास के दार्शनिक सिद्धात मे माया बधनकारी शक्ति है, जो जीव को बधन मे डालती है। यहॉ कृष्णदास का मत शकराचार्य के मिथ्यात्त्व के मत से भिन्न और विपरीत है।

जीव गोस्वामी

इनका मत भी भागवत् आधारित चैतन्य महाप्रभु से मिलता-जुलता है। ज्ञानमय परमात्मा या ब्रह्म या भगवान परमतत्त्व के ही विभिन्न नाम है। परमात्मा अतर्यामी, जीव

तथा जगत की आत्मा है तथा मायाशक्ति और चित् शक्ति से युक्त है। ब्रह्म ज्ञानगम्य होता है तो परमात्मा योगगम्य। भगवान[155] या ईश्वर की पूर्ण सत्ता सर्वशक्तिमान, सविशेष आनदस्वरूप है इसमे शक्ति और शक्तिमान का अतर होता है। अपने स्वरूप गुणो से सपन्न होकर, अपनी स्वरूप शक्ति और तटस्थ शक्ति[156] के रूप मे वही जीव चैतन्य और बाह्य माया शक्ति के द्वारा अचेतन प्रकृति का रूप धारण कर लेता है। जगत रूप विकार का एकमात्र कारण प्रकृति की माया का रूप है। जीव ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप तो है लेकिन यह उसका आशिक रूप मात्र है क्योकि जीव और प्रकृति तो ईश्वर नही बल्कि उसका आशिक रूप है। चित व अचित् ईश्वर की शक्तियॉ है। अगर चित् विद्या है तो अचित् माया। ईश्वर स्वय की माया शक्ति के माध्यम से जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण बनता है।[157] जीव-माया के माध्यम से ईश्वर जीव के ज्ञान पर आवरण डालता है। अपनी माया से ही जगत का सृजन भी करता है। जीव स्वरूपत अनत है और चेतन, शुद्ध तथा स्वय प्रकाश है। ईश्वर की कृपा द्वारा जीव की अविद्या का नाश हो जाता है और वह स्वय के वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करता है। माया की इस व्याख्या मे चैतन्य महाप्रभु तथा मध्वाचार्य के माया सबधी सिद्धातो की झलक मिलती है, जो शकराचार्य के दर्शन के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया मात्र है।

बलदेव विद्याभूषण

बलदेव विद्याभूषण ने ब्रह्मसूत्र पर चैतन्य सम्मत भाष्य द्वारा अचिंत्य भेदाभेदवाद सिद्धात को मान्यता दी है। इसके अनुसार ईश्वर परमसत्य, स्वगत भेद रहित, अचिंत्य, अलौकिक तर्कातीत, ज्ञान-ऐश्वर्य शक्ति से युक्त तथा सच्चिदानद का मूर्त्त रूप है। ईश्वर का

---

155 आनदमात्र विशेष्यम समस्ता शक्तयो विशेषणानि विशिष्टो भगवान ।
भागवत सदर्भ पृष्ठ 2

156 तदात्मकत्वेन जीवस्यैव तटस्थ शक्तित्वम ।
वही पृष्ठ 33

157 माया जगत्सृष्टयादिहेतुर्भगवच्छक्तिरेव न तु कापटयमात्रम ।
वही पृष्ठ 23

वास्तविक स्वरूप उसके अवतार और सृष्टि मे दिखता है। ब्रह्म और उसके गुणो मे कोई भेद नही है।[158] भेदाभेद सबध भी नही मात्र अभेद है। सर्वथा निर्गुण चैतन्य मिथ्या है। ईश्वर निर्गुण है क्योकि उसमे प्रकृति के दोष नही है। प्रकृति जो उसकी शक्ति है, ईश्वर के निर्देशन मे जगत रूप मे परिणत होती है। समस्त चेतन तथा अचेतन जगत सत्य है, मायिक नही। ईश्वर जीव तथा जगत से अलग अवश्य है, लेकिन यह उसकी शक्तियॉ है, उससे अलग नही है। जीव अणु चैतन्य, ज्ञाता, कर्त्ता भोक्ता अहमर्थ तथा ईश्वर पर आश्रित है। वह ज्ञान स्वरूप तो है लेकिन अविद्या से आवृत्त रहता है। इसलिए बद्ध कहलाता है। जीव की क्रियाएँ और भोग वास्तविक होते हुए भी ईश्वराश्रित है। माया के वशीभूत होकर जीव ईश्वर की भक्ति से मुँह मोड लेते है। जीव अविद्या के मोह से युक्त ब्रह्म ही है, लेकिन ब्रह्म सर्वज्ञ है। ब्रह्म माया मे बद्ध नही होता है। जीव अत करण की उपाधि प्रतिबिबित ब्रह्म है। वह ब्रह्म का ही अश है।[159] सभी नित्य और अनित्य पदार्थ सत्य होते है। जगत ब्रह्माश्रित है अनित्य है लेकिन ईश्वरकृत है। निरतर परिणमित होने से इसे असत् भी कहा जाता है।[160] यह परिणामी नित्य है। इसप्रकार इसमे वैराग्य होना आवश्यक है। अर्थात् ईश्वर की भक्ति को सुदृढ करने के लिए सासारिक प्रपचो से मुक्त होना आवश्यक है। यहॉ वैष्णव बलदेव की विचारधारा पर मध्वाचार्य के सिद्धात का प्रभाव स्पष्टत परिलक्षित होता है। लेकिन यह मध्वाचार्य की द्वैतपरक विचारधारा के विरोध को भी प्रकट करता है।

समीक्षा

शकराचार्य और उनके परवर्ती उपर्युक्त समस्त दर्शन पद्धतियो और विचारको का मूलाधार महर्षि वादरायण का ब्रह्मसूत्र है। यह अत्यत आश्चर्य की बात है कि एक सूत्र की व्याख्या मे अनेक मतवैभिन्यता से युक्त दार्शनिक सिद्धातो की स्थापना की गयी है। यदि

---

158 धर्मिणो धर्मानतिरेक ।

सिद्धातरत्न पृष्ठ 16

159 स च तद भिन्नत्वेऽपि तच्छक्तिरूपत्वात तदशो निगद्यते ।

वही पृष्ठ 334

160 प्रमेय रत्नावली 3 1 4

इन विचारो की गहराई मे जायॅ तथा अन्वेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाये, तो इस मतवैभिन्यता के पीछे मुख्यत दो कारण परिलक्षित होते है—प्रथम ब्रह्मसूत्र मे व्याप्त शाब्दिक दुरुहता तथा द्वितीय साप्रदायिक धार्मिक तथा प्रतिक्रियात्मक वैचारिक मतभेद की भावना।

पहले कारण को देखे तो सूत्रो, शब्दो तथा वाक्यो की दुरुहता और अस्पष्टता से अनेक सूत्रकारो ने सूत्रो मे प्रयोग किये गये शब्दो को भिन्नार्थ मे ग्रहण किया है। उदाहरणस्वरूप अतराविज्ञान मनसीक्रमेण तल्लिगादिति चेन्नाविशेषात्'[161] सूत्र पर भाष्य लिखते समय शकराचार्य रामानुजाचार्य निम्बार्काचार्य तथा वल्लभाचार्य ने अतरा' शब्द का अर्थ अतराल या मध्य व्याख्यायित किया है जबकि मध्वाचार्य ने इसको बिना अर्थ मे व्याख्यायित किया।[162] इसके साथ ही सूत्रकार के सिद्धात इतने अस्पष्ट है कि उसमे पूर्व पक्ष तथा उत्तरपक्ष के विषय मे निर्णय लेना कठिन हो जाता है। कोई सूत्र एक भाष्यकार के लिए पूर्वपक्ष है तो वही दूसरे के लिए उत्तरपक्ष का रूप ग्रहण कर लेता है। जैसे, ब्रह्मसूत्र, द्वितीय अध्याय तृतीयपाद के त्रयोदश अधिकरण के 19-28 सूत्रो को शकराचार्य ने पूर्व पक्ष के रूप मे लिया है। इसलिए इनमे वर्णित जीव का अणुत्त्व उन्होने अस्वीकार किया है। उनके अनुसार उक्त अधिकरण का 29वॉ सूत्र 'तद्‌गुण सारत्त्वात्तु तद्व्यपदेश प्राज्ञवत्[163] के सिद्धात को स्वीकारते हुए जीव को विभु रूप मे रखा गया है।[164] इसके विपरीत रामानुजाचार्य के विचार से उत्क्रातिगत्यागतीनाम् सूत्र सिद्धात पक्ष मे आता है, जिसके द्वारा जीव अणु है।[165] उक्त अधिकरण के 20 25 सूत्र रामानुज के मत से जीव के अणुत्त्व का समर्थन करते है तथा 25वे सूत्र के परवर्ती सूत्रो मे उसके समर्थन मे तर्क प्रस्तुत किये गये है।[166] इसीप्रकार गुणद्वालोकवत्[167] सूत्र को शकराचार्य ने गुणात्, वा लोकवत् व्याख्यायित

---

161 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 2 3 15

162 घाटे द वेदात पृष्ठ 47

163 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 2 3 29

164 तस्माद विभुर्जीव ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 2 3 26

165 श्रीभाष्य 2 3 20

166 घाटे द वेदात, पृष्ठ 46

167 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 2 3 25

किया तो रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य तथा निम्बार्काचार्य ने गुणात् वा आलोकवत् , के अर्थ मे व्याख्यायित किया है।[168] ऐसी दुरूहता का प्रमुख कारण ब्रह्मसूत्र को सही ढग से न समझ पाना ही हो सकता है।

समस्त परवर्ती वेदाती आचार्यो ने वैष्णव धर्म की साप्रदायिक भावना से ताल-मेल रखकर ही ब्रह्मसूत्र के भाष्य का कार्य आरभ किया था। वास्तव मे, इस साप्रदायिक दृष्टि मे शकराचार्य के दर्शन के विरुद्ध प्रतिक्रियात्मक भावना भी बीजरूप मे विद्यमान थी। परिणामत वैष्णव दर्शन पद्धति मे वेदात दर्शन का स्वरूप दार्शनिकता को छोडकर भक्ति के मार्ग का अनुसरण करने लगता है तथा मुमुक्षु भक्त के रूप मे परिवर्तित होकर वृदावनबिहारी के साथ उसकी लीला मे लीन होकर मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहता है। यदि तटस्थता से विचार किया जाय तो पता चलेगा कि उपर्युक्त समस्त वैष्णव दर्शन पद्धतियो मे पक्षपातपूर्ण साप्रदायिक विचारधारा के अतिरिक्त और कुछ नही है।

विभिन्न दर्शनो के प्रतिपादक समस्त आचार्यो ने स्वय के विचारो को ध्यान मे रखकर ही ब्रह्मसूत्र' पर भाष्य रचना की थी। लेकिन उन्होने इस बात पर तनिक भी ध्यान नही दिया है कि ब्रह्मसूत्र के मूल आधार उपनिषद् के दार्शनिक विचार है। यहॉ उन्ही सिद्धातो को औचित्य प्रदान किया जा सकता है जो सूत्रकार वादरायण के सूत्रो मे उपनिषद् दर्शन पद्धति के साथ सामजस्य स्थापित करने मे सफल हो सके। यह सत्य है कि उपनिषद् दर्शन मे सगुण और निर्गुण ब्रह्म के बारे मे समान उद्धरण मिलते है। लेकिन वैदिक मत मुख्यत कैवलाद्वैतवाद की स्थापना करता है। इन अद्वैतवादी वैदिक सिद्धातो को ही शकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य मे मायावाद की स्थापना के माध्यम से रखा है। इसलिए दार्शनिक आधार पर शकराचार्य की दर्शन पद्धति सर्वश्रेष्ठ एव सर्वथा उचित है। सच्चाई यह है कि शकराचार्य के मायावाद का विरोध वे दार्शनिक ही करते है जिनकी कही न कही आसक्ति होती है, चाहे वह जगत से हो या ईश्वर से। यही कारण है कि शकराचार्य के परवर्ती वैष्णव वेदाती एव अन्य समकालीन वेदात के अनुयायियो ने अपने मतो के प्रति दुराग्रह के कारण शकर की माया सबधी अवधारणा को उस रूप मे मान्यता नही प्रदान की है, जिस रूप मे शकर ने अद्वैत वेदात मे इसे निरूपित किया था। लेकिन वे दार्शनिक

---

168 डॉ राममूर्ति शर्मा शकराचार्य, पृष्ठ 218

तार्किक रूप मे न तो अपने सिद्धात की ही रक्षा कर सके और न ही शकर के मायावाद को उससे भिन्न रूप मे निरूपित करके लोगो को सतुष्ट कर सके। आज के वैज्ञानिक युग मे जब किसी भी विचार को बिना तर्क की कसौटी पर परखे स्वीकार नही किया जा सकता, शकराचार्य की विचारधारा ही ज्यादा समीचीन एव उचित ठहरती है क्योकि वह तार्किक है।

□□□

तृतीय अध्याय

श्रीअरविद एव शकराचार्य के मायावाद का तुलनात्मक विवेचन

श्रीअरविद का मायावाद

श्रीअरविद द्वारा शकराचार्य के मायावाद का खण्डन

श्रीअरविंद के खण्डन की समीक्षा

तृतीय अध्याय

श्रीअरविंद एवं शंकराचार्य के मायावाद का तुलनात्मक विवेचन

श्रीअरविद का मायावाद

श्रीअरविद अपनी मायावादी सकल्पना को स्पष्ट करने से पहले यह बताने का प्रयास करते है कि सत् किस तरह सृजनशील है। उनके अनुसार, सत् स्वय की चेतना शक्ति तथा परम आनद के माध्यम से कार्यो और रचनाओ का सृजन करता है। यह परम सत ही नामरूपात्मक जगत की वास्तविकता है। यही परम सत् की शक्ति है। परम सत ही ब्रह्म है। ब्रह्म सर्वसत्ता से युक्त है तथा सर्वव्यापी है। वह निराकार स्वरूप मे होकर भी अपनी योगमाया के माध्यम से साकार का आनद प्राप्त करने मे सक्षम है। चेतन शक्ति के माध्यम से ब्रह्म इस नामरूपात्मक जगत का सृजन करता है तथा उस पर नियत्रण कर कार्य-तत्त्व के रूप मे आत्मनियत्रण का काम भी करता है। दूसरे शब्दो मे, पारमार्थिक सत् स्वय को नानारूपात्मक जगत मे अभिव्यक्त करता है तथा उसमे व्याप्त रहते हुए भी उससे परे रहता है। ब्रह्म अपनी चेतन शक्ति को तीन रूपो मे प्रगट करता है – माया प्रकृति और शक्ति। माया चेतन की वह शक्ति है, जिससे सपूर्ण विश्व की भावात्मक रचना होती है। प्रकृति समस्त कार्यो के चेतन शक्ति के साक्षी रूप मे दृष्टिगत है। तीसरी शक्ति भावात्मक रूप मे दैवीय कार्यो की रचना तथा गति को सचालित करती है। पारमार्थिक सत् मे ये तीनो शक्तियॉ परस्पर एक होकर कार्य करती है। यद्यपि लौकिक दृष्टि से ब्रह्म तथा व्यावहारिक जगत मे विरोध प्रतीत होता है लेकिन वास्तव मे

विरोध नही है।[1]

श्रीअरविद का मानना है कि मौलिक रूप मे शक्ति एक ही है लेकिन यह स्वय को अनेक शक्तियो मे विभाजित कर देती है। मूलत तत्त्व एक ही है, लेकिन स्वय को असख्य तथा असमान तत्त्वो मे प्रस्तुत करता है। मस्तिष्क एक है लेकिन यह स्वय को अनेक अवस्थाओ मे प्रस्तुत करता है। यह सपूर्ण प्रकृति नामरूपात्मक विभिन्नताओ से भरी है। एक ही वृक्ष के हर पत्ते की अपनी विभिन्नता है। एक सर्वत्र आतरिक रूप से स्थित है और अनेकता व्याप्त है। इस अनेकात्मक विश्व के अत स्थल मे यदि मौलिक एकता न होती तो इसका अवसान अनैतिकता और विध्वस मे ही होता। एक ही आत्मा मनुष्य, पशु और पक्षी आदि मे बॅटी हुई है। एकता अनेकता के नाना प्रारूपो मे विरोधपूर्ण प्रतीत होते हुए भी अविरोधी ही है। यह ज्ञान की मौलिक पृष्ठभूमि मे विरोधपूर्ण प्रतीत होती है लेकिन वास्तव मे यह एकता की बहुविध रूप मे स्वय की क्रीडा है।[2] ब्रह्म की शक्ति माया एक जादू है, जो असीमित रूप से समस्त अनेकताओ का तर्क भी है।

श्रीअरविद यह स्थापित करते है कि ब्रह्म की भॉति चेतन स्वरूप माया भी सीमित रूपो मे बॅधी हुई नही है। माया पारमार्थिक चेतना और शाश्वत अनत की शक्ति है। असीमित तथा अनत होने के कारण यह चेतन की अनेक दशाओ को एक ही समय मे प्रस्तुत करती है। एक ही साथ यह पारलौकिक लौकिक एव वैयक्तिक है। यह सपूर्ण विश्वीय तत्त्वो विश्वीय आत्मा और विश्वीय प्रकृति की चेतना शक्ति के प्रति जागरूक है। यह व्यक्तिगत तत्त्व और समस्त सत्ताधारियो की अतस्थ चेतना के रूप मे अनुभव करती है। व्यक्तिगत चेतना को सीमित और विलग चेतना के रूप मे अवलोकित करती है तथा समस्त सीमाओ को लॉघ कर लौकिक और पारलौकिक रूप मे अपना परिनिरीक्षण करती है।

---

1 Brahman ıs at the same tıme omnıpresent ın all relatıves ıt ıs the Absolute ındependent of all relatıves, the Absolute basıng all relatıves, the Absolute governıng, pervadıng, constıtutıng all relatıves, there ıs nothıng that ıs not the Omnıpresent Realıty

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन दि स पृष्ठ 249

2 Thıs ıs the mıracle, the Maya of the Unıverse, yet perfectly logıcal, natural and matter of course to the self - vısıon and self experıence of the ınfinıte

वही पृष्ठ 308

ब्रह्म मे स्वय को नामरूपात्मक स्वरूप तथा सीमाओ मे बॉधने की सामर्थ्य है। सभी आत्म सीमाएँ वास्तविक स्वरूप के प्रति विशेष लगाव रखती है। प्रत्येक व्यक्तिगत आत्मा सर्व-दर्शन तथा आत्म दर्शन का केन्द्र है जो आध्यात्मिक व्यक्तित्व को प्रदर्शित करता है। इसके अतर्गत परिस्थितियॉ समान होने के बावजूद केन्द्रीय विभिन्नता स्पष्टत दृष्टिगोचर होती है। प्रत्येक जीव एक ही ससार का अवलोकन करता है, लेकिन उसका अवलोकन उसके स्वय के स्वभाव के अनुरूप ही होता है। इसके साथ ही प्रत्येक जीव अनत सत् की अभिव्यक्ति भी अपने आधार पर ही करता है। जीव और निर्जीव या स्थाणु और गतिमान अनत के दो रूप है। यह दोनो ही अनत तत्त्व मे एक साथ एक ही समय मे स्थित रहते है। दोनो एक दूसरे के सहायक और साक्षी है। इसके साथ ही दोनो एक-दूसरे की परस्पर सहायता करते हुए मौजूद रहते है। लौकिक स्तर पर जो भी विरोध और असभावनाएँ आभासित होती है पारमार्थिक स्तर पर वे समाप्त हो जाती है। पारमार्थिक स्तर पर समस्त विभिन्नता अनत सत् मे समाहित हो जाती है।

श्रीअरविद जोर देकर कहते है कि ब्रह्म स्व-सत्तावान और पूर्ण है तथा माया इसकी चेतना और शक्ति है। लौकिक दृष्टि से यह ब्रह्म ही आत्मा के रूप मे ज्ञेय है। यह पारलौकिक आत्मा के साथ ही प्रत्येक मनुष्य की व्यक्तिगत सत्ता का आधार अर्थात् जीवात्मा भी है। माया इसकी आत्म-शक्ति है अर्थात् आत्मा या ब्रह्म का स्वरूप मुख्यत सर्वव्यापी अपरिवर्तनशील तथा क्रियाहीन है। इसके विपरीत माया सात गतिशील और शक्तियुक्त है। श्रीअरविद का विचार है कि ब्रह्म की स्वतत्रता को पूर्ण मान्यता प्रदान करके नानारूपात्मक उसकी अभिव्यक्ति को सीमित करना तर्कसगत नही है। सत्य यह है कि ब्रह्म और उसकी अभिव्यक्ति का स्वरूप अलग-अलग है, लेकिन यह पूर्ण तथा अतिम नही है। जिसके माध्यम से विविध कार्यो को सम्पन्न, रचनाओ को पूर्ण किया जाता है, वह ब्रह्म की माया ही है। यही जीवात्मा की शक्ति है, प्रकृति पुरुष की क्रिया है। इसलिए द्वैत सत् नही है। जिसप्रकार अग्नि और अग्नि की शक्ति भिन्न नही है उसीप्रकार ब्रह्म को उसकी चित् शक्ति से भिन्न नही किया जा सकता।[3]

---

3 As we can not separate fire and the power of fire, it has been said, so we cannot separate the Divine Reality and its consciousness force, Chit-shakti

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन दि स पृष्ठ 314

श्रीअरविद यह कहते है कि आत्मा सर्वव्यापी सर्वज्ञ अजन्मा तथा निष्क्रिय होते हुए भी समस्त कार्यो की कर्ता, भोक्ता और नियता है। उसके माध्यम से ही समस्त कार्य सपन्न होते है। इसलिए ब्रह्म की ही एकमात्र सत्ता है।[4] इसमे भी आत्म-स्वतत्रता ब्रह्म का शाश्वत स्वरूप है। साख्य दर्शन मे पुरुष तथा प्रकृति की द्वैत सत्ता को स्वीकारा गया है, जिसमे प्रकृति द्वारा विविधतामय जगत की रचना होती है। पुरुष उसका द्रष्टा मात्र है। पुरुष अनेक है लेकिन प्रकृति एक है। प्रकृति पुरुष के समक्ष नर्तकी की भॉति नृत्य प्रस्तुत करती है तथा पुरुष उसका द्रष्टा मात्र ही रहता है। कितु साख्यमत यहॉ पर आलोचित तथा खण्डित होता है क्योकि विपरीत स्वभाव से युक्त पुरुष तथा प्रकृति के मध्य इसप्रकार के पारस्परिक सहयोग की कल्पना करना निरर्थक और अस्वाभाविक है। श्रीअरविद ने भी इस मत का खण्डन किया है। उनका मानना है कि यदि प्रकृति अपने स्वरूपो तथा कार्यो से पुरुष को प्रभावित करती है तो उसका एकमात्र कारण यही है कि वह पुरुष की ही शक्ति है। वह स्वय ब्रह्म की स्वीकार्य शक्ति है। वह प्रकृति का स्वामी होने के कारण उसे निष्क्रिय सरक्षण प्रदान करता है। अत यह सिद्ध होता है कि द्वैत पूर्ण सबध के होते हुए भी दोनो एक-दूसरे से अभिन्न नही है।[5]

जगत ईश्वर से परे नही है बल्कि उसी के भीतर समाहित है। ब्रह्म माया द्वारा सपूर्ण व्यावहारिक जगत को रचता है और इसका नियत्रण भी करता है। धर्मग्रथो मे उल्लिखित ईश्वर ब्रह्म नही है। ब्रह्म मात्र सगुण ईश्वर ही नही है अपितु सपूर्ण ब्रह्माण्ड को अभिव्यक्त करता हुआ उससे परे भी है। परे रह कर भी ब्रह्म इन पर नियत्रण रखता है।[6]

---

4 There ıs a realısatıon of self ın whıch ıt ıs felt not only sustaınıng and pervadıng and envelopıng all thıngs, but constıtutıng everythıng and ıdentıfied ın a free ıdentıty wıth all ıts becomıngs ın Nature

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 314

5 The Dualıty ıs a posıtıon taken up, a double status accepted for the operatıons of the self-manıfestatıon of the Beıng, but there ıs no eternal and fundamental separateness and dualısm of Beıng and ıts Conscıousness Force of Soul and Nature

वही पृष्ठ 316

6 Ishwara ıs Brahman the Realıty, Self, Spırıt, reveale as possessor, enjoyer of hıs own Self exıstence, creator the unıverse and one wıth ıt, Pantheos, and yet Super to ıt, the Eternal, the Infinıte, the Dıvıne Transcende

वही पृष्ठ 318

यह सपूर्ण विश्व ईश्वर द्वारा नियत्रित अवश्य है लेकिन यह स्वेच्छाचारी कदापि नही है। ईश्वर शाश्वत आध्यात्मिक नियमो द्वारा स्वयमेव स्वाभाविक रूप मे नियत्रण और सरक्षण प्रदान करता है। वस्तुत लौकिक रूप मे ब्रह्म को विचारित या व्याख्यायित करने पर उसमे भाषागत लौकिक दोषो का आ जाना स्वाभाविक है। पारमार्थिक तर्क इससे भिन्न होते है जिसके अनुसार पूर्ण से पूर्ण को अलग करने पर पूर्ण ही शेष बचता है।

ब्रह्म माया का स्वामी है। यह अपनी समस्त अभिव्यक्ति को स्रष्टा और नियता के रूप मे व्यक्त करता है। इसी आधार पर समस्त कार्यो का सपादन भी करता है। वही ब्रह्माण्ड के समस्त कार्यो की अनुमति प्रदान करता है। सत्ता तथा उसकी चेतन शक्ति मे अलगाव नही होता है। प्रकृति द्वारा सपादित समस्त कार्यो के पीछे अनुमति अतिम सत्ता की ही होती है। श्रीअरविद के अनुसार अज्ञान का आवरण हट जाने पर यह पूर्णत अवलोकित होता है कि द्वैत वास्तविक नही है। अत सत्ता के विभिन्न रूपो मे विरोध कदापि नही है। उपनिषदो की भॉति श्रीअरविद ने भी ब्रह्म को सच्चिदानद स्वरूप बताया है। कुछ दार्शनिको का मत है कि ब्रह्म सत् है और जगत असत् है। इसके ठीक विपरीत चार्वाक दर्शन ने माना है कि जगत सत् है। जो कुछ जगत से परे है, वह असत् है। श्रीअरविंद ने इन दोनो मतो को अतिशयोक्तिपूर्ण बताते हुए इन्हे खारिज कर दिया है। उन्होने ब्रह्म और जगत दोनो को ब्रह्म ही माना है। एक ही ब्रह्म सृष्टि के पूर्व अव्यक्त रहता है तथा सृष्टि उपरात व्यक्त हो जाता है।

श्रीअरविद के अनुसार सत् का चित् स्वरूप होना एक तरह से तर्कसगत पक्ष है, क्योकि सत् यदि जड स्वरूप है तो उससे उद्भूत होने वाले चेतन तत्त्व की कल्पना सभव नही हो सकती है। जड तत्त्व मे चित् को मानना अटपटा अवश्य है, लेकिन अपरिहार्य है। वास्तव मे जड तत्त्व चित् का अभाव न होकर उसकी अभिव्यक्ति है। यह मात्र मानसिक चेतन ही नही, बल्कि शक्तिज्ञान और सकल्प का समुच्चय भी है। यह आत्मा के साथ ही मानसिक क्रियाओ मे भी स्पष्टत दृष्टिगत होता है। सुप्तावस्था मे भी परोक्ष रूप से विद्यमान रहता है। बाहर से जड प्रतीत होने वाली वस्तुओ मे भी चित् अव्यक्त रूप मे विद्यमान रहता है। श्रीअरविद द्वारा चित् के तीन लक्षण स्वीकार किये गये है – (अ) रूप परिवर्तन, (ब) रूप परिमित तथा (स) अ-रूपलीनता। चित् शक्ति परिवर्तनशील न होते हुए भी नानारूपो मे परिवर्तित होती है। यह देश तथा काल की सीमा मे आबद्ध होकर व्यष्टि तथा समष्टि के विभिन्न रूपो मे व्यक्त होती है। इसके साथ ही अ रूपलीनता के माध्यम से चेतन और जड़

रूपो मे स्वय को अभिव्यक्त करती है।

इसप्रकार श्रीअरविंद की स्थापना है कि ब्रह्म मे सत् तथा चित् शक्ति एक साथ, समान रूप से अभिव्यक्त होते है। सत् आत्मा पुरुष तथा ईश्वर रूप मे तथा चित् माया प्रकृति तथा शक्ति के रूप मे प्रस्तुत होती है। ब्रह्म स्वरूपत देश तथा काल से रहित है। वह देशकाल के माध्यम से स्वय के भीतर स्थित विभिन्नता को प्रगट करता है। देश वह स्थायी विस्तार है जिसके अतर्गत समस्त वस्तुएँ निश्चित व्यवस्था मे ही स्थित और गतिशील रहती है। जबकि काल उस गति का विस्तार है, जो गतियो और घटनाओ के माध्यम से मापा जाता है। तथ्य यह है कि ब्रह्म ही अपनी विस्तृत गति मे काल है।

सत् शाश्वत है इस आधार पर चेतना के मुख्यत तीन स्तर देखे जाते है। पहले स्तर पर यह गतिहीन तथा घटनाओ की चेतना से रहित है। यही ब्रह्म की काल रहित शाश्वत स्थिति है। दूसरे स्तर पर यह स्वय की सपूर्ण अभिव्यक्तियो तथा उनके बीच के पारस्परिक सबधो के प्रति जागरूक रहता है। यह स्तर भूत, वर्तमान और भविष्य तीनो को एक साथ समाहित करके चलता है। यहॉ स्थिति ठीक उसीप्रकार है जिसप्रकार एक कलाकार या चित्रकार के मन-मस्तिष्क मे अपनी कलाकृति का एक चित्र पूरी तरह स्पष्ट रूप से मौजूद रहता है। तीसरे स्तर पर चेतन शक्ति मे गति और उसकी सतत क्रियाशीलता अपनी पूर्ण विकसित अवस्था मे रहती है। इसी क्रियाशीलता और गति को चेतन शक्ति अपनी गतिहीन शाश्वतता मे दृष्टिगत करती है। यह शाश्वत सत्ता है जो तीन रूपो मे प्रकट होती है। शाश्वत सत् और शाश्वत गति दो अलग-अलग सत्ताएँ न होकर शाश्वत सत्ता द्वारा स्थापित दो विभिन्न दशाएँ मात्र है। अतएव यह कहा जा सकता है कि शाश्वत सत् काल से परे होकर भी उसी के भीतर व्याप्त होकर कालमय है। ब्रह्म अपनी मौलिक स्थिति मे निराकार होकर भी नामरूपात्मक जगत का स्रष्टा है। शाश्वत सत् अपने उक्त दोनो रूपो मे कही पर भी विरोधी नही है। ऊपर से देखने पर मानसिक स्तर पर विरोध जैसा दिखता है, लेकिन अतत इनमे कोई विरोध नही है।[7]

---

7 Theu sımultancsıty, however contradıctory and dıfficult to reconcıle ıt mıght seem to our finıte surface seeıng, would ıntrınsıc and normal to the Maya or eternal self knowledge and all knowledge of Brahman, the eternal and ınfinıte knowledge and wısdompower of the Ishwara, the conscıousness force of the self-exıstent Schchıdananda

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 329

श्रीअरविंद का मत है कि श्रेष्ठतम ज्ञान की अवस्था को प्राप्त करने वाला मनुष्य वास्तव मे सामान्य मनुष्य जैसा ही है। यद्यपि वह उच्च स्थान पर स्थित दिखता है, लेकिन यह स्थान उसे सामान्य मनुष्यो द्वारा ही दिया जाता है। मायाजन्य मस्तिष्क अनेकता को ही सत् के रूप मे स्वीकार करता है। इसके अतर्गत मस्तिष्क मे अभेद का सिद्धात लागू नही होता है परतु यह मात्र कुछ अशो के विषय मे ही जान पाता है। मस्तिष्क द्रव्य द्वारा उत्पन्न अधकारपूर्ण चेतना की अधमूल प्रवृत्तियो अव्यवस्थित अतरात्माओ तथा व्यर्थ के प्रत्यक्षो को पूर्ण प्रकाशित या उत्क्रमण के अतिम स्तर पर प्रकाशित करता है।

स्पष्ट है कि श्रीअरविद के माया सबधी विचार अद्वैत वेदात से भिन्न है। इनकी माया ऐसी है जो वास्तविक शक्ति के रूप मे सपूर्ण ससार को व्यक्त करती है। सत् मे एकता का गुण है लेकिन माया उसे अनेकता मे व्यक्त करती है। इस अनेकता मे परमसत् की आनदमयी क्रीडा भी विद्यमान है। जड चेतन जगत की अनेक वस्तुओ को इकाइयो के रूप मे सत् मानना सीमित मस्तिष्क का ही परिणाम है। जब ज्ञान द्वारा इनका निराकरण होता है तब जाकर पता चलता है कि इनमे तो समन्वित एकता है। यह अतिमानस की स्थिति कही जाती है। इस अवस्था मे अनेकता मे एकता और एकता मे अनेकता के दर्शन होते है। अद्वितीय ब्रह्म ही एकमात्र सत् प्रतीत होता है, जो स्वेच्छानुसार अनेकात्मक जगत के रूप मे अभिव्यक्त होता है।

श्रीअरविद द्वारा शकराचार्य के मायावाद का खण्डन

यद्यपि श्रीअरविद एव शकराचार्य दोनो ही अपने दार्शनिक चितन के स्तर पर अद्वैतवाद का पोषण करते है, किंतु माया की अवधारणा को लेकर इनमे मतवैभिन्य दृष्टिगत होता है। श्रीअरविद के समक्ष अद्वैत वेदात को स्वीकार करने के साथ ही मायावादी सकल्पना की समुचित व्याख्या प्रमुख चुनौती थी। यही कारण है कि श्रीअरविंद और उनके अनुयायियो ने अपनी मायावादी सकल्पना के पोषण एव सरक्षण के लिए शकर की मायावादी सकल्पना का खण्डन किया है। ये आलोचनाएँ श्रीअरविंद के ग्रथो, उनके सदेशो और पत्रो मे मिलती है। सर्वप्रथम श्रीअरविद अद्वैत वेदात के ब्रह्म की सामर्थ्य और सर्वसत्ता-सपन्न रूप को ग्रहण करते है। लेकिन ब्रह्म द्वारा सृजित जगत को माया, भ्रम, मिथ्या के नाम से अभिहित करना या ब्रह्म को जगत से परे कहना आदि बातो को अतार्किक मानते है।

उनका मत है कि शकराचार्य के मायावादी सिद्धात का गहराई से अवलोकन करने पर अनेक समस्याएँ सामने आती है। यथा व्यावहारिक अनुभव तथा पारमार्थिक अनुभव मे सबध का न होना पारमार्थिक सत् को निर्गुण अनिर्देश्य एव सीमाबद्ध मानकर व्यावहारिक जगत से उसे परे करना, जड जगत को केवल भ्रम या माया के रूप मे स्वीकार करना आदि ऐसी ही समस्याएँ है। श्रीअरविद द्वारा शकराचार्य के ब्रह्म और व्यावहारिक जगत की भिन्नता को मायावाद के आधार पर मान्यता देना, उनके दृष्टिकोण सबधी अधूरेपन को प्रकट करता है। श्रीअरविद के समर्थक डॉ इद्रसेन का कहना है कि शकर का दार्शनिक तर्क, जिसके सहारे वे जगत को भ्रम सिद्ध करते है भौतिकी व्यवहार का अश होने के कारण स्वय भी भ्रम के अलावा और कुछ नही है। शकराचार्य की यह युक्ति अनेक विरोधो और भ्रमो से भरी है।[8]

डॉ इद्रसेन का मत है कि आधुनिक दर्शन ने अनुभव को आधार के रूप मे स्वीकार किया है। श्रीअरविंद भी अनुभव को महत्त्व देते है परतु शकराचार्य का मायावाद इसके विपरीत व्यावहारिक ज्ञान को ही भ्रममूलक तथा मिथ्या कहता है। शकराचार्य के अद्वैत वेदात मे ब्रह्म और व्यावहारिक जगत का जो सबध और स्वरूप निर्धारित किया गया है, वह विरोधाभासी और विवादास्पद है। उसमे अनेक कमियॉ है। उनके अनुसार शकराचार्य द्वारा ब्रह्म को निर्विकार एव शुद्ध चेतनमय तथा जगत को साकार और जड कहकर, उनके परस्पर सबधो को पूरी तरह नजरअदाज कर दिया गया है। ब्रह्म को ही सत् मानना और जगत को माया कहना उचित नही है।

श्रीअरविद कहते है कि शकराचार्य द्वारा परम तत्त्व को सर्वसत्तासपन्न मानते हुए भी, उसे साकार रूप मे व्यक्त होने की शक्ति से रहित बताना तर्कसगत तथा न्यायसगत नही है। यही कारण है कि अद्वैत वेदात की दार्शनिक मान्यताएँ अधूरी एव भ्रममूलक है।[9]

---

8 One connot help challengmg the Advaıtıst to show cause Why hıs phılosophıcal reasonıng regardıng the ıllusıonness of the World, beıng a part of the ıllusory experıence, should not be taken as ıllusory

फिलासाफिकल क्वार्टरली 1944 पृष्ठ 77

9 The varıous analogıes used by the Advaıtıst phılosophers to show the relatıon of the World to Brahman ınvolve Confusıon between certaın facts of experıence They all ınvolve at the last ınstance, an error of relatıon or mısrelatıon between facts

वही पृष्ठ 76

श्रीअरविद का तर्क यह है कि यदि शकराचार्य का परमसत् व्यावहारिक जगत की रचना मे असमर्थ है, तो वह सर्वसत्तासपन्न किस तरह माना जा सकता है। शकराचार्य यद्यपि मानते है कि ब्रह्म एकमात्र सत् है लेकिन वे ब्रह्म को पूरी तरह निर्गुण भी नही कहते है। वस्तुत ब्रह्म वह है, जिसमे सबकुछ समाहित रहता है। सपूर्ण सासारिक वस्तुएँ उसी की अभिव्यक्ति है साथ ही उसी का अश भी है। अद्वैत वेदात के विचारो की साम्यता पाश्चात्य दार्शनिक स्पिनोजा से है। उन्होने भी एकमात्र पारमार्थिक सत् की सत्ता को स्वीकार किया है। इसके साथ ही पारमार्थिक सत् को व्यावहारिक सीमा से परे मानते हुए उसे निर्गुण कहा है। स्पिनोजा के अनुसार पारमार्थिक सत् सर्वशक्तिमान तथा अनेक गुणो से युक्त है। श्रीअरविद ने शकराचार्य के परम ब्रह्म को निराकार या निर्गुण और व्यावहारिक जगत को माया या मिथ्या के रूप मे स्वीकार नही किया है।

श्रीअरविंद का मानना है कि शकराचार्य द्वारा ब्रह्म को अद्वितीय कहना वदतोव्याघात है। यदि ब्रह्म को अद्वितीय और परम स्वीकार भी कर लिया जाय तो इससे माया के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लग जाता है। माया को स्वीकार कर लेने पर ब्रह्म की सत्ता का खण्डन होता है। इस द्वद्व को समाप्त करने के लिए शकराचार्य ने माया की वास्तविक सत्ता को ही अस्वीकृत कर दिया है। व्यावहारिक जगत के प्रत्यक्ष अनुभवो को माया के विकल्प के रूप मे स्वीकार कर लिया जाय, तब इसे हम सत् के रूप मे स्वीकार नही कर सकते है। इसीकारण इसे अनिर्वचनीय नाम से अभिहित करते है। यहॉ पर श्रीअरविद के समर्थक डॉ इद्रसेन का मानना है कि माया का अनिर्वचनीय नाम माया के वास्तविक रूप की अज्ञानता का द्योतक है। यह अद्वैत वेदात की कमी का परिचायक है। वही श्रीअरविद के अनुसार, शकर इसके समर्थन मे चाहे कितना ही शब्दजाल या तर्कजाल रच ले, वस्तुत मायावाद कुछ भी व्याख्या नही कर पाता है। यह केवल अनिर्वचनीय का एक मानसिक सूत्र है। उसके लिए अनत की शक्ति केवल भ्रमात्मक शक्ति बन जाती है और यह विश्व अनवधारणीय रह जाता है – विश्वव्यापी पागलपन का एक रहस्य, अनत की शाश्वत मूर्छना बनी रहती है।[10]

---

10 श्रीअरविद पाठ मदिंर ऐन्युवल 1945 पृष्ठ 203

श्रीअरविंद ने शकराचार्य द्वारा जगत को असत् मानना तथा इसे माया का खेल अथवा मिथ्या कहना असगत सिद्ध किया है। उनके अनुसार, अनुभवजनित वस्तुओ की सत्ता को भ्रम नही माना जा सकता, क्योकि भ्रम और सत् दोनो का ही आधार अनुभव है और जिस ससार का अनुभव होता है उसे भ्रम कैसे कहा जा सकता है? इस असगति को दूर करने के लिए शकराचार्य ने व्यावहारिक जगत की सत्ता को स्वीकारते हुए भी उसे असत् माना है। उनका मत है कि जिस प्रकार जाग्रत अवस्था के पूर्व तक स्वप्नावस्था की वस्तुओ की सत्ता रहती है लेकिन जागने के बाद स्वप्नावस्था की वस्तुओ का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। ठीक इसीतरह पारमार्थिक सत्ता के ज्ञान के पूर्व तक व्यावहारिक जगत सत् रहता है लेकिन अनुभूति होने के बाद व्यावहारिक जगत की सत्ता का भ्रम समाप्त हो जाता है। श्रीअरविंद मानते है कि व्यावहारिक वस्तुओ का अनुभव होता है तथा अनुभव ही असत् और सत् का आधार है। अत अनुभवगम्य होने पर भी जगत को माया कहा जाना विवेकपूर्ण नही है।

श्रीअरविंद का तर्क है कि यदि जगत को भ्रम या माया मानेगे, तो ब्रह्म के साथ ही साथ भ्रम की सत्ता भी आवश्यक माननी होगी।[11] शकराचार्य का अभिमत है कि अज्ञान की अवस्था मे भ्रम का अस्तित्व रहता है तथा ज्ञान की प्राप्ति के साथ ही उसका विनाश हो जाता है। ब्रह्म ही एकमात्र सत् है। इस सदर्भ मे श्रीअरविंद के अनुयायियो का आरोप है कि शकराचार्य के मायावाद मे अनेक कमियाँ है, जो यह इगित करती है कि इस स्थापना मे विरोध अवश्य है तथा इनका उचित समाधान करने मे शकराचार्य असमर्थ है। श्रीअरविंद ने इन विरोधो के परिशमन हेतु समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया है। जिसप्रकार छह अधो और एक हाथी की कथा मे जिस अधे ने हाथी के जिस अग का स्पर्श किया, उसने हाथी का उसी रूप मे वर्णन किया। किसी ने पैरो के स्पर्श से हाथी को स्तभवत कर्ण की दृष्टि से सूपवत बताया। इन अधो के माध्यम से हाथी का स्वरूप भिन्न-भिन्न तथा परस्पर विरोधी जान पडता है। इनका निराकारण वही कर सकता है जो हाथी का पूर्णत द्रष्टा है। वही इन अधो के विरोधो को शात कर सकता है। इसी भाँति ब्रह्म विषयक समस्त विचारधाराएँ

---

11 If the world ıs an ıllusıon then the ıllusıon ın some sens ıs

फिलासाफिकल क्वार्टरली 1944 पृष्ठ 82

एकागी है। इनमे समन्वय पूर्णत द्रष्टा मनीषी ही ला सकता है। डॉ इन्द्रसेन ने श्रीअरविंद को इसीप्रकार का समन्वयवादी द्रष्टा माना है तथा उनके दर्शन मे ही शकराचार्य के दर्शन के विरोधो का शमन सभव बताया है।[12]

श्रीअरविंद का मानना है कि शकराचार्य के अद्वैत वेदात मे दो सघर्षपूर्ण एव विरोधी बाते एक साथ कही गयी है। एक ओर तो ब्रह्म को आत्मगम्य एव पारमार्थिक कहा गया है, वही दूसरी ओर बुद्धिगम्य तथा व्यावहारिक जगत का कर्त्ता भी बताया गया है। शकराचार्य के ब्रह्म को अद्वितीय शुद्ध, अनभिव्यक्त सत् के रूप मे स्वीकारना उचित नही है। निराकार ब्रह्म साकार रूप मे भी व्यक्त होता है। इसलिए ब्रह्म के साथ ही व्यावहारिक जगत को भी सत् के रूप मे स्वीकार लेना तर्कसिद्ध है। जिस क्षण मानव जगत से परे ब्रह्म के सम्मुख होता है उस क्षण के बाद भी जगत की सत्ता है। वस्तुत चेतना हेतु जगत की सत्ता अधिक समय तक नही होती है। जब हल्के-हल्के ज्ञान का उद्घाटन होने लगता है तब चेतना द्वारा एकमात्र ब्रह्म की ही अनुभूति होती है। समस्त जगत उसके अश के रूप मे अनुभूत होने लगता है। इसीकारण जगत को असत् माना गया है। वस्तुत ब्रह्म ज्ञान होने पर भी व्यावहारिक जगत की सत्ता समाप्त नही होती है और सुदृढता से ब्रह्म मे अवस्थिति, उसकी अभिव्यक्ति के कारण प्रतीत होती है।

अद्वैत वेदात मे शकराचार्य ने सपूर्ण व्यावहारिक जगत को अनिर्वचनीय' कहा है, साथ ही तर्को एव इद्रियो के माध्यम से हृष्ट तथा पुष्ट जगत को असत् कहा है। डॉ॰ इद्रसेन की यहॉ टिप्पणी है कि शकराचार्य एक कदम और आगे नही जा सके, जहॉ कि निर्गुण ब्रह्म आत्म-विकसित तथा आत्म-अभिव्यक्त सत् की एकता मे अवलोकित है। यह ऐक्य ही समस्त सत्ताधारियो की अतरात्मा का सर्वस्व है।[13]

---

12 Sri Aurobindo's philosophy has been illuminating not only in that that it presents a satisfying view of life and existence by itself, but also inthat that is reconciles and offers convincing relative justifications for other important philosophical systems

फिलासाफिकल क्वार्टरली 1944 पृष्ठ 82

13 Sri Aurobindo emphatically affirms, involves a vision of the integral Reality, the Nirguna Brahma and the world perceived in the unity of a self evolving and self revealing Absolute The integral unity of total existence is the essence of his intuition

वही, पृष्ठ 83

श्रीअरविद ने अपनी पुस्तक 'दि लाइफ डिवाइन मे जीवन और सत्ता के सबध मे व्यवस्थित ढग से विचार किया है। उन्होने व्यावहारिक प्रयोजना मे सीमित तर्क प्रयुक्त किया है, लेकिन जब सत्ता के पूर्ण रूप के बारे मे बात की जाती है, तब ऐसे सीमित तर्को से काम चलने की गुजाइश नही रहती। इस स्तर पर अपरिमित तथा असीमित तर्क अपेक्षित है। श्रीअरविद का मानना है कि बाह्य जागतिक वस्तुओ के सपर्क से प्रत्यक्ष ज्ञान की उत्पत्ति होती है। प्रत्यक्ष के माध्यम से तर्क सिद्ध होता है जिससे मानव भूत-भविष्य, दूर समीप को देखने तथा समझने की क्षमता प्राप्त करता है। तर्क मानव की वह विशेषता है जो अन्य जीवधारियो से उसे पृथक करती है। यह तर्क भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर बधन तुल्य लगता है।[14] सीमित तर्क द्वारा असीमित तर्क की ओर अग्रसर होना ही योग कहलाता है। मानव को सीमित तर्क से प्रत्यक्ष एव सादृश्य के आधार पर तात्कालिक ज्ञान की प्राप्ति होती है। पूर्ण सत् को सीमित तर्क द्वारा प्राप्त नही किया जा सकता। यह अपनी पूर्णता तथा असीमता के कारण तर्क द्वारा प्राप्त नही किया जा सकता। अत पारमार्थिक सत् का आकलन बौद्धिक चेतना से नही, बल्कि आध्यात्मिक अत करण से सभव है। सीमित विचारो से पारमार्थिक सत् की प्राप्ति असभव है। उनके द्वारा पूर्ण सत् को प्राप्त करने का प्रयास अनुचित है।

श्रीअरविंद की उक्ति है कि पारमार्थिक सत्ता अधविश्वास मात्र नही है। इसके पीछे स्वय का असीमित तर्क काम करता है। यद्यपि व्यावहारिक जीवन मे यह कुछ कठिन लगता है पारमार्थिक सत् के अनुसार, पूर्ण से पूर्ण निकाल लेने पर पूर्ण ही शेष रहता है।' इसे व्याख्यायित करते हुए श्रीअरविद कहते है कि सर्वव्यापी सत्ता की एकता का मौलिक तत्त्व ही नियामक तत्त्व है। असीमित तर्क परपरागत तर्क का अतिक्रमण करता है। यह स्वय को सीमित तत्त्व पर आश्रित नही रखता है। यह वास्तविकता को अपनाता है तथा समस्त वस्तुओ की सत्यता को वास्तव सत्ता के परिप्रेक्ष्य मे देखता है। यह स्वय को पृथक-पृथक अश मे नाम, रूप तथा आकार मे नही प्रस्तुत करता। इनका विस्तार साधारण जीवन के

---

14 Such knowledge is conceivable and would be superior to the patched up knowledge We have ordinarily to be content with

फिलासाफिकल क्वार्टरली 1944 पृष्ठ 84

अनुभवो की विषमताओ के शमन करने तक है। पूर्ण सत् की पारमार्थिकता इन विरोधो के शमन के उपरात ही सभव है।[15]

शकराचार्य के विपरीत श्रीअरविद ने सत्ता की समस्त समस्याओ को मुख्यत समन्वय की समस्या माना है। सामजस्य तथा समन्वय द्वारा ही समस्त व्यावहारिक जगत का विकास हो सकता है। यह समन्वय ही उनके दर्शन का स्वयसिद्ध सिद्धात है। यह पूरा विश्व समन्वित रूप मे पूर्ण सत् ही है। सपूर्ण व्यावहारिक जगत का अधिष्ठान पूर्ण, निर्विशेष, परमसत् के रूप मे ही स्वीकार्य है। निर्विशेष एव अनत होने के कारण यह स्वरूपत अनिर्देश्य है। इसीकारण शात तथा निर्वचनीय मन-बुद्धि के माध्यम से अनिवर्चनीय तथा अचित्य है। यह सत्ता परिभाषा और बुद्धि से परे है। मानव मस्तिष्क द्वारा उत्पन्न भाषा के माध्यम से अवर्णनीय है। श्रीअरविद ने अद्वैत वेदात का विरोध करते हुए कहा कि परमतत्त्व को न तो नेति नेति कह कर सीमित किया जा सकता है और न इति-इति कहकर विशेष गुण तथा दोष से सयुक्त किया जा सकता है।[16] इसका अर्थ यह कदापि नही है कि ब्रह्म मन या बुद्धि के माध्यम से ज्ञेय नही है। वह हमसे अभिन्न है इस दृष्टिकोण से वह स्वत प्रमाणित है और ज्ञान की अतिमानसिक अवस्था से ही ज्ञेय है।[17] अर्थात् पारमार्थिक सत् ऐक्य ज्ञान का विषय है तथा विशुद्ध आत्मा द्वारा अनुभूत होता है। यह पारमार्थिक सत् ही ब्रह्म है। किंतु यदि ब्रह्म शाश्वत, सर्वव्यापी नित्य, अनत है तो अनित्य, सीमित तथा परिवर्तनशील व्यावहारिक जगत को सत्य कैसे मान ले? यहॉ पर श्रीअरविंद का तर्क है कि सर्वव्यापी ब्रह्म सपूर्ण जगत मे विद्यमान है। समस्त अनित्य तथा सीमित प्रतीत होने वाली

---

15 This reason, which proceeds in full consciousness of the necessary original Unity of things and seeks to discover relations amongst them in the light of that Unity is Sri Aurobindo's spiritual and supremental reason It is his logic of the Infinite

फिलासाफिकल क्वार्टरली 1944, पृष्ठ 87

16 It is undefinable and inconceivable by finite and defining mind, it is eneffable by a mind created speech, it is describable neither by our regations नेति नेति—for we can not limit it by saying it is not this it is not that, nor by our affirmations, for we cannot fix it by saying it is this it is that इति इति

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन भाग 2, पृष्ठ 41

17 वही पृष्ठ 322

वस्तुएँ वस्तुत असीमित नित्य तथा शाश्वत है। आवश्यकता इस बात की है कि इन प्रतीतियो को भ्रम या मिथ्या न मानकर इनकी गहराइयो मे जायँ। इस सत्य को हमे स्वीकारना होगा कि ब्रह्म नानारूपात्मक घटनाओ व्यक्तियो एव वस्तुओ मे समाहित है। इस दृष्टिकोण के विकास के साथ ही सपूर्ण जागतिक विश्व एकमेव ब्रह्म मे दृष्टिगत होगा और अनेकता का अत हो जायगा। इस अवस्था की उत्पत्ति ही मुक्ति है। इसके लिए ब्रह्म को सर्वव्यापी अक्षर चैतन्य के रूप मे अनुभव करने के पश्चात् हमे और भी आगे ब्रह्म ज्ञान का विकास करना है। जब मानव उस अक्षर, अनित्य परमतत्त्व को क्षरकालिक जगत मे गतिशील दैवी शक्ति के रूप मे समझ लेता है, तभी हमारा ब्रह्मज्ञान पूर्ण होता है।[18]

श्रीअरविद का ब्रह्म ही पारमार्थिक ब्रह्म है लेकिन यदि यह मान लिया जाय कि ब्रह्म शुद्ध सत् है असीमित है, तो वह जड-चेतन रूप मे सपूर्ण विश्व मे किस प्रकार अभिव्यक्त हो सकता है? वस्तुत ब्रह्माण्ड असत् नही है। यदि यह सत् है तो इसका रचयिता कौन है? इसके उत्तर मे श्री अरविंद का कहना है कि परम ब्रह्म अद्वितीय शक्ति है। इसके अतिरिक्त किसी अन्य की सत्ता को स्वीकार करना, एक बडी भूल होगी। यही अद्वितीय सत् स्वय को सपूर्ण ब्रह्माण्ड मे अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य रखता है। जगत उसी मे समाहित है। परतु जगत को सत् मान लेने पर पहला प्रश्न यही होता है कि जब जगत मे अज्ञान है तो इसे ब्रह्म की सृष्टि किस प्रकार मानी जाय? श्रीअरविद कहते है कि जगत तथा इसकी अपूर्णता से भी जगत सृष्टि मे एक प्रयोजन दिखता है। चेतना के विभिन्न स्तर दिखते है – नि श्चेतन जड से क्रमश अधिक-से-अधिक चेतना की अभिव्यक्ति विभिन्न जीवधारियो मे दिखायी देती है। ऐसी स्थिति मे जगत को प्रयोजनहीन के बजाय माया या मिथ्या कहना, उसे एक ही पारमार्थिक सत्ता का आत्मविस्तार और आत्मनिर्धारण मानना, अधिक उचित प्रतीत होता है।[19]

श्रीअरविंद आलोचना करते हुए कहते है कि शकराचार्य के मायावाद मे परमब्रह्म निराकार, निर्विकार आदि रूपो मे रहता है, जबकि जगत को विकारी, साकार तथा जड़

---

18 अभयचद्र भट्टाचार्य श्रीअरविंद दर्शन पृष्ठ 84 85

19 डॉ नरेद्र सिह मायावाद के आधुनिक खण्डन की समीक्षा पृष्ठ 30

कहा गया है। इन विरोधी भावो मे सामजस्य लाने मे शकराचार्य असमर्थ रहते है। श्रीअरविद के अनुसार अद्वैत के लिए सभी प्रकार की सत्ता मे ऐक्य होना परम आवश्यक है। वस्तुत पारमार्थिक सत्ता मे अत और वाह्य दोनो स्तरो मे कोई भेद नही है। अत जगत पारमार्थिक सत् की अभिव्यक्ति के रूप मे माना जा सकता है। पारमार्थिक सत् समस्त सीमाओ से परे है अर्थात् इसे असीमित माना जा सकता है। परतु सीमाओ से परे होने पर भी यह आत्मसीमित है। इसीलिए डॉ इद्रसेन कहते है कि ब्रह्म मे आत्मनिर्धारण को अस्वीकार नही किया जा सकता है। जगत को पूर्ण सत् से पृथक नही, बल्कि उसके आत्मनिर्धारण के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है।[20]

शकराचार्य ने अद्वैत वेदात मे सृजन या सृष्टि के साथ न्याय नही किया है। उनकी यह मान्यता है कि जगत की रचना मे माया-शक्ति के दो कार्य–आवरण और विक्षेप है। परोक्ष रूप से ये दोनो कार्य ईश्वर द्वारा ही सपन्न होते है। विक्षेप शक्ति के माध्यम से ब्रह्म स्वय को प्रक्षिप्त करके नामरूपात्मक जगत की सृष्टि करता है। श्रीअरविद के अनुसार जगत माया अथवा अस्पष्ट रहस्य है। प्राय अद्वैतवाद इस स्थापना से असहमति प्रगट करते हुए जगत के अस्तित्व को नही मानता। यदि यह ब्रह्म की वास्तविक शक्ति है तो जगत को मिथ्या या माया के रूप मे कैसे स्वीकार करेगे? श्रीअरविद तर्क देते है कि जगत मिथ्या नही है। पारमार्थिक सत् असीमित शक्ति सपन्न है। असीमित शक्ति से सम्पन्न होने के कारण ही वह स्वय को सीमित रूप मे व्यक्त करने की क्षमता रखता है। अत यह जगत अनत सत्ता की व्यवस्थित रूप मे विकसित अनत सभावना है।

शकराचार्य का अद्वैत सिद्धात मुख्यत निगमन-आगमन के तर्क को लेकर चलता है, जिसके अतर्गत अद्वैत सत्ता से समस्त विचारो एव सिद्धातो का निर्गमन हुआ है। श्रीअरविंद ने आगमनात्मक पूरक विधि के माध्यम से इसका निर्णय किया है। उनके अनुसार, प्रकृति मे विकास के मुख्यत तीन अवतरण द्रव्य, जीवन तथा मानस मिलते है। एक अवतरण दूसरे से उच्च या निम्न अवतरण मे गतिमान रहते है। वे देखते रहते है कि जीवन और मानस

---

20 Surely selfdetermination cannot be denied to Brahman and the World being not outside the total reality the World can only be conceived as the result of Brahman's Self determination

फिलासाफिकल क्वार्टरली, 1944 पृष्ठ 88-89

अपनी विशिष्टताओ सहित निर्जीव दृश्य के साथ भी सामजस्य एव तारतम्य रखे है। इस दृष्टि से समस्त प्रकृति मे तारतम्ययुक्त विकास की गति पायी जाती है, जिनकी विभिन्न श्रेणियॉ है तथा इसमे प्रत्येक श्रेणी एक दूसरे का अतिक्रमण करती हुई उच्चतम निर्माण का प्रयास करती है। यह प्रक्रिया भ्रमात्मक न होकर अनुभवात्मक है और विज्ञान के माध्यम से देखी जा सकती है।[21]

श्रीअरविंद ने सामान्य व्यावहारिक जीवन के अनुभवो को गहन प्रत्यावर्तन का विषय माना है। उनका मानना है कि पशु एक जैविक प्रयोगशाला है जिसमे से प्रकृति ने मानव का निर्माण किया है। इसके साथ ही मानव स्वय एक ऐसी विवेकशील और जीवनयुक्त प्रयोगशाला है जिसके चेतनापूर्ण सहयोग से अतिमानव के निर्माण का प्रयास होता है। अत हर मनुष्य मे भावी विकास की सभावनाऍ तथा उसके सूचक चिह्न पहले से ही विद्यमान रहते है। विकास का यह क्रम मात्र मानव तक ही सीमित नही है। अतिमानव उसके लिए उच्च श्रेणी का मानव नही है बल्कि वह तो अपेक्षाकृत एक नया रूप मात्र है।

श्रीअरविद ने अद्वैत वेदात के भ्रम सिद्धात का भी बार-बार खण्डन किया है। इस सिद्धात के आधार पर शकराचार्य की भ्रमावस्था मे आरोपित वस्तु को न असत् माना जा सकता है न अनिर्वचनीय। वह वस्तुत स्मृति रूप सस्कार है जो अन्यत्र कही सत् हो सकता है, किंतु वर्तमान मे सत् नही है। यदि वह असत् रहता तो उसका अध्यारोप असभव होता। इसीप्रकार सर्प अन्यत्र सत् है लेकिन रज्जु मे उसका अध्यारोप मिथ्या है। यदि यह मान भी ले कि जगत काल्पनिक मस्तिष्क एव सस्कारो की देन मात्र है तो फिर प्रश्न इसकी उत्पत्ति का उठता है। यदि सपूर्ण जगत भ्रम है तो यह मानसिक नही होगा, क्योकि इसको उत्पन्न करने वाली सासारिक वस्तुऍ है। इसीलिए जगत को सत् मानना आवश्यक हो जाता है। दूसरे यदि जगत भ्रम है तो समस्त मानव उससे जल्दी ही निकलने का प्रयास करेगे। जगत की समस्त नामरूपात्मक वस्तुऍ अद्वितीय ब्रह्म का अलग-अलग रूपो मे परिणाम है। इन सभी अलग रूपो मे वह अपूर्ण तथा अज्ञानस्वरूप दृष्टिगोचर होता है। इसी से श्रीअरविंद

---

21 The whole nature is then one continuous evolving process with distinct stages, each succeeding one showing a higher organisation So far it is all empirical science conceives it

फिलासाफिकल क्वार्टरली 1944 पृष्ठ 89

ने ब्रह्म को सर्वसत्तासपन्न सर्वव्यापी सर्वज्ञ, विभु मानने के साथ ही भौतिक जगत मे अभिव्यक्ति रखने की क्षमता से भी परिपूर्ण माना है। पारमार्थिक सत् के ज्ञान से जगत भ्रम रूप मे आभासित न होकर पूर्णता से युक्त एव उसमे समाहित प्रतीत होता है।[22]

पुनश्च, श्रीअरविद इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि जगत भ्रम या मिथ्या नही है, किंतु यह प्रश्न कि अद्वैत सिद्धात की माया क्या समस्त दोषो से मुक्त है? यह एक छल–प्रश्न दोष से पूरित युक्ति है, क्योकि इसे न तो 'हॉ से और न ही ना' से व्याख्यायित किया जा सकता है। आध्यात्मिक चेतना की एक विशेष अवस्था मे विभिन्नता और अनेकता से भरा हुआ जगत माया या भ्रम दिखता है लेकिन यह शुद्ध चेतना मे अकस्मात् मन के पहुँचने की अवस्था है, जिसमे जड तथा चेतन मे विरोध प्रतीत होता है। इसके विपरीत एक स्वतत्र सिद्धात के रूप मे मायावाद आगे जाने पर अपूर्ण दिखायी देता है। परमसत् वस्तु स्वरूप ब्रह्म वह है जिसे जान लेने पर सबकुछ अवास्तविक और अबोध रहस्य प्रतीत होता है।[23] मायावादियो ने जगत तथा उसके अनुभव को महत्ता नही दी है, जो कि ठीक नही लगता है। आधुनिक युग मे जगत का अनुभव साहित्यिक एव सास्कृतिक उपलब्धियॉ, किसी भी तरह से उपेक्षित नही की जा सकती है। यह समस्त माध्यम परमतत्त्व की अभिव्यक्ति होने के साथ ही साथ उस तक पहुँचने के मार्ग भी है। इसलिए जगत को मिथ्या या भ्रम नही माना जा सकता है। इस दृष्टि से मायावादी सिद्धात समीचीन प्रतीत नही होता है।[24]

अद्वैत दर्शन को लेकर अनेक विचारधाराएँ प्रचलित रही है। परतु इस दर्शन को विविध स्तरो पर अभिव्यक्ति प्रदान करने का दुष्कर काम श्रीअरविंद ने किया है। इसके सात

---

22 डॉ नरेद्र सिंह मायावाद के आधुनिक खण्डन की समीक्षा पृष्ठ 31

23 The Brahman, the Supreme Reality, is that which being known, all is known, but in the illusionist solution it is that, which being known, all becomes unreal and an incomprehensible mystery

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 469 70

24 Maya Vada's uncompromising rejection of the World and experience is not understandable, its logic is too rigid and exclusive, and its negativist attitude towards individual life and the sum of human culture in general is too foreigh to the present day outlook upon life and existence

फिलासाफिकल क्वार्टरली 1944, पृष्ठ 95

स्तरो का उल्लेख श्रीअरविद ने किया है, जिसमे अतिमानस या अतिमानव' विशेष महत्त्व के है। श्रीअरविद का मानना है कि दृश्य जगत मे चेतना विद्यमान है। द्रव्य प्रच्छन्न जीवन और प्रच्छन्न चेतना का एक रूप है।[25] इसी तरह मनस भी छिपे मनस से परे उच्च स्तरीय दशाओ का रूप है। श्रीअरविद ने अद्वैत की अवधारणा के विभिन्न स्तरो को विकासवाद से सम्बद्ध करने का प्रयास किया है। डॉ इन्दसेन ने श्रीअरविंद के विकासवाद को स्पष्ट करते हुए कहा है कि डार्विन के विकासवाद से श्रीअरविंद का विकासवादी सिद्धात पूरी तरह भिन्न है। डार्विन का सरवाइवल आफ दि फिटेस्ट का सिद्धात कमजोर है। इसे आधार मानने से विश्व का विकास पूर्णता के रूप मे मान्य नही होता है। श्रीअरविद के अनुसार ऐक्य सत्ता की उच्चतम चेतना सुप्तावस्था मे रहती है। उसका विकास सोद्देश्य होता है। श्रीअरविद का मानना है कि विकास मे आरोह होता है। आरोह के माध्यम से पूर्ण चेतन अवस्था की पुनर्प्राप्ति होती है। यह आरोह आरभ बिदु तक वापस आने की यात्रा नही है। यह ब्रह्म की रचनात्मक क्षमता तथा इच्छा है। सपूर्ण विश्व का एक रचनात्मक स्रोत है, जिसमे क्रमश, नये नये रूपो का अनुभव होता है। विश्व की समस्त रचनाओ के माध्यम से पूर्ण सत् प्रत्येक क्षण मे स्वय का नवीनीकरण करता है। इसके अतर्गत पुरानी स्थिति की वापसी निश्चित नही है। फिर भी परमसत् तो एक ही है। इन समस्त तर्को को सीमित तथ्यो के माध्यम से प्राप्त नही किया जा सकता। श्रीअरविंद ने इसके अवबोधन के लिए असीमित तर्क को ही महत्त्वपूर्ण बताया है।

शकराचार्य के मतानुयायी प्रोफे मलकानी ने श्रीअरविंद के अज्ञान के सबध मे दिये गये मत का विरोध किया है। उनका तर्क है कि यदि जगत ब्रह्म के पूर्ण सत् की अभिव्यक्ति है तो अज्ञान इसमे कैसे है? पूर्ण चेतन ब्रह्म एव इसका अवरोधित स्वरूप अचेतन दृश्य, इन दोनो मे सामजस्य किसप्रकार सभव है? पूर्ण सत् के द्वारा अपूर्णता तथा दु ख की उत्पत्ति किसतरह होती है? इसके उत्तर मे श्रीअरविद ने माना है कि ऐसे विरोधो की उत्पत्ति का कारण सीमित मस्तिष्क है। यहॉ यह विचारणीय प्रश्न है कि यह सीमितता अस्तित्व मे समाहित ही क्यो हुई? श्रीअरविद के लिए इस 'क्यो का उत्तर देना मुश्किल हो रहा था,

---

25 In essence matter is a form of veiled life, life a form of veiled consciousness

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन भाग 2 पृष्ठ 4

फिर भी उनके पूर्ण सत् भौतिकीय रूप मे सीमित होने के अर्थ को व्यक्तित्व के रूप मे, द्रव्य के आकारो के रूप मे विशिष्ट जैवीय इकाइयो एव मानवीय मस्तिष्क के रूप मे समझ सकते है। अद्वैत की विभिन्न विचारधाराओ मे इसी को विभिन्न प्रकार से सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। श्रीअरविद भी अद्वैतवादी होने के कारण इन्ही मार्गो का चयन करते है। डॉ इन्द्रसेन के अनुसार श्रीअरविद का पारमार्थिक सत् स्वय सामर्थ्य द्वारा सीमित होता है। इसे दोषपूर्ण नही माना जा सकता। सीमाओ को महानता की प्राप्ति के साधन के रूप मे स्वीकार कर सकते है। विभिन्न रूपो मे पाप को शुभ के उत्थानात्मक अनुभव की एक घटना के रूप मे विवेचित करने का प्रयास किया जाता है न कि पाप, शुभ या पूर्ण की अवहेलना के रूप मे। वस्तुत यह महानतम शुभ और पूर्ण के रूप मे ही स्वीकारा गया है।

इसप्रकार अज्ञानता ज्ञान के मृत्यु जीवन के और असमर्थता सामर्थ्य के साधन के रूप मे है। मानव की सबसे बडी कठिनाई यह है कि अज्ञानता, मृत्यु तथा असमर्थता को अपनी इच्छाओ के अवरोधक के रूप मे ही प्रस्तुत करता है। यह आवश्यक है कि तर्क को मनोवैज्ञानिक आश्रय का रूप दिया जाय। इसीकारण श्रीअरविंद को बुद्धिवादियो की श्रेणी मे नही रखा जाता है। श्रीअरविद योग के माध्यम से आतरिक अनुभवो मे परिवर्तन की बात कहते है। अत योगावस्था से पहले सामान्य तौर पर जिसे मनुष्य अवरोध के रूप मे देखता रहा है उसे वह योगावस्था मे जीवन की परिस्थितियो मे हो रहे परिवर्तन के रूप मे स्वीकारते है। आनद और कष्ट इद्रियो की परपरा है। उनका मानना है कि मानव मे सभी तरह के आनद को उत्पन्न करने की क्षमता है। मानव मस्तिष्क धरातल पर लडखड़ाते हुए भी गतिमान रहता है और इतस्तत भ्रमण करता रहता है। वह गहराई मे जाने और वहॉ पहॅुचने का आदी नही है। परिणामस्वरूप आनद-दु ख, गुण दोष सत् असत् के द्वैत और विरोधो का स्पष्टत अनुभव करता है। डॉ इद्रसेन का मानना है कि मानव की अतरात्मा, समस्त वस्तुओ की समन्वित अतरात्मा के सतत अनुभव मे सच्चिदानद के प्रति जागरूक रहती है। इसतरह का अनुभव ही पाप का वास्तविक चित्र अकित करता है। यह एक पूर्ण अनुभव है। यदि मानव अपने आतरिक अनुभव मे उचित दिशा लेना सीख ले तो प्रयत्न के माध्यम से इसकी प्राप्ति सभव हो सकती है। यह अनुभव ही पापादि जैसी दुरूह दार्शनिक समस्याओ को हल करने मे समर्थ होता है।

श्रीअरविद का मानना है कि अज्ञानता और अशुभ पारमार्थिक सत् के साधन है।

पारमार्थिक सत् की आत्मसीमा की अभिव्यक्ति अज्ञानता है। अपने स्वरूप मे यह अपने तक सीमित ज्ञान है, जो ऐक्य ज्ञान आत्मचेतना को विस्मृत कर विश्वीय गति के गोपनीय धरातल पर व्यतिरेकी रूप मे अवस्थित रहता है। अत अतिरिक्त रूप मे अवस्थित होने के कारण व्यक्तित्व का उत्थान होता है।[26] इसके साथ ही यदि व्यक्तिगत उत्थान पूर्ण सत्ता को घनीभूत करने का स्रोत है तो इस अवस्था मे आत्मसीमित ज्ञान के रूप मे अज्ञानता, ज्ञान को वृहद् स्वरूप प्रदान करने के रूप मे विवेचनीय है।

श्रीअरविद के अनुसार विभिन्नताओ द्वारा व्यक्तिगत जीव सतत उत्थानात्मक विकास की ओर बढता रहा है। इसप्रकार विभिन्नता और अनेकता भरा हुआ जगत भ्रम या माया नही है। यदि यह कहा जाय कि शकराचार्य का मायावाद निरापद है, तो श्रीअरविंद हॉ और ना दोनो तरह से अपना मत प्रस्तुत करते है। आध्यात्मिक सत् की विशेष अनुभूति की दृष्टि से मायावाद निरापद हो सकता है। इसमे नानारूपात्मक जगत भ्रम-सा प्रतीत होता है। मस्तिष्क अपने कार्यो से स्वय को विमुख कर लेता है। इस अनुभूति मे लीन मानव समस्त ऐद्रिय सबधो से रहित हो जाता है। लेकिन श्रीअरविद ने यह स्वीकार किया है कि जब जीवन तथा सत्ता पर दृष्टि डालते है मायावाद अपूर्ण प्रतीत होता है। जिसके जानने से समस्त वस्तुएँ ज्ञेय हो जाती है वह ब्रह्म है। इसके विपरीत मायावादियो के अनुसार ब्रह्म का ज्ञान होते ही विश्व की अन्य वस्तुएँ असत् हो जाती है। श्रीअरविंद इसे नही मानते है। उनके अनुसार मायावादियो द्वारा जगत और जगत सबधी अनुभव की अवहेलना करना अनुचित है।

माया के विषय मे श्रीअरविद से सहमत या असहमत होने के लिए उनके दर्शन की दो धारणाओ पर विचार करना आवश्यक होगा। पहली धारा मे अनत का तर्क है, दूसरी अज्ञान की उत्पत्ति सबधी अवधारणा है। साधारणतया तर्क द्वारा मायावादियो ने जगत को मिथ्या माना है। लेकिन यह दृष्टिकोण उनके दर्शन की समस्या को समाप्त करने के बजाय उसे उलझा देता है, क्योकि तर्कशक्ति का प्रयोग व्यावहारिक प्रयोजन के लिए सहायक होता

---

26 The purpose of such movement of self limitation and exclusive concentration on a single field of cosmic action is, as we can see, to develop individuality

फिलासाफिकल क्वार्टरली 1944 पृष्ठ 94

है। इसके माध्यम से सत्ता की पूर्णता पाना असभव है। इसके लिए अनत के तर्क को लेकर चलना होगा। इसी तर्क के आधार पर इस श्रुतिवाक्य को समझने का प्रयास किया जा सकता है कि किस प्रकार पूर्ण से पूर्ण निकालने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है।[27] अनत के तर्क से ही सत्यता का अवबोध स्पष्ट रूप से होता है। सत्यता एक तरह से समग्रता है। इससे ज्ञान पर भी प्रकाश पडता है। सत्य क्यो द्वद्वात्मक है और उसकी अभिव्यक्ति मे भेद और अभेद का क्या महत्व है, इसे भी तभी जान सकते है।[28] इसके साथ ही अज्ञान की उत्पत्ति को जाने बिना ज्ञान के वास्तविक स्वरूप की व्याख्या कर पाना असभव है। यही कारण है कि श्रीअरविद का सारा विकास यात्रिक अनावरण जैसा प्रतीत होता है। अज्ञानता के साथ ही ज्ञान की महत्ता स्वय उद्घाटित हो जाती है।

श्रीअरविद ने शकराचार्य के मायावादी सिद्धात के विपरीत जगत को सत् के रूप मे स्वीकार किया है। उनका मानना है कि जगत के प्रत्येक कण मे ब्रह्म की अभिव्यक्ति होने से जगत भी ब्रह्म के समान ही सत् स्वरूप है। यह सच है कि पृथक रूप मे जगत की सत्ता अधूरी और अज्ञानता से युक्त प्रतीत होती है, लेकिन पारमार्थिक सत् की अभिव्यक्ति तथा उसके समाहित होने के कारण यह भी सत् ही है। श्रीअरविंद ने शकराचार्य के समान ही ब्रह्म को सर्वसत्तासपन्न सर्वव्यापी, निराकार एव सर्वज्ञ तो माना किंतु इसके साथ ही पारमार्थिक सत् को व्यावहारिक जगत मे अभिव्यक्त होने मे सक्षम भी बताया है। शकराचार्य का ब्रह्म सर्वसत्तायुक्त होने पर भी जगत मे अभिव्यक्त और लिप्त नही है। वह सपूर्ण जगत मे अज्ञानतावश ही प्रतीत होता है। ब्रह्मज्ञान के साथ ही जगत माया या भ्रम रूप मे अनुभूत होता है। श्रीअरविद ने इस विचारधारा का तीखे स्वर मे विरोध किया है। उनका मानना है कि पारमार्थिक सत् का ज्ञान होने पर जगत के पदार्थ असत् न होकर अपनी पूर्णता को प्राप्त कर, उसी मे समाहित होते है।

---

27 ॐ पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।
ईशावास्योपनिषद–3

28 एच आर जोकम द नेचर आफ ट्रुथ प्रोफे सगम लाल पाण्डेय द्वारा अनूदित सत्यता का स्वरूप

श्रीअरविद द्वारा की गयी आलोचना की समीक्षा

श्रीअरविद द्वारा शकराचार्य के मायावाद का खण्डन और उनके द्वारा की गयी आलोचना कितनी उचित-अनुचित है इसका आकलन कर लेना आवश्यक है। शकराचार्य ने अपने दर्शन मे श्रुति और स्मृति का ही अनुगमन किया है। इन्होने अलग से कोई ग्रथ लिखकर अपने सिद्धात की स्थापना नही किया बल्कि उपनिषद् आदि ग्रथो की व्याख्या करते हुए उन्हे अभिव्यक्त किया है। अर्थात् इन्ही ग्रथो के माध्यम से अपने विचारो को समझाने का प्रयास किया है। उपनिषदो मे स्पष्ट रूप से जगत की पारमार्थिक सत्ता को अस्वीकार किया गया है जिसका अनुगमन करते हुए शकराचार्य ने भी जगत को भ्रम या माया के नाम से अभिहित किया है। श्रीअरविद द्वारा शकराचार्य के मायावाद के खण्डन के विषय मे यह कहा जा सकता है कि उनकी आलोचना भ्रमात्मक और तर्करहित है। श्रीअरविद ने स्वय अद्वैत का अनुगमन किया है। वे अद्वितीय पारमार्थिक सत् को मानते है और पारमार्थिक सत् को ही एकमात्र शाश्वत सत् भी कहते है।[29] इसतरह उन्होने ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता मानकर उसे ही सर्वसामर्थ्यवान स्वीकार किया है तथा जगत को उसी से अभिव्यक्त और उसी मे समाहित भी माना है। उन्होने ब्रह्म से पृथक जगत की सत्ता को नही स्वीकार किया है। वास्तविकता यह है कि श्रीअरविद अतत व्यावहारिक रूप मे अनुभव जगत की सत्यता को मान्यता देते हुए, उसे ब्रह्म मे निहित और उसी मे समन्वित रूप मे सत् मानते है। शकराचार्य ने भी लगभग इसी तथ्य को माना है और नानाप्रकार की वासनाओ से युक्त जगत व्यवहार को भ्रम या माया कहा है। उनकी यह मान्यता है कि अद्वितीय पारमार्थिक सत् को ही शाश्वत सत् के रूप मे स्थापित करके जगत या किसी अन्य की सत्ता को स्वीकारना स्वय का उन्मूलन करना है। श्रीअरविद ने यही किया भी है। वे कहते है कि जगत को जगत के रूप मे ही सत् मानना उचित है। जगत ब्रह्म मे स्थित ब्रह्म ही है।[30]

---

29 Brahman is the Alpha and the Omega Brahman is the one besides whom there is nothing else existent

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन भाग 2 पृष्ठ 34

30 But the phans of conseoiousness to which the liberated human being arises is not dependent upon the physical world, and the cosmos, which we thus include and are included in is not the physical cosmos But the harmonically manifest being of God in certain great rhythms of His conscious force and self delight

वही पृष्ठ 36

श्रीअरविद ने जगत को सत्ता प्रदान करके यही किया है। यदि श्रीअरविंद ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता को स्वीकार करके जगत को उसी मे अवस्थित माने होते, तो ब्रह्म एव जगत से सबधित विरोध का शमन हो जाता और श्रीअरविद शकराचार्य के मत का पोषण करते हुए प्रतीत होते। चूॅकि शकराचार्य ने जिस जगत को माया या भ्रम कहा, वह व्यावहारिक जगत है। जगत को भ्रम या माया मानकर शकराचार्य ने जगत को आकाश-कुसुम तथा बध्या पुत्र की तरह असत् नही माना है। यहॉ माया का तात्पर्य मात्र इतना ही है कि ब्रह्म ही सबकुछ है। यह सपूर्ण जगत ब्रह्ममय है। ब्रह्म ही जगत का कर्त्ता, धर्त्ता तथा सहर्त्ता है।[31] ब्रह्म से सृजित इस ससार को ब्रह्म से भिन्न मानना शकराचार्य को उचित नही लगता। जगत ब्रह्म ही है। अत बाह्य समस्त व्यवहार मे एकमात्र ब्रह्म ही विराजमान है। शकराचार्य ने जगत को माया या भ्रम एक विशेष अर्थ मे कहा है। इसतरह श्रीअरविंद का जगत सबधी विचार तथा उनके द्वारा की गयी शकराचार्य की आलोचना उचित नही प्रतीत होती है।

श्रीअरविद का मानना है कि मायावाद मे व्यक्ति की सत्ता नही होती है, उसका व्यक्तित्व स्वय की सत्ता नही रखता है व्यक्ति का सारा ज्ञान-अज्ञानमय व्यवहार ब्रह्म ज्ञान के साथ ही असत् हो जाता है। यदि इन युक्तियो की समीक्षा की जाय तो शकराचार्य के विचारो मे एक तरह की पूर्णता झलकती है। श्रीअरविद ने मानव की सत्ता को विश्व मे स्थान अवश्य दिया है, लेकिन इस विशेष स्थान मे भी उसका ब्रह्म से अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही है। श्रीअरविद मानव को ब्रह्म द्वारा अभिव्यक्त और उसी मे निहित तत्त्व मानते है। ब्रह्म ज्ञान के साथ ही मानव स्वय को उसी की अभिव्यक्ति के रूप मे स्वीकार कर लेता है और सच्चिदानद की अनुभूति प्राप्त करता है। शकराचार्य के समान श्रीअरविद ने भी मानव की सत्ता को ब्रह्म के अतर्गत ही माना है।[32] श्रीअरविंद के अनुसार जीव का व्यावहारिक

---

31 तद ब्रह्म सर्वज्ञ सर्वशक्ति जगदुत्पत्ति स्थिति लय कारण वेदातशास्त्र देवावगम्यते कथम् समन्वयात।

ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 1 4

32 Our false consciousness of existing only by Selflimitation, by rigid distinction of ourselves from the rest of being and becoming is transcended, our identification of ourselves with our personal and temporal individualisation in a particular mind and body is abolished

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन भाग 2, पृष्ठ 333

अस्तित्व जिसमे वह स्वय को ब्रह्म से पृथक अस्तित्व के रूप मे देखता है, अनुचित है। शकराचार्य भी मानते है कि जीव ब्रह्म का ही रूप है।[33] इन तर्को के आधार पर भी श्रीअरविद द्वारा शकराचार्य के मायावाद की आलोचना निराधार है।

यदि पारमार्थिक सत् के जगत सबधी अभिप्राय को उसके योग मे और मूल्य मे वृद्धि का सूचक माने तो वह परमसत्ता नही रह जायगी। वस्तुत परमसत्ता मे किसीप्रकार की अपूर्णता की कल्पना नही की जा सकती। शकराचार्य ने अद्वैत वेदात मे परमसत्ता मे किसीप्रकार की अपूर्णता को नही माना है। यह सही है कि जगत मे परमसत्ता की अभिव्यक्ति भावात्मक वृद्धि न करके अभावात्मक या निषेधात्मक विकास ही करती है। वास्तविकता यह है कि इसके माध्यम से वह अपने स्वरूप का अन्वेषण तथा परीक्षण करता है। आत्मा का स्वय के सत् स्वरूप का अवगुठन करना ही आत्मतिरोधान है। इसलिए किसी भी स्तर पर उसकी अनुभूति सत्ता की ही अनुभूति होती है। उसे खो देना सत्ता की अनुभूति को खोना है। आत्मानुभूति खो जाने पर अनात्म की अनुभूति होती है। अद्वैत वेदात मे यह अज्ञान भ्रम रूप है। लेकिन श्रीअरविद आत्मतिरोधान को वास्तविक मानते है तथा उसे परमसत्ता की महत्वपूर्ण स्थिति के रूप मे देखते है।[34] शकराचार्य के अद्वैत वेदात के आधुनिक अनुयायियो का मानना है कि श्रीअरविद का ब्रह्मवाद निरपेक्ष सद्वाद नही है और इसकी आत्माभिव्यक्ति ब्रह्मवाद के विरुद्ध है।

श्रीअरविद ने पारमार्थिक सत्ता के सात क्रम या स्तर बताया है। यह सभी स्तर शाश्वत तथा सत् है। उन्होने इसे सत्ता का क्रमिक ह्रास या नीचे से ऊपर की ओर क्रमिक विकास के रूप मे देखा है। श्रीअरविद ने इस क्रमिक आरोह-अवरोह का कारण आनद को माना है, जिसके द्वारा समस्त वस्तुओ का सृजन होता है। परतु यहाँ अनेक समस्याएँ खड़ी

---

33 What ıs real ın each Jıva ıs only the unıversal Brahma ıtself, the whole aggregate of ındıvıdualısıng bodıly organs and ment fanctıons Whıch ın our ordınary experıence separate and dıstınguısh one Jıva from another, ıs the offsprıng of Maya and as such unveal

वेदातसूत्र शाकर भाष्य थिबाउत 25 26

34 But whıle thıs Ajnana ıs understand to be quıte ıllusory, Srı Aurobındo's Self oblıvıon ıs evıdently somethıng quıte real and a moment ın the lıfe of the Absolute

फिलासाफिकल क्वार्टरली अक्टूबर 1950 जनवरी 1951 पृष्ठ 96

हो जाती है। पहली समस्या तो यही है कि आनद के माध्यम से इन क्रमो का अवतरण मान लेने पर अवतरण शब्द से सादि' होने का अर्थ ध्वनित होता है। इसका अर्थ है कि अवतरण की प्रक्रिया से पहले ब्रह्म सच्चिदानद अर्थात् पूर्ण आनन्द स्वरूप था। पूर्ण आनद स्वरूप से आनद हेतु ही कार्य करने का तर्क सगत नही जान पडता है। अपने पक्ष मे श्रीअरविद यदि कहे कि यह विरोधाभास मात्र व्यावहारिक जीवन मे ही दिखता है पारमार्थिक स्तर पर इसका अस्तित्व नही है तो फिर यह शकराचार्य के मायावादी सिद्धात से अलग कहॉ हुआ? दूसरी ओर, श्रीअरविंद द्वारा इसके विपक्ष मे प्रस्तुत विरोध सामान्य जीवन का ही विरोध कहा जा सकता है। आनद से आनद के लिए सृष्टि का सृजन सबधी श्रीअरविद का मत मान लेने पर दूसरी समस्या यह उठती है कि यदि ऐसा है तो ससार को दु खो से रहित होना चाहिए। जबकि अधिकाश दार्शनिको ने ससार को दु खमय ही बताया है। ससार मे अनेक दु ख है। सारा जीवन कष्ट तथा निराशा से परिपूर्ण है। इनकी अधिकता के कारण ही मानव-मन सर्वदा अशात रहता है। शकराचार्य भी इसे मानते है और इसकी निवृत्ति हेतु मोक्ष का मार्ग बताते है। उनके विचारो मे वेदोपनिषद् का प्रभाव मिलता है जो अद्वैत की स्थापना और व्यावहारिक जगत का खण्डन करता है। व्यावहारिक स्तरो पर स्थापित दु खो से परे जाकर पारमार्थिक स्तर पर अग्रसरित होने का मार्ग बताता है। श्रीअरविद ने भी आनद से जगत की रचना को स्वीकार किया है और सासारिक सुख-दु ख के सबध मे शकराचार्य की ही भॉति अपने विचार व्यक्त किया है। श्रीअरविंद का मानना है कि सुख एव दु ख सापेक्ष अनुभव है, लेकिन आनद तो निरपेक्ष तथा निर्विरोध है। सुख-दु ख व्यापक आनद मे समाहित है। फिर भी इद्रिय बोध के स्तर पर ही सुख तथा दु ख की अशात अनुभूति होती है। अतिमानस स्तर पर केवल आनद की ही असीम और निर्विरोध अनुभूति होती है। इसतरह श्रीअरविद के दर्शन मे भी किसी न किसी रूप मे व्यावहारिक जगत के असत् होने की सभावना को ही प्रगट किया गया है।

श्रीअरविद का यह भी मानना है कि पारमार्थिक सत्ता अनेक सभावनाओ से युक्त है। इन्ही से वह व्यावहारिक जगत मे वास्तविक रूप धारण करती है। पारमार्थिक सत् का एक ऐसी शक्ति से सपन्न होना आवश्यक है जिससे जगत की रचना का कार्य सपादित हो सके। प्रोफे मलकानी ने यहॉ विरोध प्रगट करते हुए कहा है कि वस्तुत अविभाज्य तथा सरल सत् ही अनत है। यह व्यक्त नही हो सकता है क्योकि यह नित्य सिद्ध है। माया

द्वारा सत्यता को नही मापा जा सकता। वह मात्र असत्य को ही प्रस्तुत करने का कार्य करती है और अनत या असीम को सीमित कर देती है। सृष्टि प्रक्रिया के माध्यम से सत्य का साक्षात्कार नही होता अपितु अध्यास प्रक्रिया को रचा जाता है। श्रीअरविंद सृष्टि प्रक्रिया द्वारा स्वय प्रकाश की विधि बताते हुए अध्यास को ज्ञान मार्ग मानने की भूल करते है।[35]

पारमार्थिक सत् से द्रव्य की ओर जाना अवरोह तथा द्रव्य से पारमार्थिक सत् की ओर बढना आरोह है। लेकिन श्रीअरविद द्वारा इसे दर्शन का रूप दिया जाना कुछ अस्पष्ट-सा है। यदि मान ले कि यह मात्र पिष्टपेषण है तो भी ठीक नही। श्रीअरविद स्वय पारमार्थिक सत् द्वारा जगत की अभिव्यक्ति अनिवार्य नही मानते है। उन्होने स्वीकार किया है कि पारमार्थिक सत् व्यावहारिक जगत की अभिव्यक्ति करने अथवा न करने के लिए स्वतत्र है।[36] उसे किसी तरह की बाध्यता नही है। लगभग इसीतरह जगत को अभिव्यक्त करने की अबाध्यता को शकराचार्य ने भी स्वीकार किया है। उनका मानना है कि ब्रह्म व्यावहारिक जगत से परे शाश्वत सत् है तथा इस अवस्था मे जगत की सत्ता भ्रमात्मक रहेगी। यदि इसे भ्रम न माना जाता तो ब्रह्म को जगत मे अभिव्यक्ति करने की बाध्यता, श्रीअरविंद द्वारा स्वीकारना विरोधपूर्ण हो जाता। यहॉ पर भी शकराचार्य के मायावाद के खण्डन मे श्रीअरविद का मत उपयुक्त नही प्रतीत होता है।

श्रीअरविद के विकासवाद के सिद्धात मे भी विरोधाभास है। उनके द्वारा विकासवाद को पूरी तरह यात्रिक कहना सगत नही है। इससे बचने के लिए श्रीअरविद आध्यात्मिकता की शरण मे गये फिर भी उनका विकासवाद यात्रिक होने से बच नही पाया। विकासवाद मे, जो पहले से दृष्टिगत नही है उसके सृजन का कोई न-कोई कारण अवश्य है। उन्होने यहाँ लीलावाद का सहारा लिया। प्रोफे मलकानी ने श्रीअरविद के लीलावाद पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि लीला के सप्रत्यय का भी परमसत्ता के सप्रत्यय से कोई स्पष्ट सामजस्य नही दिखता है, क्योकि यह परमसत्ता को एक सघर्षरत मानव बना देता है। यह

---

35 फिलासाफिकल क्वार्टरली अक्टूबर 1950 जनवरी 1951 पृष्ठ 96

36 The Absolute cannot ındeed be bound ın ıts nature to manıfest a cosmos of relatıons, but neıtheı can ıt be found not manıfest any cosmos

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन भाग 2 पृष्ठ 569

पूर्णत नृतत्वारोप है। मानव परमसत्ता को पहले एक मनुष्य बनाता है, फिर उसकी लीला की कल्पना करता है।[37]

शकराचार्य ने समस्त भौतिक पदार्थो को अस्वीकार कर दिया है। उनका कहना है कि आत्मानुभूति मे भौतिक पदार्थो से बाधा उत्पन्न होती है। लेकिन श्रीअरविद ने इसका विरोध करते हुए ब्रह्म की पूर्ण अभिव्यक्ति मे सभी स्तरो के समान रूप से विकसित होने की बात कही है। वस्तुत जीवन की समस्त दिशाएँ अलग अलग महत्व रखती है। जगत की समस्त वस्तुओ का समग्र विकास करना विशेष रूप से महत्व रखता है। जितना व्यष्टि का विकास आवश्यक है, उतना ही समष्टि का भी विकास जरूरी है। श्रीअरविद ने व्यष्टि और समष्टि के सश्लेषणात्मक विकास को आवश्यक बताया है। इसी सश्लेषणात्मक विकास मे व्यक्ति के विभिन्न पक्षो और स्तरो के साथ प्रकृति के भी सभी अगो का साथ-साथ विकास होता है। श्रीअरविद ने समन्वयात्मक विकास को ही 'सश्लेषणात्मक योग कहा है। इस योग की प्राप्ति के बाद मानव दिव्य लोक मे पुनर्जन्म प्राप्त करता है। परतु ध्यातव्य रहे शकराचार्य का योग पूर्ण योगावस्था की प्राप्ति कराने मे अक्षम है। समस्त सासारिक पदार्थो मे ईश्वरीय अभिव्यक्ति का अनुभव करने के साथ ही इस अनुभूति के लिए मानव को बाह्य जगत की अपेक्षा अत जगत की ओर उन्मुख करता है। यहॉ बाह्य पदार्थो की उपयोगिता और आकर्षण के स्थान पर आत्मानुभूति को अधिक महत्त्व दिया जाता है। श्रीअरविंद द्वारा वर्णित दिव्य जगत की अनुभूति प्रत्येक व्यक्ति को अलग-अलग होती है। अतिमानस की अवस्था तक पहुँचे आप्त पुरुषो के शब्दो को प्रमाणित करने के लिए आवश्यक है कि इनमे एक समन्वय स्थापित किया जाय। श्रीअरविद का मानना है कि यदि इनमे समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया भी जाय तो भी यह सामान्य मानव, बुद्धि द्वारा ही स्थापित हो सकता है। श्रीअरविद अतिमानस स्तर के तर्क को सामान्य मानव बुद्धि से परे मानते है। ऐसी स्थिति मे उनका यह विचार वास्तव मे, वदतोव्याघात है। स्पष्ट है कि श्रीअरविद का दर्शन विरोधाभासो से भरा है।

श्रीअरविद ने माना है कि पारमार्थिक सत् स्वय को अपनी सत्ता के विभिन्न रूपो और शक्तियो मे अभिव्यक्त करता है। उसकी समस्त प्रक्रिया मे रहस्य परिलक्षित होता है। यहॉ

---

37 फिलासाफिकल क्वार्टरली अक्टूबर 1950 जनवरी 1951 पृष्ठ 96

तक कि एक इद्रजाल भी लेकिन यह दिखाने वाला कुछ भी नही कि वह कोई अवास्तविक इद्रजाल है बल्कि यह शाश्वत आत्मज्ञान द्वारा परिचालित होता है।[38] यहॉ प्रोफे मलकानी का कथन है कि वस्तुस्थिति इसके ठीक विपरीत है। समस्त इद्रजाल अवास्तविक इद्रजाल ही है। अ-अस्तित्त्ववान को अस्तित्त्ववान के रूप मे प्रदर्शित करता है। यदि कोई इद्रजाल है तो यही है। सामान्यत ईश्वर एक जादूगर है और उसने ऐसे जगत का सृजन किया है जिसका कोई अस्तित्व ही नही है। यदि ईश्वर मे जगत किसी तरह विद्यमान है और स्वय को अभिव्यक्त करने हेतु वह कुछ करता है तो उसे माया का नियत्रणकारी जादूगर नही माना जा सकता क्योकि उस स्थिति मे वह स्वय माया की एक शक्ति की तरह ही हो जायगा और उसे स्वय परिवर्तन की प्रक्रिया मे जाना पडेगा।[39] यह उचित नही होगा।

इसतरह यदि शकराचार्य और श्रीअरविद के मतो के पक्ष और विपक्ष का अध्ययन करे तो पता चलता है कि शकराचार्य का मायावाद का सिद्धात पूर्णतया तार्किक होने के साथ-साथ अकाट्य भी है। श्रीअरविद द्वारा शकराचार्य के विचारो तथा मतो के खण्डन का कारण मात्र यही है कि उन्होने मायावादी सिद्धात को उस रूप मे नही ग्रहण किया, जिस रूप मे शकराचार्य ने अपने अद्वैतवाद की रक्षा हेतु ग्रहण किया था। निरपेक्ष भाव से अध्ययन करने पर श्रीअरविद के दर्शन मे भी दूसरे भावो के साथ उन्ही तथ्यो या विचारो की छाया मिलती है जो शकराचार्य के दर्शन मे पहले से ही स्थापित हो चुके थे। कहा जाय कि श्रीअरविद ने शकराचार्य के मायावाद के खण्डन द्वारा उनके विचारो को ही किसी न किसी रूप मे पुष्ट किया है। ऐसा इसलिए है, क्योकि एक ओर अद्वैत को ही निरपेक्ष सत् मानना और दूसरी ओर जगत को भी सत् मानना सभव ही नही है। श्रीअरविंद भी अपने चितन मे एक ओर अद्वैतवाद के व्यामोह को छोड़ नही पाते है और दूसरी ओर, लौकिक जगत को सत् के रूप मे परिभाषित करते है। इसलिए यदि श्रीअरविंद को अपने दर्शन मे अद्वैतवादी मान्यता को स्वीकार करना है तो उन्हे जगत को ब्रह्म की माया-शक्ति का परिणाम स्वीकार करना चाहिए था।

□□□

38 There is nothing to show that it is a magic of the unreal it is rather a self-creation operated by an eternal self knowledge

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 431-32

39 फिलासाफिकल क्वार्टरली अक्टूबर 1950 जनवरी 1951 पृष्ठ 104

चतुर्थ अध्याय

मायावाद की तत्त्वमीमांसीय व्याख्या

(शकराचार्य और श्रीअरविद के अनुसार)

अ शकराचार्य द्वारा माया की तत्त्वमीमासीय व्याख्या

(i) निरपेक्ष सत् का स्वरूप

(ii) ब्रह्म का पारमार्थिक स्वरूप

(iii) माया द्वारा ब्रह्म के स्वरूप का आच्छादन

(iv) मायाजन्य जीवात्मा

(v) मायिक जगत का स्वरूप

ब श्रीअरविद द्वारा माया की तत्त्वमीमासीय व्याख्या

(i) पारमार्थिक सत् की तार्किक अभिव्यक्ति

(अ) शुद्ध सत्

(ब) चित् सत्

(स) आनदस्वरूप सत्

(ii) अतिमानस की सकल्पना

(iii) मानव की अवधारणा

(iv) सृष्टि का स्वरूप

(अ) अवतरण प्रक्रिया

(ब) उत्थान प्रक्रिया

चतुर्थ अध्याय

मायावाद की तत्त्वमीमांसीय व्याख्या

(शकराचार्य और श्रीअरविद के अनुसार)

अ शकराचार्य द्वारा माया की तत्त्वमीमासीय व्याख्या

शकराचार्य का सपूर्ण दर्शन इस श्लोकार्ध पर आधारित है, ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर । अर्थात् ब्रह्म ही सत्य है। वही सनातन है। जगत मिथ्या है असत्य है। जीव ब्रह्म ही है, उससे अलग नही है। ब्रह्म एव आत्मा, वास्तव मे, एक है। दोनो परम तत्त्व के पर्यायरूप है। जगत प्रपच मात्र है। वह माया की ही प्रतीति है। जीव और जगत दोनो मायाकृत है। जिसप्रकार रज्जु की भ्रमवश सर्प के रूप मे प्रतीति होती है तथा रज्जु का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर सर्प का भ्रम स्वत समाप्त हो जाता है, उसीप्रकार ब्रह्म, अविद्या या माया के कारण जीव जगत प्रपच के रूप मे प्रतीत होता है। निर्विकल्प अपरोक्ष ज्ञान के द्वारा ब्रह्म ज्ञान के साथ ही जीव जगत प्रपच नष्ट हो जाता है। यही आत्मज्ञान की स्थिति है। शकराचार्य का मानना है कि यह सपूर्ण जगत मायावी ईश्वर का खेल है। जगत वास्तविक रूप मे तो सत् है लेकिन पारमार्थिक रूप मे भ्रम या मिथ्या है। सपूर्ण विश्व मे एकमात्र ब्रह्म ही सत् है।

(1) निरपेक्ष सत् का स्वरूप

वस्तुत सत् क्या है' यह एक विचारणीय प्रश्न है। सत् की व्याख्या करते हुए प्रोफे. सी ई एम जोड का कहना है कि 'विश्व के प्रति साधारण मानव का दृष्टिकोण वस्तुवादी है। वह मानता है कि ससार की अन्य वस्तुओ के साथ ही उसकी भी सत्ता है तथा वे वस्तुएँ

उससे स्वतत्र है। वह अपनी चेतना को एक प्रकार का प्रकाश मानता है जो अन्य सासारिक वस्तुओ को प्रकाशित करती है। वह उनकी सख्या और प्रकृति को जानने मे समर्थ है। उसके लिए वस्तुएँ वैसी ही है, जैसी वह देखता है।[1] मैक्समूलर के अनुसार अधिकाश मानव के लिए सपूर्ण दृष्टिगत जगत सत् है।[2] अत ससार मे जो कुछ इद्रिय-प्रत्यक्ष का विषय है, वही सत समझा जाता है। इसके विपरीत असत् है।[3] लोकमान्य तिलक ने भी माना था[4] कि वृहदारण्यक उपनिषद् मे सामान्यत जो कुछ दृष्टिगत है वह सत् है।[5]

किंतु सत् विषयक यह सामान्य दृष्टिकोण सही प्रतीत नही होता है, क्योकि यदि दृष्टिगत वस्तुओ को ही सत् मानेगे तो भ्रात प्रत्यक्षीकरण और यथार्थ प्रत्यक्षीकरण मे भेद नही किया जा सकेगा। ऐसी स्थिति मे मृगमरीचिका का जल और रस्सी का सर्प कभी असत् सिद्ध होगा ही नही। शकराचार्य ने स्वीकार भी किया है कि कोई वस्तु मात्र इसलिए सत् नही है कि वह दिखायी देती है। प्रतिपत्ति तो सत्यत्त्व तथा मिथ्यात्त्व की समान रूप से होती है।[6] यद्यपि शकराचार्य ने स्वीकार किया है कि मानव के सामने उपस्थित[7] और दृश्यमान या मूर्तवान[8] वस्तुएँ ही सत् है। यहाँ शकराचार्य तथा टी एच ग्रीन की सत् की परिभाषा मे समानता है। टी एच ग्रीन के अनुसार जो कुछ सत्य है, वह अपरिवर्तनीय है।[9] इसीप्रकार

---

1 प्रोफे सी ई एम जोड इट्रोडक्शन टु माडर्न फिलॉसफी पृष्ठ 6

2 प्रोफे मैक्समूलर थ्री लेक्चर्स आन दि वेदात फिलॉसफी पृष्ठ 126

3 यदि करण गोचर तदस्तीति विपरीत चासदिति।

केनोपनिषद शाकर भाष्य 6 12

4 लोकमान्य तिलक गीता रहस्य पृष्ठ 217

5 वृहदारण्यक उपनिषद 5 14 4

6 न तावत्प्रतिपन्नत्वेन सत्यत्व वक्तु शक्यते प्रतिपत्ते सत्यत्वमिथ्यात्वयो ।

श्वेताश्वतर शाकर भाष्य (प्रस्तावना)

7 गीता शाकर भाष्य 2 37

8 सन्मूर्तमसदमूर्तञ्च

प्रश्न शाकर भाष्य 2 5

9 टी एच ग्रीन प्रोलीगोमेना टु एथिक्स पृष्ठ 29

शकराचार्य भी कहते है कि सत्य वह है जिसके विषय मे हमारी बुद्धि परिवर्तित नही होती। अथवा जिसका जो रूप निश्चित है उसमे कोई परिवर्तन नही होता है।[10] ध्यातव्य है कि सत् शब्द से सत्य बना है। व्यापक अर्थ मे यह अच्छा चरित्र और अच्छा व्यवहार है[11] किंतु पारमार्थिक या तत्त्वमीमासीय अर्थ मे यह अपरिवर्तनीय या निर्विकार है। महाभारत मे सत् की परिभाषा देते हुए कहा गया है, सत्य वह है जो अव्यय, नित्य और निर्विकार हो। [12]

शकराचार्य के मत को आधार माना जाय तो वस्तु की सत्यता और वास्तविकता को उसके अपरिवर्तित गुणो से निर्धारित किया जा सकता है। वे कहते है कि सभी लोगो मे एक ही आधार पर दो प्रकार की बुद्धि पायी जाती है।[13] जैसे जब हम अनुभव करते है कि घट है, पट है हस्ति है, तो यह मानते है कि एक ओर घट, पट हस्ति आदि का प्रत्यक्षीकरण हो रहा है तथा दूसरी ओर उनके अस्तित्व का भी अनुभव किया जा रहा है। इनमे से प्रथम तो परिवर्तनशील है किंतु दूसरा तद्वत् बना रहता है।[14] यहॉ तक कि मृग मरीचिका के जल के भ्रामक प्रत्यक्षीकरण मे भी वह अनुवर्ती बना रहता है।[15] वास्तव मे, समस्त अनुभव (आत्मनिष्ठ या वस्तुनिष्ठ) के साथ है की अनुभूति सम्मिलित रहती है। सारे परिवर्तन, नाम रूप और अनुभव (सत्य हो या असत्य) उन सबमे वह अनुवर्तित है और सभी का आधार है। शकराचार्य के अनुसार, यह परम और सर्वव्यापी अस्तित्व ही वास्तविक और

---

10 सत्यमिति यद्रूपेण यन्निश्चित तद्रूप न व्यभिचरति।

तैत्तिरीय उपनिषद शाकर भाष्य 2 16

11 भगवदगीता 17 26 27

12 सत्य नानाऽव्यय नित्यमविकारि ।

महाभारत शातिपर्व 162 10

13 सर्वत्र द्वै बुद्धि सर्वै उपलभ्यते समानाधिकरणे।

गीता शाकर भाष्य 2 16

14 घट सत पर नतु सदबुद्धि।

गीता शाकर भाष्य 2 17

15 मृगतृष्णिकादौ सदबुद्धि अनुवर्तमान।

वही 2 18

परमसत् है। स्वतत्र अस्तित्त्व के कारण यह अपरिवर्तनीय है। प्रोफे जी आर मलकानी के अनुसार स्वत अस्तित्त्ववान वस्तु वैसी ही बनी रहती है जैसी वह है।'[16] स्वत अस्तित्ववान वस्तु की प्रकृति सत् होनी चाहिए, वह सभवन (Becoming) नही होती है।

सभवन का अर्थ परिवर्तन अथवा परिवर्तन की प्रक्रिया है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो बिना किसी कारण के नही हो सकती। अपरिवर्तित ही कारण रहित होता है। चूँकि परिवर्तन के लिए कारण की और इसके साथ ही कारण के आधार की आवश्यकता होती है जो स्वत अस्तित्त्ववान कदापि नही हो सकता। वस्तुत सत और स्वत अस्तित्त्ववान दोनो एक ही है। सभवन की तरह सत् परिणामी भी नही हो सकता क्योकि परिणाम सत् की प्रकृति नही है। वह स्वस्वरूप, स्वय अस्तित्त्ववान और स्वय व्याख्येय है। सत् की व्याख्या असभव है। उसकी व्याख्या मे उसे अपने से भिन्न करना होगा। सत् होने का अर्थ अपरिवर्तनीय होना है। अपरिवर्तनीयता का अर्थ स्वत अस्तित्त्ववान और स्वत अस्तित्त्ववान का अर्थ स्वस्वरूप और स्वय व्याख्येय होना है। अत शकराचार्य का वास्तविक सत् अपरिवर्तनीय, स्वय अस्तित्त्ववान स्वस्वरूप और स्वय व्याख्येय सत् है। वही ब्रह्म कहलाता है।[17]

(ii) ब्रह्म का पारमार्थिक स्वरूप

ब्रह्म शब्द की व्युत्पत्ति सस्कृत के बृह् धातु से हुई है। बृह् का अर्थ है उगना, उगाना या बडा होना। शकराचार्य के अनुसार धात्वर्थ पर विचार करने से ब्रह्म शब्द का अर्थ चिर शुद्ध स्मरणीय निकलता है।[18] अपनी महानता के कारण ब्रह्म निरतिशय या भूमा कहलाता है।[19] ब्रह्म का यह सबोधन उसके वृहत्तम, पूर्ण तथा अन्य वस्तुओ को

---

16 प्रोफे के जी आर मलकानी द फिलासफिकल क्वार्टरली अप्रैल 1940 पृष्ठ 50

17 डॉ रामस्वरूप सिह नौलखा आचार्य शकर ब्रह्मवाद पृष्ठ 89

18 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 1 1

19 निरतिशय भूमाख्य वृहत्वाद ब्रह्मेति बिद्धि।

केनोपनिषद शाकर भाष्य 1 5

विकसित करने से सबधित है।[20] प्रोफे मैक्समूलर के विचार से ब्रह्म' शब्द का मूलार्थ है, वह जो विचार और शब्द के रूप मे था सृजन शक्ति अथवा भौतिक बल के रूप मे फूट पडे।[21] उन्होने यह सिद्ध किया है कि लैटिन शब्द वर्बम (Verbum), अग्रेजी शब्द वर्ड (Word) तथा सस्कृत शब्द ब्रह्म एक ही धातु बृह् या बृद्ध' से बना है, जिसका अर्थ है, फूट पडना। शकराचार्य की दृष्टि मे ब्रह्म महान, निरपेक्ष स्वत अस्तित्ववान तथा सपूर्ण सृष्टि का आधार है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि उन्होने ब्रह्म शब्द का प्रयोग दो अर्थो मे और भिन्न भिन्न रूपो मे किया है – एक अर्थ मुख्य है दूसरा गौण। मुख्यार्थ मे वह निरपेक्ष सत् है जो पूर्णत स्वस्वरूप निर्गुण तथा अनिर्वचनीय है। गौण अर्थ मे वह ईश्वर के रूप मे सगुण ब्रह्म है।

शकराचार्य ने उपनिषद् द्वारा ब्रह्म के निरूपण मे विधि तथा निषेध दोनो को स्वीकार किया है। जहाँ विधि रूप मे उसे सबकुछ और समग्र ससार के कारण का मूल कहा है, वही निषेध रूप मे न यह न वह दूसरे के बिना एक, देश काल से परे कहा है। यहाँ निश्चित रूप से पहले मे सगुण ब्रह्म और दूसरे मे निर्गुण ब्रह्म की प्रतिस्थापना की गयी है। शकराचार्य के अनुसार निर्गुण ब्रह्म सत्, परमार्थ सत्,[22] परमार्थ तत्व[23] और भूमा[24] है। वह नित्य कूटस्थ,[25] एकमेव भेदरहित [26] ह्रास-वृद्धि रहित अनश्वर,[27] अदृश्य, अज्ञेय अग्राह्य, गुणातीत निरवयव, निर्विकार, न भला-बुरा और न छोटा-बडा है।[28] उसमे देश-काल की परिकल्पना असभव है क्योकि वह न यह है और न वह।[29] वह महान, अज, अव्यय,

---

20 श्वेताश्वतर शाकर भाष्य 1 1

21 प्रोफे मैक्समूलर थ्री लेक्चर्स आन दि वेदात फिलासफी पृष्ठ 22

22 परमार्थ सत्य ब्रह्म तैत्तिरीय शाकर भाष्य 2 6

23 परमार्थ तत्त्व ब्रह्म गीता शाकर भाष्य 2 59

24 भूमा महन्निरतिशय छादोग्य शाकर भाष्य 7 23

25 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 3 19

26 वही 4 3 14

27 गीता शाकर भाष्य 2 17

28 वृहदारण्यक शाकर भाष्य 3 8 8

29 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य, 4 3 14

अविनाशी अमृत और सब तरह के भय से मुक्त है।[30] भूत वर्तमान और भविष्य तीनो काल उसके स्वरूप मे प्रवेश नही कर पाते है। वह पाप-पुण्य से परे और कार्य कारण से रहित है।[31] जिन उपाधियो के माध्यम से वस्तुओ को समझते है, इनमे से कोई उस पर लागू नही होती है। वह निर्विशेष होने से अवर्णनीय है।[32] इसमे न कोई अवयव है और न विशेषताएँ। यह असग और अससर्गी है तथा निरुपाधिक है।

शकराचार्य द्वारा ब्रह्म को निर्गुण कहने का तात्पर्य वह कुछ नही है से कदापि न था। वस्तुत अस्तित्व के लिए गुण का होना आवश्यक नही है। गुण स्वय मे गुणरहित होकर भी अस्तित्त्ववान है। यह मान्यता कि गुणो के बिना किसी भी वस्तु का ज्ञान असभव है गलत है। इस आधार पर तो स्वय गुणो का अस्तित्व भी नही रहेगा। एक गुण के लिए दूसरे गुण, दूसरे के लिए तीसरे पर निर्भर रहना होगा। यह अनावस्था-दोष को जन्म देगा। अत गुण के यथार्थ ज्ञान हेतु किसी अन्य गुण की आवश्यकता नही होगी। ऐसे मे ब्रह्म के गुणरहित अस्तित्त्व की सिद्धि स्वय ही हो जाती है।

शकराचार्य का मानना है कि किसी वस्तु मे गुणो का आरोपण उसे सीमाबद्ध करता है। अनत तथा असीम सत्ता को गुणयुक्त मानना असभव है। असीम ससीम को स्वय से अलग नही कर सकता है, क्योकि ऐसा करने पर वह असीम न होकर ससीम होगा। असीम होने के कारण उसे समस्त सीमाओ से ऊपर रहना होगा। ससीम चाहे अलग-अलग या एक साथ हो किंतु वह असीम जैसा नही हो सकता है। ऐसे मे शकराचार्य द्वारा ब्रह्म का निरूपण निषेधात्मक विधि या अलकृत भाषा मे करना सर्वथा उचित है। प्रोफे ए सी मुखर्जी के अनुसार, निस्सदेह परमसत् अनिर्वचनीय है, तो भी हम विचारो की उच्च्य भूमिका मे उसका वर्णन परोक्ष रूप से कर सकते है भले ही उसका शाब्दिक अर्थ वह न हो, जो उसके बारे मे कहा जाता है।[33] शकराचार्य ने भी कहा है कि असत् के द्वारा सत् का वर्णन

---

30 वृहदारण्यक शाकर भाष्य 14 4 25

31 कठोपनिषद शाकर भाष्य 12 14

32 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 4 3 14 3 2 16 3 2 11

33 प्रोफे ए सी मुखर्जी दि नेचर ऑफ सेल्फ पृष्ठ 267

हमारी बुद्धि पर अवलबित है और बुद्धि ही हमारे पास वह साधन है जो वस्तुओ की वास्तविक प्रकृति समझने की क्षमता रखती है।[34] उनकी दृष्टि मे अस्तित्त्व या सत् ब्रह्म का विधेयात्मक रूप है। यह अस्तित्त्व शुद्ध चिदात्मक है, क्योकि बुद्धि द्वारा अपरिवर्तनीय शुद्ध अस्तित्व को ग्रहण करने पर यह मानव को उसकी चेतना मे ही उपलब्ध होता है। बुद्धि को अनुभव मे प्राप्त समस्त वस्तुएँ परिणामी, क्षणिक ही लगती है। एकमात्र चेतना ही अपरिवर्तनशील तथा सर्वव्यापी प्रतीत होती है। सुषुप्तावस्था तथा जाग्रतावस्था दोनो मे यह मौजूद रहता है। मानवीय चेतना की अपरोक्षानुभूति ही इसके अस्तित्त्व का अनुभव कराती है। शुद्ध चेतना और शुद्ध अस्तित्त्व दोनो एक ही तत्त्वमीमासीय सत्ताएँ है जिन्हे शुद्ध आनद भी कहा गया है। यदि यह आनदमय नही है तो उसे प्राप्त करने की जिज्ञासा किसी को नही होगी। इसके साथ ही ब्रह्म अनत शक्ति और अनत ज्ञान से युक्त है। सपूर्ण विश्व का निमित्तोपादन कारण है। इसके निरपेक्ष तथा अद्वितीय होने के कारण सपूर्ण अनुभवात्मक नानारूपात्मक जगत का मूल इसी मे व्याप्त है। शकराचार्य का मानना है कि स्वय ब्रह्म ही सपूर्ण ससार की रचना करने वाली अनिर्वचनीय शक्ति माया से विभूषित है। यही माया ससार की उपादान और निमित्त कारण है। इस अवस्था मे शकराचार्य उसे सगुण ब्रह्म अपर ब्रह्म या ईश्वर कहते है।[35]

(III) माया द्वारा ब्रह्म के स्वरूप का आच्छादन

शकराचार्य के अनुसार ईश्वर ससार का स्वामी और कर्मफल देनेवाला है। परब्रह्म के विपरीत अपरब्रह्म या ईश्वर सगुण और साकार है। ईश्वर के लिए ब्रह्म ' शब्द के प्रयोग का एकमात्र कारण यही है कि जब भी ससार की रचना करने वाली अनिर्वचनीय शक्ति माया की उपाधि के साथ ईश्वर को देखते है तो उसे ब्रह्म' के सिवा और कुछ नही पाते। तब भी इनके स्वरूपो मे भेद करते है। ब्रह्म शुद्ध सत् व चित् है, जबकि ईश्वर सभूत सत् है तथा दृश्य जगत मे जो कुछ भी है, था और होगा, उस सबका तटस्थ द्रष्टा है। उसकी दो

---

34 गीता शाकर भाष्य 2 16

35 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 4 3 14 1 1 2 (प्रस्तावना)

प्रकृतियॉ है, जिन पर वह शासन करता है – प्रथम जीव तथा द्वितीय ससार की रचना करने वाली माया।[36] वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और समस्त ससार का उद्भव, पालन और प्रलयकर्ता है।[37] उसका ज्ञान सभी बाधाओ और सीमाओ से मुक्त है। उसे ज्ञान हेतु इद्रिय या शरीर की आवश्यकता नही है। वह सत्य सकल्प है क्योकि समस्त ससार के उद्भव, पालन और प्रलय की निर्विरोध शक्ति उसे प्राप्त है।[38] ईश्वर वैयक्तिक है, जबकि ब्रह्म, जो निरुपाधिक सत्ता है, अवैयक्तिक है। शकराचार्य ईश्वर को नारायण, विष्णु पुरुषोत्तम आदि नामो से भी सबोधित करते है। यह आस्था है कि भक्तो की रक्षा और दुष्टो के विनाश हेतु ईश्वर करुणावश पृथ्वी पर अवतार लेता है।[39] ईश्वर के भक्त और साधक ईश्वर को ही प्राप्त करते है किंतु ब्रह्म को प्राप्त होने की बात बुद्धिगम्य नही है।

परब्रह्म का ज्ञान पराविद्या कहलाता है और अपरब्रह्म अर्थात् सगुण ब्रह्म का ज्ञान अपराविद्या है।[40] अपराविद्या मे शुभाशुभ तथा अन्य वस्तुओ का ज्ञान है और उसे कभी कभी अविद्या भी कहते है [41] क्योकि वह निर्गुण और निर्विकार ब्रह्म के ज्ञान से भिन्न है। एकमात्र ब्रह्मज्ञान ही अनादि बधनो का नाश करता है। शकराचार्य ने स्पष्ट रूप से परब्रह्म को ही परमसत माना है। सत् को अव्यय और स्वय अस्तित्त्ववान मानने से ब्रह्म का स्वरूप स्थापित होता है। अपरब्रह्म शुद्ध सत् न होकर सभूत सत् है जो वास्तविक सत् नही है, क्योकि सभवन का तत्त्व सत् की प्रकृति के विरुद्ध है। वास्तविक सत् अपरवर्तनीय है। ऐसे मे सगुण या अपरब्रह्म क्यो है?

शकराचार्य के अनुसार अपर या सगुण ब्रह्म के सप्रत्यय की भी तर्कगत आवश्यकता है। निर्गुण ब्रह्म या परम सत् के बिना आनुभविक जगत की व्याख्या नही हो सकती है। उस शुद्ध सत् से व्यक्त जगत या सभवन की प्रतीति की कल्पना नही हो सकती है। इसलिए ब्रह्म

---

36 गीता शाकर भाष्य 12 19

37 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 1 5 (प्रस्तावना) 1 1 2

38 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 2 2

39 गीता शाकर भाष्य (प्रस्तावना)

40 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 4 3 14 1 2 21

41 मुण्डकोपनिषद शाकर भाष्य 1 1-4

को एक ऐसी शक्ति से सबद्ध मानना पडता है, जो सभवन की प्रतीति से निर्मित हो। यह तर्कगत आवश्यकता अपर ब्रह्म से पूरी होती है। इस सभवन को सत् कहते है।

(iv) मायाजन्य जीवात्मा

सगुण ब्रह्म अथवा ईश्वर दो प्रकृतियो पर शासन करता है – एक जीव, दूसरी जगत। समस्त विश्व का कारण और सृष्टा ईश्वर भी वास्तविक रूप मे ब्रह्म ही है। इसलिए अपने वास्तविक स्वरूप मे जीव और ईश्वर मे तादात्म्य है। इनकी तात्त्विक एकता के कारण विद्यमान महत्त्वपूर्ण भेद की ओर से मुँह मोडना अनुचित है। शकराचार्य दोनो के भेद को स्पष्ट करते हुए कहते है कि ईश्वर नित्य शुद्ध, चेतन और मुक्त है। उसका ज्ञान और शक्ति निर्बाध है। वह सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान तथा अक्षय ज्ञानशक्ति से सपन्न है। माया उसके ज्ञान मे बाधक नही है, क्योकि वही माया को धारण करता है।[42] समस्त राग-द्वेष से मुक्त होकर भी वह जीवो का रक्षक है।[43] वह उनका अतर्यामी[44] और उनके शुभाशुभ कर्मो का फलदाता है।[45] ससारी जीव ईश्वर से भिन्न है। जीव उपासक है, ईश्वर उपास्य है।[46] जीव प्राप्तकर्ता है ईश्वर प्राप्य है।[47] एक चितनकर्त्ता है दूसरा चितनीय है। एक ज्ञाता है, दूसरा ज्ञेय है।[48] यद्यपि ईश्वर और जीव तत्त्वत एक है, किंतु उपाधि भेद के कारण दोनो मे पर्याप्त अतर आ जाता है।[49] पचदशी के लेखक विद्यारण्य का कहना है कि ईश्वर की उपाधि शुद्ध सत्वगुणमयी माया और प्रकृति है, जबकि जीव की उपाधि अविद्या है। अलग-अलग जीवो मे

---

42 गीता शाकर भाष्य 10 40

43 वही 5 29

44 तत्त्वोपदेश 19

45 गीता शाकर भाष्य 5 29

46 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 1 16

47 वही 1 2 4

48 वही 1 2 12

49 वही 1 3 5

अविद्या अलग-अलग है। यही भिन्नता उनकी अनेकता का कारण है।[50]

शकराचार्य ने स्पष्टतया एक जीववाद मे नही, अनेक जीववाद मे विश्वास किया है। अनेक जीववाद का प्रतिपादन करते हुए उन्होने तर्क दिया है कि यदि जीव अनेक न हो तो अपने कर्मो के फलभोग की इच्छा रखने वाले जीवो और मुक्तिपरायण जीवो मे भेद असभव होगा।[51] इसके साथ ही शकराचार्य ने मन शारीरिक अवयव सस्थान को जीव की उपाधि माना है। इन उपाधियो की भिन्नता भी जीवो की अनेकता को सिद्ध करती है। पारमार्थिक दृष्टि से जीवत्त्व-भाव के न होने के कारण उनकी अनेकता का प्रश्न ही नही उठता है। जीव का अस्तित्व इद्रियानुभव मे है, जो व्यावहारिक सत्यता मे स्थित है। शकराचार्य के अनुसार जो व्यक्ति ईश्वर और जीव मे भेद मानता है और मानव योनि से निम्न और उच्च स्तर के प्राणियो के विभिन्न रूपो को मानता है वह अनेक जीववाद के सिद्धात मे अटूट विश्वास रखता है।

जीव और ब्रह्म के मध्य इद्रियानुभविक सबध की व्याख्या हेतु शकराचार्य के कुछ अनुयायियो ने विभिन्न बर्तनो मे भरे हुए पानी और सूर्य के प्रतिबिब का उदाहरण दिया है तो कुछ ने घडे मे आकाश का दृष्टात प्रस्तुत किया है। पहला मत प्रतिबिंबवाद है, जिसे विवरण प्रस्थान के अनुयायियो ने स्वीकार किया है। दूसरा मत अवच्छेदवाद है, जिसे भामती प्रस्थान के अनुयायियो ने मान्यता दी है। दोनो सिद्धातो के अनुसार, समस्त जीव अपने तात्त्विक स्वरूप मे एक शुद्ध चेतन तत्त्व है, फिर भी अपनी उपाधियो से सीमित होकर अलग दिखायी पड़ते है। जिसप्रकार शुद्ध या अशुद्ध जल सूर्य को प्रभावित न करके सूर्य के प्रतिबिब को ही प्रभावित करता है, उसीप्रकार अत करण के सद्‌गुणो या दुर्गुणो से केवल जीव ही प्रभावित होता है, शुद्ध चेतन आत्मा या ब्रह्म नही। जिसप्रकार एक ही विभु आकाश विभिन्न घडो मे सीमित होकर अलग अलग दिखायी देता है, उसीप्रकार एक ही परम चेतना विभिन्न अत करणो मे सीमित होकर विभिन्न जीवो के रूप मे प्रतीत होती है।[52]

---

50 पचदशी 1 16 17

51 न हि एकस्य मुमुक्षुत्व फलार्थित्व च युगपत सभवति।

गीता शाकर भाष्य 4 2

52 डॉ रामस्वरूप सिंह नौलखा आचार्य शकर ब्रह्मवाद पृष्ठ 160

वास्तव मे शकराचार्य ने किसी एक सिद्धात को स्वीकार न करके दोनो को अपने विचारो मे समाहित किया है। जब वे ब्रह्म और जीव के सबध की व्याख्या करते है तो प्रतिबिबवाद का सहारा लेकर जल मे सूर्य के प्रतिबिब का उदाहरण देते है।[53] लेकिन जब उसी तथ्य की व्याख्या करते हुए सर्वव्यापी का घडे आदि मे परिसीमित होने का उदाहरण देते है तो अवच्छेदवाद को स्वीकारते है।[54] इसका अर्थ यह नही है कि दोनो मे अभेद है। वस्तुत वृहदाकाश और घटाकाश के दृष्टात से जीव और ब्रह्म की तात्त्विक एकता स्पष्ट होती है और जल मे सूर्य-प्रतिबिब के उदाहरण से जीव की सासारिक प्रकृति, उसकी मुक्ति और ऐसे ही अन्य इद्रियानुभविक तथ्य स्पष्ट होते है।[55] कहा जा सकता है कि शकराचार्य ने एक निश्चित अभिप्राय से दोनो को स्वीकार किया है।

वेदात कहता है कि जीव का अत करण विशिष्ट शुद्ध चेतना है तथा अत करण की उपाधि से ही वह साक्षी कहलाता है अर्थात् जीवतत्त्व का विशेषण अत करण है तथा साक्षी की उपाधि अत करण है। विशेषण किसी वस्तु को अपने साथ मिलाकर उसे दूसरी वस्तु से भिन्न करता है जबकि उपाधि उस वस्तु को अपने साथ मिलाये बिना उसे दूसरी वस्तुओ से भिन्न करती है। जैसे घडे का रग या रूप उसके विशेषण है क्योकि ये विशेषताएँ उसका अग है जो उसे अन्य वस्तुओ से भिन्न करती है, किंतु श्रवण नली की दीवारे उसके भीतर घिरे आकाश को शेष आकाश से अलग करती है क्योकि वे आकाश से तादात्म्य किये बिना ही श्रवण नली के आकाश को शेष आकाश से भिन्न करती है।[56] अत साक्षी वह शुद्ध चेतना है जो जीव के विभिन्न अनुभवो का निरतर बोध रखते हुए भी उनसे भिन्न है और जीव उस चेतना और अत करण के बीच का तादात्म्य भाव है।

यद्यपि अपनी उपाधि अर्थात् अत करण के साथ तादात्म्य रखने पर साक्षी' ही जीव कहलाता है किंतु इन दोनो के भेद की उपेक्षा भी नही की जा सकती है। साक्षी' शब्द का अर्थ द्रष्टा या देखने वाला है। वह सभी वस्तुओ और अनुभवो का द्रष्टा है, किंतु उसे देखने

---

53 गीता शाकर भाष्य 15 7 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 2-3 50

54 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 1 5 1 2 7 1 2 20 1 3 7 2 1 13 2 1 14

55 वेदात परिभाषा पृष्ठ 41

56 वही पृष्ठ 46 47

वाला कोई नही है। वह समस्त ज्ञान का सतत द्रष्टा है, जिसे वस्तुगत रूप मे कभी नही जाना जा सकता है। वह स्वप्रकाशित भी है। प्रोफे हरियन्ना के अनुसार जीव तो आत्म-चेतना का विषय बन जाता है क्योकि उसमे वस्तुगत तत्त्व विद्यमान है। लेकिन साक्षी को ज्ञेय नही माना जा सकता। समस्त ज्ञान मे वह अभिज्ञा का शुद्ध तत्त्व है। उसे ज्ञेय मानने पर एक और ज्ञाता मानना पडेगा। इसप्रकार अनवस्था दोष होगा। यद्यपि इस कारण से साक्षी को अज्ञात भी नही कहा जा सकता है। स्वभावत स्वय प्रकाश स्वरूप होने से उसका ज्ञेय होना भी आवश्यक नही है। उसका अस्तित्व ही उसका ज्ञान है।[57] साक्षी न कर्ता है न भोक्ता है। वह शुद्ध आत्मा है। जबकि जीव इद्रियानुभविक अह है। वह कर्ता और भोक्ता दोनो है।

पाप और पुण्य तथा बधन और मुक्ति का सबध जीव से है, साक्षी से नही। इसीलिए शकराचार्य मुक्ति को एक ऐसा तथ्य मानते है जो जीव के लिए गुप्त रहस्य है। जब जीव को मुक्ति प्राप्त होती है तब साक्षी का साक्षीत्त्व समाप्त हो जाता है। जीव साक्षी और अत करण की मध्य स्वचेतना स्थापित करता है। एक ही आत्मा मे आत्मगत और वस्तुगत दोनो पक्ष विद्यमान रहते है।

शकराचार्य के अनुसार जीव अपने जीवत्त्व भाव मे न शुद्ध चेतना है, न मात्र अत करण है। शुद्ध चेतना तात्त्विक रूप तथा अत करण उसकी उपाधि है। जीव इन दोनो की एकता है। जिसप्रकार घडे के भीतर सीमित आकाश घडे के आकार का माना जाता है, उसीप्रकार जीव भी अत करण की उपाधि से अत करण के आकार का ही माना जाता है। अत करण बहुत छोटे आकार का है। अत जीव भी बहुत छोटे आकार का माना जाना चाहिए। शकराचार्य तर्क देते है कि जीवो को अनेक मानने पर उन सभी को विभु नही कहा जा सकता है। आवागमन के चक्र मे पड़ने वाला जीव अवश्य सीमित आकार का होता है। उनका यह भी मानना है कि व्यावहारिक दृष्टि से जीव अणु रूप है तथा पारमार्थिक दृष्टि से विभु है। ऋषि का कहना है कि एक बाल के अग्रभाग को सौ भागो मे विभाजित करो और फिर उनमे से एक भाग को पुन सौ भागो मे विभाजित करो। इसप्रकार जो भाग प्राप्त होगा,

---

57 प्रोफे एम हरियन्ना आउटलाइस ऑफ इडियन फिलासफी पृष्ठ 343

जीव को उसी के आकार का समझना चाहिए। यह जीव असीम भी है।[58] इसके भाष्य पर शकराचार्य ने भी इसे स्वीकार किया। इसके साथ ही वे मानते है कि लिगदेह अत्यत सूक्ष्म है इसलिए उसके परिमाण के अनुसार ही इसका परिमाण बताया जाता है। स्पष्ट है कि शकराचार्य जीव को जीव रूप मे छोटे आकार का मानते है लेकिन उसे अपने वास्तविक रूप मे अनत भी कहते है।[59]

(v) मायिक जगत का स्वरूप

शकराचार्य ने जीव के साथ ही मायिक जगत की भी अलकारिक व्यवस्थित तथा पूर्ण व्याख्या की है। उनके अनुसार, जगत एक महार्णव है। यह अविद्या, कामना और कर्म से उत्पन्न हुए दुखरूपी जल तथा रोग जरा और मृत्युरूपी महाग्राहो से भरा है। यह अनादि, अनत, अपार एव निरालब है। विषय और इद्रियो के सयोग से होने वाला अणुमात्र सुख ही इसकी क्षणिक विश्राति का स्वरूप है। इसमे पॉचो इद्रियो की विषय तृष्णारूपी पवन के विक्षोभ से उठी हुई अनर्थरूप सैकडो उत्ताल तरगे है। इसमे महारौरव आदि अनेक नरको के हा हा आदि क्रदन कोलाहल है। इसमे सत्य, सरलता, दान, दया, अहिंसा आदि जीव के गुप्त रूप पाथेय से भरी ज्ञानरूपी नौका है। सत्सग सर्वत्याग ही इसमे नौकाओ के आने-जाने के मार्ग है तथा मोक्ष ही इसका तट है। [60]

यह अलकारिक वर्णन पूर्ण न होकर भी जगत के विशिष्ट लक्षणो का सुदर परिचय देने वाला है। वस्तुत ससार के दो पक्ष – आत्मगत और वस्तुगत है। आत्मगत पक्ष मे मानसिक क्रियाएँ दशाएँ ज्ञान अनुभूति इच्छा या सकल्प आदि है। वस्तुगत पक्ष मे समस्त वस्तु स्वरूप रखे जा सकते है। शकराचार्य ने जीव की भॉति ही जगत की भी ब्रह्म से पृथक सत्ता स्वीकार नही की है। उनके अनुसार, यह सपूर्ण जगत और सासारिक प्रपच माया, धोखा और असत्य है। समस्त चेतन जीव, नदी, पाताल तथा अजीब द्रव्य आदि माया के

---

58 श्वेताश्वतर शाकर भाष्य 5 9

59 वही 5 9

60 ऐतरेय शाकर भाष्य

ही विभिन्न रूप है। जादूगर के प्रदर्शन के समान ही यह जगत मायावी ईश्वर का खेल है। वास्तव मे यह जगत भ्रम है। पिता माता काया, जाया, उपकार, अपकार, निदाघ की तेज धूप, भूख सब माया है।

प्रश्न उठता है कि यदि सब कुछ माया या भ्रम है, तो इसका अनुभव किसप्रकार सभव होता है? भ्रम की समस्या का निदान करते हुए शकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र भाष्य के प्रारभ मे ही इसका तार्किक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उनका मानना है कि समस्त लोकव्यवहार दो तत्त्वो के तादात्म्य पर निर्भर है – पहला शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मतत्त्व है, जो विषयी ज्ञाता चेतन और नित्य है। दूसरा तत्त्व विषय या ज्ञेय पदार्थ है, जो जड एव अनित्य है। विषयी आत्मा और विषयरूपी अनात्मा जो प्रकाश और अधकार के समान परस्पर अत्यत विरोधी है, जिनमे आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप, अपरिणामी ज्ञाता और नित्य है तथा अनात्मा विषय ज्ञेय, परिणामी जड़ पदार्थ और अनित्य है, के असभव मिलन को सभव करने की शक्ति का नाम माया या अविद्या है। यह मिलन वास्तविक नही है। ऐसे मे उनके मिलन की प्रतीति और तज्जन्य लोकव्यवहार का मिथ्या होना निश्चित है।[61] इस मिथ्या सबध को प्रतीति कराने वाली माया है। वह विराट समष्टि की भ्राति है। वह समस्त विश्व की जननी है तथा ससार चक्र को चला रही है। अत सत् आत्मा और असत् अनात्मा का एक-दूसरे पर आरोप, एक के धर्मो का दूसरे के धर्मो पर आरोप, व्यवहार मे स्वाभाविक है, क्योकि समस्त लोक व्यवहार इसी अनादि मिथ्या ज्ञान पर, इस सत् और असत् के मिलन पर आश्रित है।[62]

शकराचार्य का मत है कि व्यवहार मे शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा, जो असग और अविषय है, का अह प्रत्यय के विषय होने के लिए विषय रूप न होकर भी स्वय पर अनात्मा का अध्यास करने के लिए, स्वप्रकाश साक्षिचैतन्य ही अविद्या के कारण जीव या

---

61 विषयिणि चिदात्मके विषयस्य तदधर्माणाचाध्यास विषयिणस्तद धर्माणा च विषयेऽध्यासो भवितु युक्तम ।

ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य, उपोदघात

62 अत्यतविविक्तयो धर्मधर्मिणो मिथ्याज्ञाननिमित्त सत्यानृते मिथुनीकृत्य अहमिदम ममेदम' इति नैसर्गिकोऽय लोकव्यवहार ।

वही

प्रमाता के रूप मे भासित होता है। अध्यास के लिए यह आवश्यक नही है कि अधिष्ठान विषय के रूप मे प्रत्यक्ष हो। अप्रत्यक्ष आकाश पर अज्ञानी ही तलमलिनता का अध्यास मानते है। यह अध्यास ही ब्रह्म से सपूर्ण व्यावहारिक जगत की भ्रमपूर्ण सृष्टि करता है। इसीलिए शकराचार्य ने जगत के सबध मे कार्यकारण सिद्धात के सत्कार्यवाद को स्वीकारते हुए परिणामवाद के स्थान पर विवर्तवाद की धारणा को रखा है। जहॉ परिणामवादियो का मानना है कि दूध से दही के निर्माण मे दही एक नयी उपलब्धि है। मृत्तिका से घट का निर्माण होने मे घट मृत्तिका की अपेक्षा एक नवीन उपलब्धि है। वही शकराचार्य ने इसके विपरीत कहा है कि दूध का ही एक दूसरा रूप दही है। दही दूध के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही है। इसीप्रकार घट भी मृत्तिका से पृथक कोई अन्य वस्तु नही है उसी का एक विशेष रूप है। शकराचार्य ने ब्रह्म और जगत के सबध को स्पष्ट करते हुए कहा है कि ब्रह्म के अतिरिक्त जगत और कुछ भी नही है। वह उसी मे अवस्थित है। जब तक ब्रह्म का ज्ञान नही होता है तभी तक जगत की सत्ता विद्यमान रहती है। उसके ज्ञान के साथ ही जगत के अध्यास का अत हो जाता है।

जगत के कारण रूप मे शकराचार्य ने एकमात्र ब्रह्म को ही स्वीकार किया है। कारण की दृष्टि से ब्रह्म जगत का निमित्त तथा उपादान दोनो ही है। यहॉ पर शकराचार्य का मत साख्य के मत से कुछ अलग है। साख्य के अनुसार जगत का उपादान कारण प्रकृति है तथा निमित्त कारण पुरुष है। जबकि शकराचार्य का मानना है कि प्रकृति की भिन्न सत्ता स्वीकार करने से श्रुतियो का खण्डन हो जाता है तथा ब्रह्म की अद्वितीय सत्ता समाप्त हो जाती है। यद्यपि व्यावहारिक जगत मे उपादान निमित्त कारण से पृथक प्रतीत होता है लेकिन ब्रह्म के सबध मे यह विचार अतार्किक लगता है। ब्रह्म अद्वितीय और सर्वसामर्थ्यवाद है, इसीलिए वह जगत का उपादान कारण है।[63] ब्रह्म ही ईश्वर का रूप धारण करके जगत का स्रष्टा और नियता भी है। लौकिक व्यवहार मे वस्तु की उत्पत्ति, स्थिति तथा विलीनता सभी ब्रह्म मे निहित है, यह ब्रह्म की अखण्डता का प्रमाण है।

---

63 तस्मादधिष्ठात्रतरा भावादात्मन
कर्तृत्वमुपादानातरामावच्च प्रकृतित्वम् ।

ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य, 1 4 23

शकराचार्य के दर्शन के विपरीत साख्य ने चेतनता के कारण ब्रह्म को उपादान कारण नही माना है।[64] इसके विपरीत शकराचार्य का मानना है कि सामान्यतया चेतन मानव मे अचेतन नाखून और बाल की उत्पत्ति होती है। इसीप्रकार ब्रह्म और जगत मे भी समानता की स्थिति है। यह समानता सत्ता की है। शकराचार्य यह कहते है कि जगत का प्रलय काल मे ब्रह्म मे विलय हो जाना, उसे दूषित अथवा विकारयुक्त नही करता। क्योकि कार्य की सत्ता मात्र अज्ञानता के कारण ही है। ब्रह्म व्यावहारिक जगत की रचना अवश्य करता है किंतु स्वय उससे, उसके विकारो से प्रभावित नही होता है। यह विकार भ्रम मात्र ही होते है। जैसे कि जादूगर अपने भ्रमपूर्ण जादू से स्वय अप्रभावित रहता है।[65]

शकराचार्य यह कहते है कि विभिन्नता से परिपूरित जगत का समस्त भेदो से रहित ब्रह्म मे प्रलय काल मे विलीन हो जाने अथवा उद्भूत होने की पुष्टि श्रुतियो के द्वारा होती है। निद्रावस्था और सुषुप्तावस्था मे इसकी सिद्धि हो जाती है जब आत्मा अपनी मूल अवस्था मे विभिन्नतारहित दशा मे पहुॅचती है। अज्ञानता पर पूर्ण नियत्रण न होने के कारण ही जाग्रत अवस्था मे आने पर पुन विभिन्नतापूर्ण स्थिति प्रगट हो जाती है। ऐसे ही प्रलयावस्था मे भी जगत की विभिन्नताएॅ स्वप्नावस्था के समान ब्रह्म मे विलीन हो जाती है, किंतु अज्ञान के पूरी तरह नष्ट होने से विभिन्नता की स्थिति बनी रहती है।[66] शकराचार्य तर्क देते है कि प्रलय अवस्था मे जगत ब्रह्म मे विलीन हो जाता है लेकिन अज्ञान के नष्ट हो जाने से जीवो की

---

64 इत्येव प्रकृतिवृत्तौ महदादिविशेषभूतपर्यत।

साख्यकारिका 56

65 अत्रोक्त वेदातार्थ सप्रदायविदभि शकराचार्य अनादि माययासुप्तो यदा जीव प्रबुध्यते। अजमनिद्रमस्वप्नमदवैतम बध्यतेतदा।।

माण्डूक्योपनिषद गौडपाद कारिका 1 1

66 इमा सर्वा प्रज्ञा सतिसपदय न विदु सति सपदयाम इति त इह व्याप्ये वा सिंहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतगो वा दशो वा मशको वा यद यद भवति तदाभवति।

छादोग्यउपनिषद शाकर भाष्य, 6 9 23

अपनी विभिन्नताएँ बनी रहती है और इसीलिए सृष्टि के आरभ मे वे पुन उसीप्रकार उत्पन्न होते है।[67]

समस्त जगत मे व्याप्त विभिन्नता को दिखाने के लिए ब्रह्म माया के माध्यम से अध्यास का सहारा लेते है। यह अविद्या ही है जो आत्मा तथा अनात्मा के विवेक का हरण करती है। इस अविद्या के कारण ही जीव अपने आत्मस्वरूप को भूल कर अनात्मपदार्थो तथा अनात्मधर्मो को स्वय पर आरोपित कर लेता है। अध्यास मिथ्याज्ञान या अन्यथाज्ञान है। यह असत् का सत् पर आरोप है। यह सत् और असत् का सत्य तथा असत्य का सयोग है। अध्यास मुख्यत स्मृतिरूप और पूर्वदृष्टावभास है। यहॉ असत् सत रूप मे प्रतीत होता है तथा बाद मे अधिष्ठान के ज्ञान के साथ ही बाधित भी हो जाता है। अद्वैत वेदात मे इसे सदसदनिर्वचनीय या मिथ्या कहा गया है। इसी अध्यास या भ्रम की अवस्थाओ के आधार पर शकराचार्य ने जगत के तीन स्तरो का उल्लेख किया है। व्यक्तिगत भ्रम मे रज्जुसर्पादिक पदार्थ प्रतिभास कहलाता है। समष्टि भ्रम के लौकिक पदार्थ व्यवहार के अतर्गत आते है। दोनो ही सदसदनिर्वचनीय होने के कारण मायिक और मिथ्या है। अध्यास के त्रिविध रूपो को स्वामी विद्यारण्य ने पचदशी नामक ग्रथ मे विस्तारपूर्वक बताते हुए कहा है कि माया तीन रूपो मे प्रतीत होती है। वास्तव अनिर्वचनीय और तुच्छ। ये तीनो रूप क्रमश लौकिक, यौक्तिक और श्रौत तीन प्रकार के बोधो से जाने जाते है। लौकिक ज्ञान की दृष्टि से माया वास्तविक प्रतीत होती है तथा उससे समस्त लौकिक व्यवहार सपन्न होते है। यौक्तिक ज्ञान अर्थात् दार्शनिक विश्लेषण की दृष्टि से माया, व्यवहार और प्रतिभास दोनो रूपो मे सद्सदनिर्वचनीय या मिथ्या है। श्रौत ज्ञान अर्थात् श्रुतिगम्य अपरोक्षानुभव या ब्रह्मज्ञान से माया की आत्यतिक निवृत्ति होने पर उसकी असत्ता या तुच्छता का बोध होता है।

अद्वैत वेदात के अनुसार जिसका त्रिकाल मे बोध न हो सके, वह सत् है। अर्थात् सत् वह है जो कूटस्थ, नित्य और सदा एकरस एव अपरिणामी हो। यह विशेषताएँ सिर्फ

---

67 यथाद्वयविभागेऽपि परमात्मनि मिथ्याज्ञान प्रतिवदधो विभागव्यवहार स्वप्नवदव्याहृत स्थितो दृश्यते एवम पीतावपि मिथ्या ज्ञानप्रतिबदधैव विभाग शक्तिरनुमाप्यते।

ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 2 1 9

ब्रह्म मे ही है। जिसकी त्रिकाल मे कोई सत्ता न हो वह असत् है, जैसे वध्यापुत्र आदि। वेदात मे सत् तथा असत् का आत्यतिक अर्थ मे प्रयोग किया गया है। परतु समस्त लौकिक अनुभव की वस्तुएँ न तो सत् है और न ही असत् है। सत् ब्रह्म मानव के लौकिक व्यवहार से ऊपर है तथा असत् या तुच्छ वध्यापुत्र लौकिक अनुभव के नीचे। अत मानव के लौकिक अनुभव का क्षेत्र सदसदनिर्वचनीय या मिथ्या पदार्थो तक ही फैला है। जो भी पदार्थ है, वह ज्ञेय, दृश्य परिच्छिन्न तथा अचित् होने के कारण सदसदनिर्वचनीय है, मिथ्या है। जो मिथ्या है, वह अविद्या, माया या भ्रम है। माया द्वारा जगत मे तीन प्रकार की सत्ता के स्तर प्राप्त होते है। पहला प्रतिभासिक सत्ता का स्तर है, जिसमे प्रतीतिकाल मे भासित सत्य उत्तर काल मे बाधित हो जाता है, जैसे रस्सी मे सर्प का आभास। दूसरा व्यावहारिक सत्ता का स्तर है जिसमे व्यवहार के लिए ससार के समस्त पदार्थो की सत्ता विद्यमान रहती है। इन नानारूपात्मक वस्तुओ की सत्ता सासारिक व्यवहार के लिए अत्यत आवश्यक है, किंतु ब्रह्मज्ञान के द्वारा यह बाधित हो जाता है। अत यह नितात सत्य नही है। तीसरा स्तर पारमार्थिक सत्ता का है जिसमे सपूर्ण सासारिक पदार्थो से विलक्षण तथा त्रिकाल मे बाधित न होने के कारण एकातिक सत्य है। यह ब्रह्म है।

इसप्रकार प्रतिभास के अतर्गत समस्त व्यक्तिगत भ्रम और स्वप्नादि आते है, जबकि व्यवहार मे समस्त जगत प्रपच और लोक व्यवहार समाहित रहता है। प्रतिभास व्यक्तिगत भ्रम और स्वप्न है जिसकी प्रतीति जीव को मात्र व्यक्तिगत स्तर पर ही होती है। इसका बोध लौकिक स्तर के ज्ञान द्वारा सभव है। सव्यवहार मे समष्टि का भ्रम रहता है। इसकी प्रतीति जीव को भ्रमपूर्ण भी नही लगती है और न ही इसका बोध व्यावहारिक स्तर पर सभव है। शकराचार्य के अनुसार, व्यक्तिगत भ्रम समष्टि के भ्रम का एक अग मात्र है, जो उस पर आश्रित होने के साथ ही साथ उसकी ओर सकेत भी करता है। व्यक्तिगत भ्रम के रज्जु-सर्प आदि पदार्थो मे तथा समष्टिगत भ्रम के लौकिक पदार्थो मे भ्रम के रूप मे कोई मौलिक अतर नही है। दोनो मे ही अधिष्ठान-अध्यस्त-अध्यास की त्रिपुटी रहती है जो अपने स्तर पर सत्य प्रतीत होती है लेकिन उच्च स्तर के ज्ञान द्वारा बाधित होती है। शकराचार्य ने माना है कि व्यवहार के स्तर पर जगत का निषेध असभव है तथा परमार्थ विधि-निषेध से परे है। उन्होने अध्यास, अविद्या या माया का विशद एव विस्तृत वर्णन करके, समस्त अनर्थो के मूल कारण की खोज करके तथा उसके प्रहाण से अखण्ड,

आनदस्वरूप आत्मतत्त्व ब्रह्म की प्राप्ति कराना और उसी की एकमात्र यथार्थ सत्ता को स्थापित करना अपने दर्शन का मुख्य लक्ष्य बनाया था।

शकराचार्य यथार्थसत्ता का मात्र विश्लेषण करके ही नही रह जाते हैं अपितु अपने सैद्धातिक दृष्टिकोण द्वारा व्यावहारिक दृश्य जगत का परीक्षण भी करते है। अपूर्ण विचारो मे समाहित सत्य के विषय मे नियमो का निर्धारण करते है। सत्य के निकट पहुँचने के साथ ही नानाविध दृश्यमान व्यापारो मे एक क्रमबद्ध व्यवस्था का विवेचन करते है। उनकी स्थापना है कि यथार्थसत्ता का आधार होने के कारण प्रत्येक दृश्यमान वस्तु उसके स्वरूप को अभिव्यक्त करती है। अक्षय ब्रह्म समस्त ससार के मूल मे विद्यमान है, इसीलिए निरतर उन्नत से उन्नत प्रकार की अभिव्यक्तियॉ अपने को प्रगट करती है।[68] जिसप्रकार प्राणधारियो की शृखला मे ऊपर मनुष्य से लेकर नीचे घास की पत्ती तक मे ज्ञान तथा शक्ति आदि गुण क्रमश कम होते देखे जा सकते है उसीप्रकार ऊपर की श्रेणी मे भी नीचे की ओर मनुष्य से लेकर ऊपर हिरण्यगर्भ की ओर क्रमश ज्ञान और शक्ति आदि की बढती हुई अभिव्यक्ति देखी जाती है।[69] साधारणतया व्यावहारिक जगत मे इसप्रकार के भेद मिल सकते है – प्रथम ईश्वर जो कर्मो के फल का प्रदाता है। द्वितीय, प्रकृति का विस्तार जहॉ नामरूपात्मक प्रपचयुक्त जगत है, जो कर्मफल का मुख्य रगमच है। तृतीय, जीवात्माओ का अनेकत्त्व, जो व्यक्तित्त्व के प्रतिबधो मे विभक्त होने के साथ ही प्रत्येक नये जन्म मे पिछले जन्म के कर्म को भोगता है।

इसप्रकार शकराचार्य ने जगत के अनेकत्त्व को दो अवयवो से उत्पन्न माना है – पूर्व कर्मो के फलो का उपभोक्ता होने से तथा भोग्य विषयो से। इनमे से पहला इस जगत रूपी नाट्यशाला मे नाटक का पात्र है और दूसरा रगमच है। इस सपूर्ण भौतिक जगत की सज्ञा

---

68 यद्यप्येक एव आत्मा सर्वभूतेषु स्थावरजगमेषु गूढस्तथापि चित्तोपाधि विशेषतारतम्याद आत्मन कूटस्थनित्यस्यैकरूपस्या दुत्तरोत्तरम आविष्टस्य तारतम्यम ऐश्वर्यशक्तिविशेषै श्रूयते।

शाकर भाष्य 1 1 11

69 यथा हि प्राणित्वाविशेषऽपि मनुष्यादस्तिम्बपर्यन्तेषु ज्ञानैश्वर्यादिप्रतिबधा परेण परेण भूयान भवन दृश्यते तथा मनुष्यादिष्वेव हिरण्यगर्भपर्यन्तेषु ज्ञानैश्वर्याभिव्यक्तिरपि परेण परेण भूयसी भवति।

ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 3 30

क्षेत्र है क्योकि यह एक ऐसा वायुमण्डल है जहाँ जीवात्माएँ कर्म कर सकती है, अपनी कामनाओ की पूर्ति कर सकती है तथा अपने पूर्वकर्मो के फलो का भी उपभोग कर सकती है।[70] यह जड (अगहीन) प्रकृति है जिसमे पचतत्त्व है। ऐद्रिक प्रकृति मे शरीर आते है, जिनके भीतर आत्माएँ, जो तत्त्वो मे समाविष्ट होकर वनस्पति पशु जगत मनुष्य तथा देवता आदि योनियो मे भ्रमण करती तथा निवास करती है।[71] शकराचार्य का मानना है कि इस सपूर्ण ससार रूपी जगत मे नानाविध प्राणियो के सघ है, उनके जीवन के भी नानाविध प्रकार और भिन्न भिन्न लोक है। इसके द्वारा प्रत्येक प्राणी अपने अनुभवो के अनुकूल होता है। इन प्राणियो की एक श्रेणीबद्ध परपरा मिलती है जिसमे निम्नतम श्रेणी मे उन प्राणियो को रखा जाता है जो पूर्वजन्म के कर्मानुभव के कारण अत्यत सीमित है और उन्नत श्रेणी देवताओ की है जो अतीद्रिय लोक के निवासी होते है।[72]

शकराचार्य विश्व के सपूर्ण विकास को एक विशेष व्यवस्था के अनुसार सचालित मानते है।[73] प्रकृति से विभिन्न अनात्म पदार्थनिष्ठ तत्त्वो मे सर्वप्रथम आकाश की उत्पत्ति होती है। यह आकाश देश तथा प्रकृति का पूर्ववर्ती है। सपूर्ण जगत ईश्वर से ही निकला है, जिसमे आकाश सबसे पहले उत्पन्न हुआ उसके बाद अन्य तत्त्व एक-दूसरे के बाद उचित क्रम मे आये।[74] आकाश जो एक अनत लघु, सूक्ष्म क्रियारहित तथा सर्वव्यापक है, सर्वप्रथम उत्पन्न तत्त्व है।[75] इसका प्रयोग मुख्यत दो अर्थो मे होता है – देश तथा एक अत्यधिक सूक्ष्म प्रकृति अर्थ मे जिसने सपूर्ण विश्व को व्याप्त कर रखा है। आकाश सूक्ष्म होते हुए भी वायु अग्नि जल तथा पृथ्वी की श्रेणी मे आता है। यहॉ शकराचार्य बौद्ध मत

---

70 फलोपभोगार्थम सर्वप्राणिकर्मफलाश्रय।
मुण्डकोपनिषद शाकर भाष्य 3 1 1

71 वैदिक देवता भी विश्व प्रक्रिया मे आते है।
ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 2 7 1 3 33

72 वृहदारण्यक उपनिषद शाकर भाष्य 14 10

73 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 2 1 24 25

74 वही 2 3 7

75 वही 1 1 22 1 3 41

के विपरीत कहते है कि आकाश अभावात्मक है मात्र बाधाओ के अभाव का नाम है।[76]

शकराचार्य ने माना है कि आकाश से अन्य सूक्ष्म भूत ऊपर उठते क्रम मे उत्पन्न होते है।[77] उपनिषदो के सदर्भ से[78] उन्होने बताया कि आकाश से वायु उत्पन्न होती है वायु से अग्नि अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी। यह पॉचो तत्त्व अपेक्षाकृत अपने परिवर्तित रूपो मे स्थायी है उन्हे आलकारिक भाषा मे अमर तथा अविनश्वर कहते है। आकाश का शब्द वायु का सघात व दबाव, अग्नि का प्रकाश की उज्वलता व उष्णता जल का स्वाद व रस तथा पृथ्वी का गुण गध है। तत्त्व तथा गुण मे पौधे और बीज की समानता है। शब्द-तन्मात्रा अथवा शब्द का सार तत्त्व आकाश को जन्म देती है जो अपनी ओर से शब्द के बाह्य रूप को उत्पन्न करती है। तन्मात्रा या सारतत्त्व मे तत्त्व तथा उसका गुण दोनो ही समाहित होते है। तत्त्वो मे श्रेणीबद्ध परपरा है, जो आकाश तन्मात्रा मे समाहित रहती है। समस्त जगत आकाश या शब्द से उत्पन्न होता है।[79]

स्थूल प्रकृति से निर्मित जगत अर्थात् महाभूत इन्ही विभिन्न सूक्ष्म भूतो के सघात रूपो से उत्पन्न होते है।[80] आकाशरूप स्थूल द्रव्य शब्द को वायु शब्द व दबाव को, अग्नि इन दोनो के साथ प्रकाश व उष्णता को, जल इन गुणो के अतिरिक्त रस को तथा पृथ्वी अन्य द्रव्यो के गुणो के अतिरिक्त गध को अभिव्यक्त करती है। प्रत्येक पदार्थ मे शब्द, स्पर्श रूप रस तथा गध के गुण विद्यमान रहते है। यहाँ एक ओर निरतर व सजातीय रहने वाले प्रकृति के सूक्ष्म मूल तत्त्व आकार है, जिनकी रचनावृत्ति मे पारमाण्विकता नही है वही दूसरी ओर स्थूल द्रव्य मिश्रित द्रव्य है, उन्हे भी निरतर स्थायी तथा पारमाण्विक

---

76 आवरण भाव शाकर भाष्य 2 2 22

77 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य, 2 3 8 13

78 तैत्तिरीय उपनिषद 2 1 छादोग्य उपनिषद 6 2 2 3

79 डॉ राधाकृष्णन भारतीय दर्शन भाग 2 पृष्ठ 516

80 प्रत्येक स्थूल पदार्थ पॉच सूक्ष्म तत्त्वो से बना है। यह विभिन्न अनुपातो मे मिश्रित होता है। पॉंच सूक्ष्म तत्त्वो को जगत के स्थूल द्रव्यो मे सयुक्त करने को पचीकरण कहते है। शकराचार्य ने इसे पचीकरण नाम से उल्लिखित नही किया है। वे वेदातसार के त्रिवृत्तकरण के विचार को मानते है अर्थात तीन तत्त्वो का सयुक्त रूप। यही वाचस्पति ने भी माना है।

रचना से विहीन माना गया। स्थूल तत्त्वो के परिवर्तनो द्वारा भिन्न-भिन्न वस्तुओ की उत्पत्ति होती है। प्रकृति अवस्था के परिवर्तनो से हमेशा गुजरती रहती है। शकराचार्य ने समस्त विश्वात्मक स्पदन की एकात्मकता का कारण ईश्वर को माना है।

शकराचार्य ने यह स्वीकार किया कि प्रलय की स्थिति मे सृष्टिरचना की व्यवस्था सर्वथा विपरीत दिशा मे होती है।[81] अर्थात् प्रलय मे पृथ्वी पुन जल मे जल अग्नि मे अग्नि वायु मे वायु आकाश मे तथा आकाश पुन ईश्वर के रूप मे परिणत हो जाता है। शकराचार्य ने मन को भौतिक तत्त्वो के स्वभाव के अनुरूप ही माना है। मानव देह का सगठन अन्य वस्तुओ के समान ही पृथ्वी जल तथा अग्नि इन तीन तत्त्वो के सामजस्य से हुआ है।[82] मन या अत करण प्राण या जीवनप्रद वायु तथा वाणी क्रमश पृथ्वी, जल तथा अग्नि की अनुकूलता मे है।[83] उनके अनुसार इद्रियविहीन प्रकृति परार्थ है। वह एक ऐसे प्रयोजन को सिद्ध करती है, जो इससे परे है।[84] इद्रियविहीन जगत मे स्वभाव की समानता है।[85]

जब मानव ऐद्रिय प्रकृति मे आता है, तो उसे नया नियम मिलता है, जीवन की एक ऐसी शक्ति जो कुछेक वस्तुओ मे अतर्निहित है। यह शक्ति महत्तर पूर्णता को प्राप्त करने मे योगदान देती है। एक पत्थर मे जीवन नही है, क्योकि वह पूर्णता को प्राप्त करने मे प्रवृत्त नही है। एक पौधे मे जीवन अवश्य है क्योकि अनुकूल अवस्थाओ मे उसके भीतर पुष्पित-पल्लवित होने की शक्ति मौजूद है। पशुओ मे पौधो से अधिक पूर्णता प्राप्ति की शक्ति है, क्योकि उनके भीतर देखने सुनने तथा जानने की शक्ति मौजूद है। मनुष्यरूप प्राणी इनसे अधिक उच्च जीवन व्यतीत करता है। इसलिए कि उसमे चिंतन शक्ति है, उसमे पौधो के समान बढने, पशुओ के समान गति करने तथा इद्रियो के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने की

---

81 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 2 3 141

82 छादोग्य उपनिषद 6 2 2 3

83 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 2 4 20 3 1 2

84 गीता शाकर भाष्य 13 22

85 तैत्तिरीय उपनिषद शाकर भाष्य 2 8

शक्ति है। इन सबसे बढकर आवरण के पीछे देखने की शक्ति है। नित्य-अनित्य के भेद तथा पाप और पुण्य को पहचानने की ताकत है। जो मनुष्य अपनी महत्त्वाकाक्षाओ की प्राप्ति कर लेते है, उन्हे देवता कहते है। अत एद्रिक जगत मे प्राणियो के चार भाग हैं - देवता, मनुष्य पशु तथा पौधे।[86] शकराचार्य का मानना है कि जीवात्माओ का निकास ब्रह्म से उसी प्रकार होता है जैसे अग्नि से स्फुलिग निकलते है। भेद मात्र इतना है कि जीवात्मा पुन ब्रह्म मे समा जाती है किंतु स्फुलिग अग्नि मे वापस नही लौटते।[87]

इसप्रकार शकराचार्य के सपूर्ण दर्शन का केन्द्र ब्रह्म है जो ईश्वर का रूप धारण करके जीव तथा नानारूपात्मक जगत की सरचना करता है। माया वह जादू है जिसके माध्यम से ब्रह्म जादूगर की भूमिका अपने व्यक्तित्व को प्रभावित किये बिना पूरी करता है। माया वह माध्यम है जो समस्त तत्त्वमीमासीय तत्त्वो की प्रदाता है। समस्त जगत की भ्रमात्मकता को उत्पन्न करने वाली शक्ति माया है।

ब श्रीअरविद द्वारा माया की तत्त्वमीमासीय व्याख्या

श्रीअरविद समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए उपनिषदो पर अपने दर्शन को आधारित करते है। उन्होने वेदात तथा उसके समकालीन अन्य विचारधाराओ की समीक्षा की है। पाश्चात्य तथा भारतीय दार्शनिक पद्धतियो पर अपना मत स्पष्ट करते हुए शकराचार्य के अद्वैत वेदात पर उन्होने मुख्यत ध्यान केद्रित किया। श्रीअरविद का विचार है कि शकराचार्य द्वारा निर्गुण ब्रह्म की सत्ता को एक तथा अखण्ड मानना सही है, किंतु आत्मस्वरूप की अवस्थिति तथा सासारिक क्लेशो की अनुभूति भी होती है। शकराचार्य ने अद्वैत वेदात मे इन कमियो पर ध्यान नही दिया है। यदि निर्गुण ब्रह्म और व्यावहारिक जगत के मध्य सबधो की विवेचना की जाय तो बहुत सारे प्रश्नो के उत्तर बुद्धिगम्य प्रतीत नही होते। श्रीअरविद निर्गुण ब्रह्म द्वारा सगुण ससार की उत्पत्ति, निर्गुण, निर्विकार ब्रह्म और जड चेतन जगत के मध्य सबधो के विषय मे शकराचार्य द्वारा दिये गये तर्कों से सहमत

---

86 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 3 1 24

87 वही 3 1 20 21

नही है। शकराचार्य ने एकमात्र सत् ब्रह्म की सत्ता को स्थापित करने मे जगत को मिथ्या कहा माया को ब्रह्म की अनिर्वचनीय शक्ति मानकर, उसी के द्वारा जगत का सृजन होना बताया है। श्रीअरविद इन विचारो से सहमत नही है। उन्होने इसके प्रतिकूल अपने दर्शन की रूपरेखा तैयार की है।

(1) पारमार्थिक सत् की तार्किक अभिव्यक्ति

श्रीअरविद ने परमतत्त्व सच्चिदानद को स्वीकारा है। सच्चिदानद स्वय त्रयात्मक तत्त्व है अर्थात् सत्, चित् और आनद स्वरूप है। यह एक और अद्वितीय तत्त्व है। यह नित्य शुद्ध पूर्ण तथा अनिर्वचनीय है। श्रीअरविद की दृष्टि मे सच्चिदानद ब्रह्म अवश्य है, किंतु वह शकराचार्य के ब्रह्म से भिन्न है। उन्होने जगत को सत्य माना है और कहा है कि जगत ब्रह्म से अभिन्न है। वह भाव तथा अभाव से परे है। जगत मे चारो ओर उसी परमतत्त्व का प्रकाश है। वही एक और अद्वितीय है। सपूर्ण विश्व मे सभी तत्त्व उसके अशमात्र है। प्रत्येक जीव नाम-रूप की सीमा मे उसी सच्चिदानद का आत्म प्रकाशन है।

सच्चिदानद सगुण निर्गुण, वैयक्तिक-निर्वैयक्तिक पूर्ण तथा विकासशील है। वह सत्-असत्, सत्ता-सभूति दोनो है। वह स्वय को चराचर विश्व मे अभिव्यक्त करने के कारण सगुण, वैयक्तिक, असत् विकसनशील तथा सभूति है। किंतु स्वरूपत वह निर्गुण निर्वैयक्तिक, सत्, पूर्ण है। वह इन सबसे परे शुद्ध सत् है।

श्रीअरविद का सच्चिदानद न तो ईश्वरवादियो का भगवान है, जो अपनी इच्छामात्र से या माया की विचित्र शक्ति से जगत की रचना करता है। न ही वह शकराचार्य का ब्रह्म है जिसके समक्ष यह जगत अध्यास मात्र बन जाता है। श्रीअरविद के दर्शन मे परमतत्त्व स्वय की शक्ति अतिमानस के कारण ससारमय बनता है, अर्थात् स्वय को अपनी शक्ति द्वारा अनेकतामय ससार मे अभिव्यक्त करता है। यह तत्त्व जगत की प्रत्येक वस्तु मे चैतन्य और नियत्रक के रूप मे विराजमान रहता है।

परमतत्त्व स्वय अनेकतामय ससार मे परिवर्तित नही होता, क्योकि वह विश्वातीत है। वह वास्तव मे, अतिमानस तत्त्व द्वारा जगत की सृष्टि करता है जो तात्त्विक दृष्टि से परमतत्त्व ही है। यह परमतत्त्व के प्राथमिक अवस्थान से निर्गमित होता है। यह सपूर्ण सृष्टि

मनमानी न होकर अपनी सत्यता के लिए परमतत्त्व मे निहित है। परमतत्त्व के समवाय चित् और आनद सभूति के रूप मे अतिमानस मे विद्यमान है। परमतत्त्व सच्चिदानद सृष्टि के साथ अतिमानस के त्रयसूत्र से युक्त है – ब्रह्म सभी वस्तुओ मे है, सभी वस्तुएँ ब्रह्म मे है और सभी वस्तुएँ ब्रह्म है। श्रीअरविंद का मानना है कि पूर्ण तथा असीमित पारमार्थिक सत् बुद्धि के परे है, इससे उसकी अभिव्यक्ति मानवबुद्धि द्वारा करना असभव है। इसके बावजूद वह पारमार्थिक सत् व्यावहारिक जगत मे मानव के लिए स्वय को सीमित करता है। इसीलिए सीमित रूपो मे सृजन का आधार वास्तविक और मौलिक सत् है। वह विश्व के परे होकर भी समस्त सत्ताधारियो का आधार है। इसीलिए हरिदास चौधरी ने श्रीअरविंद के दर्शन हेतु एक नाम दिया, जिसमे तीन समानार्थक शब्दो का प्रयोग किया गया। वे कहते है कि "The phılosophy of Srı Aurobındo may aptly be descrıbed as Integral Non-dualısm (पूर्ण अद्वैत) Integral or just Integralısm (पूर्णतावाद)।[88] यहाँ 'Integral' शब्द का अर्थ 'जिसमे सभी भिन्नताएँ अपने वैभिन्य को खोकर एकरूप हो जायँ। इस विचार से श्रीअरविद का अद्वैत विचार बौद्धिक एकवाद से भिन्न है। साधारणत दार्शनिक परपरा मे बौद्धिक एकवाद मे वैचारिक एकरूपता की स्थापना की जाती है। उनका मानना है कि बौद्धिक दृष्टि सत् की एकरूपता को पकडती है। सत् के विषय मे कुछ निश्चित रूप से कह पाती है। श्रीअरविद ने बौद्धिकता के दावे को अनुचित माना है, क्योकि बौद्धिकता की दृष्टि से सत् को अनिर्वचनीय होना ही है। एक कहने की भी कोई बौद्धिक प्रणाली नही है। यह सत् की अनुभूति किसी अतिबौद्धिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि मे ही सभव होने का सकेत देती है। इसप्रकार 'Integral' मे 'पूर्णतावाद से यहाँ तात्पर्य सत् के चित्रण से है, जिसमे 'द्रव्य तथा आत्म , निम्नतर तथा उच्चतर रूप का भेद पूर्णतया समाप्त या समन्वित हो जाता है। श्रीअरविद ने सत् मे निम्नतर तथा उच्चतर जगत के विरोध को समाप्त कर दिया है। जो पूर्ण अद्वैत है।

श्रीअरविंद ने 'Integralısm' (पूर्ण अद्वैत) मे दो निषेधो अर्थात् जड़वादी निषेध तथा वैराग्यमूलक निषेध का उल्लेख किया है तथा दोनो मे समन्वय का प्रयास किया है। श्रीअरविद के अनुसार, आत्म पर बल देना उचित नही है। उसके साथ-साथ 'जड़त्व', द्रव्य

---

88 हरिदास चौधरी द इटीग्रल फिलासफी आफ श्रीअरविंद पृष्ठ 19

आदि के महत्त्व को भी समझना परम आवश्यक है।[89] इसप्रकार पारमार्थिक स्वय को अभिव्यक्त करता है समस्त वस्तुओ को सृजित करता है तथा गोपनीय रूप मे उनको सहारा भी देता है। इन सबके साथ ही श्रीअरविंद ने ब्रह्म को तीन रूपो – आत्मा, पुरुष तथा ईश्वर मे व्यक्त माना है। उनके अनुसार, ब्रह्म सर्वव्यापी सत्ता है। विश्व के समस्त तत्त्वो मे उसकी व्याप्ति है। समस्त सत्ता का स्वामी वही है। वह सभी के अत करण मे स्थित आत्मा है। समस्त चेतन तथा अचेतन का आधार वही है। वह समय है किंतु उससे परे भी है। वही स्थान एव स्थान मे व्याप्त समस्त पदार्थ है। वह ही कारण कार्य है।[90] श्रीअरविंद ने परमतत्त्व को अज्ञेय माना किंतु यह भी कहा कि इसमे स्वय को विस्तृत करने की शक्ति है तथा इसका विस्तार इतना हो जाता है कि इस अज्ञेय से भी एक प्रकार का सपर्क स्थापित किया जा सकता है। श्रीअरविद का मानना है कि वेदात मे इसप्रकार की स्पष्टता नही है जिसके परिणामस्वरूप वेदात के ब्रह्म की अवधारणा जादूगर के करिश्मा की तरह लगती है। इससे प्राय भ्रम की उत्पत्ति होती है। यहॉ श्रीअरविद का मानना है कि अज्ञेय अज्ञेय ही होता है यद्यपि चेतना मे एक अनुभूति कुछ है के रूप मे रहती है। यह कुछ है का विचार काण्ट के अपने मे वस्तु' की अवधारणा जैसी है। हॉ, पूर्णतया वैसी ही नही है। फिर भी काण्ट का प्रभाव यहॉ पर दिखता है। भिन्नता केवल यही है कि काण्ट ने 'ज्ञानात्मक चेतना' तथा वैचारिक उडान मे अतर स्पष्ट किया है। अपने मे वस्तु ज्ञानात्मक चेतना के सर्वथा परे है तथा विचार से जो चित्र प्रस्तुत होता है, वह भी अनिवार्यत दोषग्रस्त है। श्रीअरविंद

---

89 The affirmation of a Divine Life on earth and an immortal sense in mortal existence can have no base unless we recognise not only Eternal spirits the inhabitant of this bodily mansion, the wearer of his mutable role, but accept matter of which it is made, as a fit and noble role, but accept material out of which He weaves constantly His garbs, builds recurrently the unedeling series of his mansions

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 18

90 All reality and all aspects and all semblences are the Brahman Brahman is the Absolute, the Transcendent and Incommunicable, the Supercosmic Existence that sustains the Cosmos, the Cosmic self that upholds all beings but it is too the self of each individual, the soul or psychic entity is an enternal portion of the Ishwara it is his supreme Nature or Consciousness - Force, that has becom the living being in a world of living beings

वही, पृष्ठ 294

ऐसा भेद नही करते है क्योकि उनका उद्देश्य ज्ञात तथा अज्ञात को दो अलग अलग कोटियो मे रख देना ही नही है अपितु इनके बीच की दूरी को कम करना है।

श्रीअरविद का मानना है कि ब्रह्म का ज्ञान नही होता है। विश्व चेतना मे एक बिंदु जो चेतना का एक विलक्षण रूप है कुछ है के रूप मे निर्धारित होता है। यही कुछ' निर्धारण की सीमा से परे भी रहता है। वैसे यही व्यापक सत् मे प्रारभिक आस्था का आधार है। ज्ञान और चेतना का सामान्य आवश्यक तरीका आस्था ही है। इसी आस्था के मार्ग पर आगे बढने पर ज्ञान द्वारा पूर्ण अनुभूति सभव है। श्रीअरविंद के अनुसार "This creed is given indeed to humanity to support it on its journey, until it arrives at a stage of development when faith will be turned into knowledge and perfect experience "[91] श्रीअरविद के पारमार्थिक सत्' सबधी विचारो को समझने के लिए उनके द्वारा स्थापित सत्ता के विभिन्न स्तरो की चर्चा आवश्यक है। यह सत्य है कि उन्होने सत्ता के विभिन्न स्तरो को माना है, किंतु इससे यह सोच लेना कि सत्ता का स्वरूप अनेकात्मक है, गलत है। सत् अनिवार्यत एक है, किंतु सृष्टि के विकासक्रम मे एकत्त्व तथा अनेकत्त्व दोनो प्रक्रियाओ को मानना आवश्यक होता है। जगत मे एकत्व की अभिव्यक्ति अनेकत्व की विधा मे ही होती है। इसीकारण श्रीअरविंद सत्ता के स्तरो या गॉठो' से सत्ता की अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करते है उसके मूल अव्यक्त स्वरूप को नही।

श्रीअरविद ने सत्ता के सात स्तरो को स्वीकार किया है। ये सात स्तर – शुद्ध सत् चित्-शक्ति आनद अतिमानस, मानस, मन, प्राण तथा जडतत्त्व है। यदि सत् को एक पूर्ण इकाई माने तो यह आठ स्तरो को प्रस्तुत करता है। प्रथम चार उच्चतर स्तर पर तथा अतिम चार निम्नतर जगत मे निहित रहते है। निम्नतर जगत के चार स्तरो की अभिव्यक्ति व्यावहारिक जगत मे हो चुकी है। उच्चतर स्तरो के विकास की प्रक्रिया अभी बाकी है। इसलिए दोनो ही स्तर एक-दूसरे के विपरीत नही है। श्रीअरविंद ने अत्यत कलात्मक ढग से सत् तथा जगत के मध्य सबधो को व्याख्यायित करते हुए स्पष्ट किया है कि सच्चिदानद ही अपने शुद्ध सत् रूप मे चित् शक्ति तथा आनद के खेलो मे तथा अतिमानस की क्रियात्मकता

---

91 श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 33

के माध्यम से ब्रह्माण्ड मे उतर आता है। जबकि जीवात्मा सतत् जड़तत्त्व मन प्राण आदि के माध्यम से उस उच्चतर रूप को प्राप्त करने मे प्रवृत्त रहता है।[92]

इन दोनो स्तरो की विभाजक रेखा मानस तथा अतिमानस के बीच खीची जाती है। श्रीअरविद का मानना है कि इस बिंदु पर एक परदा पडा रहता है, जिससे मानस से उच्चतर स्तर की झाकी नही मिल पाती है। स्पष्ट है कि परमसत्, निम्नतर स्तर पर अभिव्यक्त होने पर भी स्वय मे त्रयात्मक सत् है। इसे सच्चिदानद कहते है। इसके सत् चित्-शक्ति तथा आनद तीन रूप है। अतिमानस सच्चिदानद की सतत चेतना है। इसलिए श्रीअरविद ने सत् को सच्चिदानद कहकर त्रयात्मक भाव को एक नाम दिया है। उनके अनुसार "We start, then with the conception of an Omnipresent Reality of which neither the Non-being at the one end nor the Universe at the other are negations that annul, they are rather different status of the Reality, obverse and reverse affirmations The highest experience of this Reality in the Universe shows it to be not only a conscious Existence but a Supreme intelligence and Force and a self-existent Bliss "[93] इसप्रकार सच्चिदानद के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए तीनो का अलग-अलग अध्ययन आवश्यक है।

(अ) शुद्ध सत् अद्वैत वेदात मे शुद्ध सत् की सार्वभौम तथा शाश्वत सत्ता के रूप मे कल्पना की गयी है। इसके लिए प्रस्तुत साक्ष्य व्यावहारिक जीवन की तीनो अवस्थाओ जाग्रतावस्था स्वप्नावस्था तथा सुषुप्ति अवस्था मे उपस्थित रहता है। अत सत् का निषेध असभव है। यद्यपि श्रीअरविद भी अपने 'शुद्ध सत्' के विचार को उसी रूप मे प्रतिष्ठित करते है, लेकिन उनका विश्लेषण का ढग अलग है। उन्होने 'दार्शनिक दृष्टि की प्रथम अनुभूति का और 'वैचारिक बौद्धिकता के ढगो' का विश्लेषण किया है और इसी

---

92 The Divine descends from pure Existence through the Play of Conciousness force and Bless and the Creative medium of Supermind into cosmic Being, We ascend from matter through a developing life, soul and mind and the illumination medium of Super mind towards the Divine Being

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 242

93 वही पृष्ठ 32

विश्लेषण के माध्यम से सत् का शुद्ध, सार्वभौम तथा असीम होना सिद्ध किया है।

श्रीअरविद का यह भी मानना है कि जब जीव स्वय को वैयक्तिक तथा स्वार्थमूलक विचारो से मुक्त कर एक शुद्ध जिज्ञासु की तरह जगत की ओर देखता और विचार करता है (यही प्रारभिक दार्शनिक दृष्टि है), तब उसे जगत एक असीम शक्ति का द्योतक प्रतीत होता है। वह अनत स्थान एव निरतर काल मे सतत प्रवाहशील एव गतिशील रहता है। ऐसे मे जगत जीव से परे असीम सत्ता के रूप मे अनुभूत किया जा सकता है। उसी प्रारभिक ज्ञान के कारण मानव को अपने समक्ष एक अनत विस्तार दिखता है जो उससे परे वृहत् तथा असीम है। प्रारभिक समझ के कारण जीव तथा जगत का द्वैत दृष्टिगोचर होता है। इस अवस्था मे द्वैत स्थापित रहता है तथा जगत की असीमता से अधिक मै को महत्त्व देकर अपना स्थान बढाते है। किंतु यह अज्ञान है ज्ञान नही।

यही से वैचारिक सक्रियता प्रारभ हो जाती है। श्रीअरविंद स्वीकार करते है कि यही अनत अस्तित्त्व जो सदैव मानव से पृथक समझा जाता है स्वय को अत्यत भिन्न रूप मे प्रस्तुत करता है। इस वैचारिक सक्रियता मे वैज्ञानिक प्रगति का भी योगदान है। वैचारिक विश्लेषण से स्पष्ट है कि यह पारमार्थिक सत् असीम शक्ति तथा क्रियात्मकता से सूक्ष्मतर पदार्थो तथा वृहत् रूपो दोनो मे, स्थित है। इसकी सक्रियता की गहनता तथा सार्वभौमता के कारण इसे स्थान या काल रूपो मे नही मापा जा सकता। क्योकि इन्हे मापने के लिए सीमाओ मे बॉधना आवश्यक है जबकि यह असीम है। यहॉ पर 'मै तथा जगत के द्वैत से ऊपर उठता है क्योकि मै भी उसी शुद्ध सत् असीम शक्ति का एक पक्ष है। श्रीअरविंद का मानना है कि शुद्ध सत् का पूर्ण विवरण असभव है। मानव के विवरण के ढग, वैचारिक कोटियॉ, मानस रूप है तथा मानस' निम्नतर लोक की अतिम अवस्था है। इसके माध्यम से उसके पूर्ण विवरण की सकल्पना असभव है। यह मात्र एक वैचारिक सकल्पना ही है, जिसके यथार्थ एव तर्कपूर्ण होने की कोई उम्मीद नही है।[94]

---

94 If this indefinable, infinite, timeless spaceless existence is, it is necessarily a Pure Absolute It cannot be summed up in any quantity or qualities It is not an aggregate of forms or a formal substratum of forms If all forms, quantities were to disappear, this would remain

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 92

इसप्रकार श्रीअरविद शुद्ध सत् मे वैचारिक स्तर पर दो भेद मानते है। पहले भेद मे शुद्ध सत दार्शनिक दृष्टि से व्याख्यायित होता है। यहॉ स्वय से ऊपर उठकर जगत को देखने का प्रयास होता है। दूसरे मे बौद्धिक विचार है। पहले मे स्थान तथा काल का घेरा मौजूद है जबकि दूसरे मे वह इन दोनो से परे है। पहले मे अस्तित्व, जगत की स्थिति मे दिखता है तो दूसरे मे अस्तित्त्व एक शुद्ध भाव तथा विचार मे उभरता है। अत मे श्रीअरविद ने दोनो को समजित कर दिया है। उनके अनुसार यह दोनो विचार शुद्ध सत् को समझने के लिए आवश्यक है। शुद्ध सत् पूर्णतया निरपेक्ष तथा बौद्धिक दृष्टि से अज्ञेय ही है। फिर भी मानव अपने वैचारिक आधार पर इसका चित्र खीचता है। इसके विपरीत शुद्ध सत् अनत मे क्रियात्मक भी है जो कि इसका सापेक्षता से सबधित पक्ष है। लेकिन यह सापेक्ष रूप भी उससे नितात भिन्न है।

(ब) चित् सत् निरपेक्ष सत् वास्तव मे न तो अनेक है, न स्थिर और न ही गत्यात्मक है। समस्त कोटियॉ निरपेक्ष सत् को समझने का मानसिक प्रयास मात्र है। वह इनसे परे है। जब भी वैचारिक दृष्टि से सत् के स्वरूप को पकडने का प्रयास होता है तब वह एक परम अस्तित्व और असीम शक्ति प्रतीत होता है। श्रीअरविंद का मानना है कि निरपेक्ष सत् शुद्ध सत् के साथ ही शक्ति रूप मे भी प्रतीत होता है। 'शक्ति' तो शुद्ध सत् का सार रूप है। यह शक्ति स्वभावत स्थिर तथा गतिशील दोनो ही रहती है। यह शक्ति चेतन स्वरूप है। श्रीअरविद के अनुसार अस्तित्व के हर पक्ष हर स्तर पर परीक्षण करने से गत्यात्मकता और गति के उदाहरण के रूप मे चेतन शक्ति ही प्रतिरूपित होती है। यह चेतना मानवीय स्तर की नही है। श्रीअरविद कहते है, "It (Consciousness) is no longer synonymous with mentality but indicates a self-aware force of existence of which mentality is a middle term, below mentality it sinks into vital and material movements which are for us sub-conscient, above it rises into the supramental which is for us the super conscient But in all it is one and the same thing organising itself differently "[95]

---

95 श्रीअरविद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 83

श्रीअरविद चित् को अस्तित्व की स्वचेतन शक्ति के रूप मे देखते है। इसके विभिन्न स्वरूप है। यह मानसिक चेतना के स्तर से उतर कर प्राणतत्त्व तथा भौतिक गति की चेतना मे भी आती है। यह अवचेतन की अवस्था है। वही मानसिक स्तर से ऊपर उठकर अतिमानस के स्तर पर भी पहुँच जाती है। यह अतिचेतन की अवस्था है। स्वय मे यह एक मूल चित् शक्ति है जो अस्तित्व के विविध स्तरो पर क्रियाशील है। श्रीअरविंद के अनुसार, यह चित् शक्ति सृष्टि का मूलाधार है। इस कारण यह 'श्री मा है। यही ईश्वरीय शक्ति सृष्टि के पीछे है। चित् शक्ति को स्वीकारते ही श्रीअरविंद साख्य की समस्याओ से बच जाते है।

(स) आनदस्वरूप सत् श्रीअरविंद ने परमसत् को मात्र सत् और चित् ही नही कहा अपितु इसे आनदस्वरूप भी माना है। वह आनद के कारण ही सपूर्ण सृष्टि का सृजन करता है। सृष्टि का उद्भव आह्लाद मे तथा सृष्टि का खेल आनद रूप मे होता है। इसी आनद की परमावस्था सृष्टि का लक्ष्य है।[96] यहाँ श्रीअरविद और वेदात मतो मे समानता दिखायी देती है। श्रीअरविद के अनुसार, निरपेक्ष सत् का आत्म आह्लाद तथा आनद असीम है। इसकी अभिव्यक्ति के बहुत से रूप हो सकते है। यह अस्तित्व के हर स्तर पर मौजूद रहता है। जो भी है, जो क्रियाएँ है, उन सबमे आनद का रूप विद्यमान रहता है। बाह्य रूप मे यह स्पष्ट नही दिखता है लेकिन अस्तित्व के अर्थ मे ही आनद व्यक्त होना मौजूद रहता है।

(ii) अतिमानस की सकल्पना

श्रीअरविद ने सत् को दो स्तरो, उच्चतर तथा निम्नतर मे विभाजित किया है। सच्चिदानद स्वरूप उच्चतर स्तर पर तथा जडतत्त्व, प्राणतत्त्व, मन तथा मानस निम्नतर स्तर पर स्थित सत्ताएँ है। श्रीअरविद का मानना है कि विकास द्वारा निम्नतर स्तर से उच्चतर स्तर तक पहुँचा जा सकता है। दोनो स्तरो के बीच माध्यम का कार्य अतिमानस करता है। अतिमानस मुख्यत दो भावो का एक साथ प्रतिनिधित्व करता है। पहले भाव मे सत् की

---

96 It is Ananda out of which this world is born It is Ananda that sustains it and it is Ananda that is its goal and consumation

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन, पृष्ठ 87

चेतना के रूप मे अतिमानस आध्यात्मिक तत्त्व है यही सच्चिदानद की पूर्ण चेतना है। द्वितीय भाव मे मानस के चरम लक्ष्य के रूप मे अतिमानस है। यही दोनो भाव अतिमानस के स्वरूप को अभिव्यक्त करते है।

सत् की चेतना के रूप मे उसे स्रष्टा सत्भाव' चरम सत्य' चेतना आदि शब्दो से अभिहित किया जाता है। श्रीअरविद की स्थापना है कि सत् के अखण्डित स्वरूप को न छेडकर उसमे विभेदन किया जा सकता है। ऐसी अवस्था मे सृष्टि तथा सत् के मध्य एक तत्त्व की आवश्यकता होती है, जो सत् के पूर्ण अद्वैत की स्पष्ट चेतना हो तथा साथ मे स्वय को इसप्रकार प्रस्तुत कर सके कि सृष्टि की ओर से देखने पर त्रिगुणात्मक सत् प्रतीत हो। मानव इस प्रक्रिया को पूर्णतया समझ नही पाता क्योकि इस स्तर पर उसके सोचने-समझने का आधार मानसिक रहता है। मानसिक चेतना तथा उच्चतर चेतना मे वस्तुत कोई विरोध नही है। कारण कि सत् का पूर्ण अद्वैत रूप कभी खण्डित, विभाजित नही होता है, किंतु सृष्टि के परिप्रेक्ष्य मे, सृष्टि की ओर से देखने मे, सत् को त्रिगुणात्मक समझा जाता है। इस स्थिति मे सृष्टि तथा सत् के मध्य एक ऐसे तत्त्व की आवश्यकता होती है जो सत् के पूर्ण एकात्म को बनाते हुए उसे त्रिगुणात्मक रूप मे प्रस्तुत करे। यही तत्त्व अतिमानस है।[97] श्रीअरविद का यह भी मानना है कि सृष्टि मे अनेकता भेद स्पष्ट है लेकिन मूलत सत् एक रूप है। इसी रूप मे सर्वाङ्गी चेतना होने से अनेकता और एकता दोनो की चेतना होने से अतिमानस चरम सत्य चेतना है।

अतिमानस को स्रष्टा या सर्जनात्मक भाव के साथ ही सत् भाव मे भी ग्रहण किया जाता है। सर्जनात्मक आधार चरम सत् मे ही होता है, उससे भिन्न नही। शकराचार्य ने यहॉ पर ईश्वर तथा माया के सिद्धात का प्रतिपादन किया और इसी के आधार पर सृष्टि की व्याख्या की है। लेकिन अद्वैत वेदात मे ब्रह्म के साथ सबध स्थापन मे कठिनाइयॉ उत्पन्न होती है। फलत अद्वैत वेदात ईश्वर माया, जगत सभी को भ्रम मान लेता है। श्रीअरविंद कहते है कि ऐसी जगहो पर सत् का एकत्त्व तो सुरक्षित रहता है फिर भी सृष्टि के साथ

---

97 The Supermind starts from unity, not division, it is primarily comprehensive, differentiation is only a secondary act

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 118

अन्याय हो जाता है। सृष्टि को पूर्णतया मिथ्या क्यो मान लिया जाता है। इसका एकमात्र कारण ईश्वर को सत् से अभिन्न मानकर चलना तथा दोनो के सम्मिलन मे ईश्वर का विलय हो जाना है। इन कठिनाइयो से बचने का मार्ग यही है कि सृष्टि के आधार को परमसत् से भिन्न न माना जाय। तभी सत तथा सृष्टि दोनो के साथ न्याय सभव होगा।

दूसरी ओर निम्नतर स्तर पर अतिमानस, मानस का चरम लक्ष्य और उसकी अतिम परिणति है। इसप्रकार मानस अतिमानस के विपरीत नही है। उसमे निहित शक्तियॉ अतिमानस की शक्तियो के ही निम्नतर रूप है। मानस निम्नतर स्तर पर है लेकिन यह अतिमानस का ही निम्नतर स्वरूप है तथा अपने चरमलक्ष्य की ओर उठने हेतु सतत प्रयत्नशील है। श्रीअरविद के अनुसार, मानस और अतिमानस का भेद सत् के ग्रहण करने के तरीको मे है। अतिमानस सत् को पूर्ण अद्वैत एव एकात्म रूप मे ग्रहण करता है, लेकिन मानस अपने स्वरूप की पूर्णता को खण्डित करता है। मानस मे ज्ञाता और ज्ञेय का भेद है तथा ज्ञेय को भी उसके अवयवो एव अशो के आधार पर ही पकडने की चेष्टा करता है। मानस अपने इस स्वरूप के कारण सत् के चित्रण मे सर्वथा असमर्थ है। सत् तो पूर्णतया एक है। ज्ञान की ऐसी विधा जो ज्ञात के विषय को विश्लेषण से ही जान सकती है, उसे अवयवो मे विभाजित करके ही जान पाती है। अत मानसिक चेतना से प्राप्त ज्ञान वास्तविक ज्ञान नही है। परतु मानस मे ऊपर उठने की तत्परता है। यह ज्ञान आशिक तथा धरातली अवश्य है, परतु उसमे भी एकत्त्व को प्राप्त करने की उत्सुकता है, इकाईयो को स्थापित करने की प्रवृत्ति है। यह सकेत करता है कि मानस मे भी अपूर्ण रूप से अतिमानस की शक्ति कार्यरत है। श्रीअरविद के अनुसार, उच्चतर आध्यात्मिक क्षेत्र से अतिमानस का निम्नतर क्षेत्र के मानस की ओर अवतरण से मानस मे विकसित होने की उच्चतर उठने की सभावना जाग्रत होती है। मानस मे ऊपर उठने की शक्ति निहित है। यदि अतिमानस किसी-न किसी रूप मे एक आवरण द्वारा मानस मे अवतरित न हो तो उसमे अतिमानस की ओर उठने की प्रवृत्ति भी नही जाग सकती है।

श्रीअरविद ने स्वीकार किया है कि मानस से अतिमानस तक पहॅुचने की प्रक्रिया एकाएक सपन्न न होकर एक क्रम मे होती है। निम्नतर लोक का अतिम तत्त्व मानस है। वह अचानक उच्चतर लोक मे प्रवेश नही कर पाता। इन दोनो के मध्य कई स्तर और भी है, जो इसप्रकार है – मानस उच्चतर मानस, प्रदीप्त मानस, अतर्दृष्टि, व्यापक मानस तथा

अतिमानस। नीचे से ऊपर जाने के लिए प्रकृति से परात्म की ओर अग्रसर होना पडता है। यह धीरे धीरे चलने वाली प्रक्रिया है। इसी से अतिमानस की प्राप्ति सभव है।

(iii) मानव की अवधारणा

श्रीअरविद ने विकास प्रक्रिया मे मानस के स्तर को आध्यात्मिक क्षेत्र मे छलाग लगाने के लिए परिपक्व माना है। मानव मे मानस के स्तर का स्पष्टतम प्रस्फुटित रूप है। इसीलिए मानव मे ही अतिमानस की ओर अग्रसरित होने की क्षमता मौजूद है। श्रीअरविंद का मानना है कि मानव की केद्रीय सत्ता दो स्तर पर है – उच्चतर तथा निम्नतर। उच्चतर स्तर जीवात्मा का तथा निम्नतर स्तर चैत्यपुरुष का। उच्चतर पक्ष मानव विकास के पहले की अवस्था है। यह विकास प्रक्रिया से परे है। यह उपचेतन अवस्था है, जो भूत के साहचर्यो, सस्कारो प्रवृत्तियो कर्मो से बना है, कितु निम्न स्तर विकास प्रक्रिया मे विकसित मानव का वास्तविक स्वरूप है यही चैतन्य पुरुष है। श्रीअरविद जीवात्मा को ईश्वरीय अश , परमात्मा का मानवीय रूप , ईश्वरीय लवकण आदि नाम देते है, अर्थात् जीवात्मा एक दृष्टिकोण से मानव की हर वैयक्तिक अभिव्यक्तियो से ऊपर है। इसके विपरीत चैतन्य पुरुष जीवात्मा का प्रतिनिधि है, जो वैयक्तिक मानव मे वैयक्तिक जीवन मे व्यक्त होता है। इसीलिए चैतन्य पुरुष विकासक्रम मे स्थित है, जबकि जीवात्मा विकासक्रम से परे है। जीवात्मा तथा चैतन्य पुरुष दोनो मे ईश्वरीय अश है, लेकिन 'परमसत् तथा चैतन्य पुरुष मे भेदान्वित् अभेद का सबध है। परमसत् तथा जीवात्मा मे पूर्ण अभेद है। इसी के आधार पर अद्वैत वेदात के तत् त्वम् असि' का बडा ही मार्मिक अर्थनिरूपण हुआ है। तत् और त्वम् मे भेद व अभेद दोनो है। जहॉ त्वम् से चैतन्य पुरुष का बोध हो रहा है, वही 'तत्' से जीवात्मा का बोध हो रहा है। तब 'त्वम् तथा 'तत्' का अतर समाप्त हो जाता है।

श्रीअरविद के अनुसार, मानव स्वरूप के तीन पक्ष है – पहला वाह्य, दूसरा आतरिक, तीसरा जीवात्मा। प्रथम मे मानव का भौतिक स्वरूप प्रगट होता है, दूसरे तथा तीसरे मे आध्यात्मिक स्वरूप। यह दूसरा पक्ष मानव के ऊपर उठने, परात्मकता को प्राप्त करने का आधार है। तीसरा पक्ष मानव का सत् पक्ष है, उसकी वास्तविकता है, जिसकी पूर्ण अभिव्यक्ति ही मानव अस्तित्व की परिणति है। चैतन्य पुरुष सूक्ष्म आत्म है, जो नष्ट नही

होता है। मृत्यु मे जब बाह्य स्वरूप का अत हो जाता है तो यह सूक्ष्म आत्म दूसरे शरीर को स्वीकारता है। यही सूक्ष्म आत्म मानव की आध्यात्मिक प्रगति का आधार है। इसी के माध्यम से अतिमानस की प्राप्ति सभव है।

(iv) सृष्टि का स्वरूप

परमसत् की उल्लासमय अभिव्यक्ति सृष्टि' है। परमसत् पूर्ण है लेकिन स्वय को व्यक्त भी करता है। श्रीअरविंद ने सृष्टि का विचार द्विगुणात्मक प्रक्रिया मे किया है। एक ओर परात्म का जगत के रूपो मे अवतरण है तथा दूसरी ओर यह जगत के रूपो का उच्चतर रूपो मे आरोहण' है उत्थान है। श्रीअरविंद का मानना है कि आध्यात्मिक उत्थान या उत्कर्ष के सबध मे मुख्यत दो मान्यताएँ है। प्रथम, आदर्श की प्राप्ति लक्ष्य है और आदर्श तथा हमारे स्वरूप मे भिन्नता नही है, क्योकि अभिन्नता से आदर्श की प्राप्ति असभव हो जायगी। द्वितीय मान्यता के अनुसार मानव के उत्थान का एकमात्र आधार उच्चतर रूपो का निम्नतर स्तर पर अवतरण है। हर उत्थान का दूसरा रूप अवतरण है। उत्थान के लिए आवश्यक है कि जिसकी ओर हम बढे, वह भी हमारी ओर आये। श्रीअरविद का मानना है कि हर आध्यात्मिक परिवर्तन मे परात्म' का अवतरण होता है अन्यथा आध्यात्मिक उत्थान नही हो सकता। परात्म का यह अवतरण ही सृष्टि का उद्भव है। इसीलिए सृष्टि अवतरण या उत्थान की प्रक्रिया होने के साथ साथ विकास प्रक्रिया भी है।

(अ) अवतरण या अतर्वलन प्रक्रिया श्रीअरविद की अवतरण प्रक्रिया अद्वैत वेदात के सृष्टि विवरण के समान है। भेद मात्र विवरण की दृष्टि तथा उस दृष्टि के अनुरूप चर्चित अवधारणाओ का है। अद्वैत वेदात मे कहा गया कि अविद्या से ही सृष्टि का बोध होता है और उसे हम वास्तविक मान लेते है, किंतु यह सत् के वास्तविक रूप का विस्मरण है। वस्तुत सृष्टि की प्रतीति ब्रह्माण्डमूलक भ्रम मात्र है। सृष्टि आनद का खेल या लीला है।

श्रीअरविद भी सृष्टि का विवरण आत्म का अज्ञान मे निमज्जन अर्थात् आत्मा का अज्ञान मे प्रविष्ट हो जाना मानते है। अज्ञान ईश्वरीय चेतना की अपने को आशिक रूप मे रोकने की शक्ति है। अज्ञान भी ईश्वरीय चेतना का अश है। पूर्ण ईश्वरीय चेतना तथा पूर्ण ज्ञान शून्यता के मध्य अज्ञान का फैलाव है। ईश्वरीय चेतना न होने से यह ज्ञान नही है

लेकिन यह ज्ञानशून्यता भी नही है, क्योकि यह सृष्टि क्षेत्र मे है। अत जब सत् स्वय को आशिक रूप मे रोकने की शक्ति मे लगाता है तब वह अज्ञान के क्षेत्र मे उतरता है। यही सृष्टि है।

श्रीअरविद का मानना है कि ज्ञान मे रहकर भी सृष्टि होती है, लेकिन यह उच्चतर सृष्टि होती है। इसका ज्ञान केवल ज्ञानी को ही होता है। व्यावहारिक ज्ञान का विवरण जब सामान्य जीव के बीच रहता है तब यह निम्नतर जगत है। अज्ञान के क्षेत्र मे उजागर सृष्टि है। यह हमारी सृष्टि अज्ञान के ही क्षेत्र मे है। ऐसी अवस्था मे सृष्टि भ्रामक नही है। यह ईश्वरीय चेतना की सीमित अभिव्यक्ति है। उसकी चेतना ज्ञान का निषेध नही है। यही पर श्रीअरविद और अद्वैत वेदात मे भिन्नता है।

श्रीअरविद की दृष्टि मे जगत ईश्वर की लीला है। ईश्वर इसकी रचना माया के द्वारा करता है। लीला जगत के आनद का खेल है। जगत का प्रत्येक क्षण प्रवाहशील है। यह प्रवाह वास्तव मे आह्लादपूर्ण क्रियाएँ है। श्रीअरविंद कहते है कि यह सपूर्ण प्रक्रिया एक नियम से बॅधी है, जो माया है। माया अनत चैतन्य की एक शक्ति है, वह अनत सत् की वृहत् असीम शक्ति को अपने भीतर धारण करती है तथा उससे नामरूप विश्व का निर्माण करती है। माया के दो रूप है – उच्चतर तथा निम्नतर। उच्चभूमि मे माया शुद्ध ज्ञान है तथा निम्नभूमि मे अज्ञान मिश्रित ज्ञान है। माया वह शक्ति है जो सृष्टि को रूप देती है। यह शक्ति सच्चिदानद की है।

(ब) उत्थान प्रक्रिया

श्रीअरविद की धारणा है कि विकास अवतरण को मानकर ही अग्रसर होता है। विकास निम्नतर का उच्चतर की ओर जाना है। यह उच्चतर के निम्नतर मे अवतरण से ही सभव हो पाता है। सत्ता के आठ स्तरो की क्रमिक प्रक्रिया दोनो मे चलती रहती है। उच्चतर रूपो मे जडतत्त्व, प्राणतत्त्व, मन आदि के अवतरण से ही इनका विकास होता है। जड़तत्त्व से प्राणतत्त्व का विकास भी तभी सभव है जब प्राणतत्त्व जड़तत्त्व मे उतरे। मन प्राणतत्त्व मे उतरता है। श्रीअरविद स्पष्टत कहते है कि कोई तत्त्व उच्चतर रूपो मे तब तक विकसित नही होता है जब तक वह उच्चतर रूपो से उसमे उतर कर न आये। शून्य से सदैव ही शून्य प्राप्त

होता है। इसलिए श्रीअरविद ने विकास या उत्थान प्रक्रिया को अवतरण के विपरीत माना है। विकास तथा अवतरण एक ही मार्ग मे दोनो ओर से अग्रसर होने की प्रक्रिया है। उच्चतर स्तर का चरम बिदु परमसत् है तथा निम्नतर स्तर पर प्रथम बिदु जडतत्त्व है।[98]

श्रीअरविद के विकास सिद्धात मे अन्य समस्त विकास सिद्धातो का समावेश है। विकास की प्रक्रिया एक दृष्टि से पुनरावृत्तिमूलक और उद्गमनात्मक है तथा दूसरी ओर यत्रवादी तथा प्रयोजनवादी है। श्रीअरविद के विकास सिद्धात मे अद्वैत सिद्धात के समस्त सिद्धातो का समावेश है।

श्रीअरविद के विकास सिद्धात मे तीन प्रक्रियाएँ – विस्तारण, उच्चत्त्व की ओर उन्मुखता तथा पूर्णीकरण है। विकास मुख्यत विस्तारण प्रक्रिया है। इसमे किसी स्तर के अस्तित्त्ववान रूप को समेटना तथा उन्हे पूर्णतया विस्तृत रूप मे अभिव्यक्त होना है। इसके तुरत बाद विकास प्रक्रिया उच्चतर रूपो की ओर अग्रसर होती है। सबसे अत मे पूर्णीकरण की प्रक्रिया आती है। पूर्णीकरण अवतरण द्वारा उत्थान है।

श्रीअरविद का मानना है कि अब तक जडतत्त्व, प्राणतत्त्व मन तथा मानस स्तर का विकास हो चुका है। अब मानस स्तर को उच्चतर रूप अतिमानस के स्तर तक उठने की आवश्यकता है। इसप्रकार उन्होने व्यक्तिगत विकास से जगत के विकास की सकल्पना का प्रतिपादन किया है।

शकराचार्य और श्रीअरविंद के दर्शन का अध्ययन करने पर कुछ समानताओ के साथ कुछ अतर भी दिखायी देते है। शकराचार्य जहॉ ब्रह्म को अव्यक्त, अचित्य तथा विकाररहित मानते है, वही श्रीअरविद ने भी सच्चिदानद को स्वरूप रूप मे शुद्ध सत् कहा है तथा जगत की अद्वितीय सत्ता स्वीकार किया है। दोनो मे भेद यह है कि शकराचार्य ने ब्रह्म को सच्चिदानद स्वरूप माना है। शुद्ध सत् मे ब्रह्म का चिन्मय स्वरूप है। उन्होने सत् - चित्

---

98 Spirit is a final evolutionary emergence because it is the original involutionary element and factor Evalution is an inverse action of the involution What is an ultimate and last derivation in the involution is the first to appear in the evolution What was original and primal in the involution is the last and supreme emergence

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 759 60

सिद्धात के आधार पर जगत के मिथ्यात्व का प्रतिपादन किया है कितु श्रीअरविंद ब्रह्म को अभावात्मक रूप से शुद्ध सत् तथा भावात्मक रूप मे सच्चिदानद मानते है। उन्होने चित् तत्त्व को चित् शक्ति के रूप मे सिद्ध किया है, इसे ही जगत की उत्पत्ति का कारण माना है। इस महाशक्ति को श्रीअरविद ने श्री मा कहा है। विश्वातीत सच्चिदानद मे यह विश्राम की अवस्था मे रहती है तथा सृजनात्मक अतिमानस मे गत्यात्मक हो जाती है। शकराचार्य ने इसे नही स्वीकार किया है क्योकि सच्चिदानद ब्रह्म से जगत की उत्पत्ति नही होती है। किंतु इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि शकराचार्य द्वारा अज्ञान रूपी अविद्या शक्ति का आधार तथा आधेय ब्रह्म को मानने से जो कठिनाइयाँ आती है, उनसे श्रीअरविद का दर्शन पूर्णतया मुक्त है। दूसरा विभेद यह है कि शकराचार्य ने ब्रह्म के चित् स्वरूप से मात्र स्थितिशील निश्चल और अपरिवर्तनशील चैतन्य को ही समझा है, जबकि श्रीअरविंद ने चित् स्वरूप की व्याख्या चित् शक्ति के रूप मे की है। उसे विश्राम तथा गति चल तथा अचल दोनो ही रूपो मे स्वीकार किया है। शकराचार्य ने एकरूपेण अवस्थित योऽर्थ स परमार्थ सूत्र को मानकर अविकृत शुद्ध चैतन्य को सत् माना है, वही श्रीअरविद ने अविकृत शुद्ध चैतन्य को सच्चिदानद मे विश्रामपरायण चित् शक्ति माना है और परिवर्तनशील तथा विकृत जगत चैतन्य को गत्यात्मक चित् शक्ति के रूप मे रखा है।

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि जहॉ शकराचार्य अपने अद्वैतवाद के तत्त्वमीमासीय विवेचन मे तार्किक रूप से अद्वैत की रक्षा करने मे सफल रहे है वहॉ श्रीअरविद द्वारा एक ओर परमसत् को ही सपूर्ण जगत की अभिव्यक्ति कहना और पुनश्च अतिमानस की सकल्पना करना उचित नही प्रतीत होता है। क्यो न हम यह स्वीकार कर ले कि परमसत् के अवतरण मे ही अतिमानस का भी अवतरण हो जाता है। यदि इसे स्वीकार ले तो श्रीअरविद द्वारा विवेचित विकास का सिद्धात निरर्थक हो जायगा। वास्तविकता यही है कि सपूर्ण सृष्टि को परम सत् की अभिव्यक्ति के लक्षण से विभूषित कर श्रीअरविंद सृष्टि सबधी सभी कमियो से ब्रह्म को बचाने मे असफल हो जाते है। इसप्रकार कहा जाय कि श्रीअरविद का परमसत् रक्तहीन विचारो का अमानवीय नृत्य बन गया है, तो कोई अत्युक्ति न होगी।

□□□

पचम अध्याय

अज्ञान का सिद्धात

(शकराचार्य और श्रीअरविद के सदर्भ मे)

अ शकराचार्य का अज्ञान सिद्धात

(1) अज्ञान का अर्थ

(11) अज्ञान का आश्रय

(111) जगत की उत्पत्ति मे अज्ञान की भूमिका

ब श्रीअरविंद का अज्ञान सिद्धात

(1) अज्ञान का अर्थ

(11) अज्ञान का आश्रय

(111) अज्ञान की उत्पत्ति एव रूप

(1V) जगत की उत्पत्ति मे अज्ञान की भूमिका

पचम अध्याय

अज्ञान का सिद्धांत

(शकराचार्य और श्रीअरविद के सदर्भ मे)

अ शकराचार्य का अज्ञान सिद्धात

शकराचार्य तथा श्रीअरविद के मायावादी सिद्धातो की गहन और पारदर्शी विवेचना तथा तुलनात्मक अध्ययन के लिए अज्ञान या अविद्या सबधी सिद्धातो का विश्लेषण करना अत्यत आवश्यक है। अज्ञान या अविद्या का विश्व की उत्पत्ति मे, विश्व चराचर मे और विश्व के विकासक्रम मे महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसके साथ ही अज्ञान की उत्पत्ति, अज्ञान के स्वरूप तथा अज्ञान से ज्ञान की ओर बढ़ने की प्रक्रिया को जान लेने से सपूर्ण दार्शनिक विवेचना सरल हो जाती है। शकराचार्य के समान श्रीअरविंद जगत को मिथ्या या भ्रम अथवा अध्यास नही मानते है, किंतु दोनो ही एक और अद्वितीय ब्रह्म जो कि निराकार, निर्विशेष और स्थाणु है, के साथ इस अनेकतापूर्ण जगत का सामजस्य कैसे हो सकता है इस समस्या पर विचार करते है। इस स्तर पर दोनो मे विचारो की समानता है, लेकिन दोनो के समाधान अलग अलग है। इनका विश्लेषण करने से पहले अज्ञान सिद्धात का सक्षिप्त ऐतिहासिक आकलन कर लेना आवश्यक है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे देखा जाय तो अज्ञान सिद्धात का प्रारभ ऋग्वेद से होता है। वहॉ ज्ञान और अज्ञान को क्रमश चिति और अचिति' शब्दो से अथवा देवीमाया' और अदेवीमाया शब्दो से सबोधित किया गया है। चिति शब्द का प्रयोग ज्ञान के लिए है।[1]

---

1 अभयचद्र भट्टाचार्या श्रीअरविंद दर्शन पृष्ठ 65 66

वैदिक आत्मद्रष्टाओ ने ज्ञान या चिति मे सत्य और ऋत को सम्मिलित किया है। इसप्रकार आत्मदर्शन से जिस सत्य का ज्ञान होता है, उसका निश्चल और आत्मलीन स्वरूप और उस सत्य की अभिव्यक्ति उसके क्रियात्मक नियम परोक्षत चिति शब्द को ही इगित करते है। क्षर अक्षर स्थिर-गतिमय समस्त विपरीत पक्षो से सत्य ज्ञान परिलक्षित होता है। जबकि अज्ञान या अचिति सत्य और ऋत् के अज्ञान से सबध रखते है। लेकिन इससे निश्चेतना का अर्थ नही लगाया जा सकता है। इस शब्द को मात्र सीमित ज्ञान या मिथ्याज्ञान के अर्थ मे लिया गया है। यह वह ज्ञान है जो अविभक्त को विभाजित रूप मे देखता है। जहॉ देवीमाया द्वारा वास्तविक सृष्टि का सचालन होता है, वही अदेवीमाया के माध्यम से भेद तथा अधकार का सृजन होता है तथा भ्रामक रूपो और आकारो का उद्‌भव होता है।

ज्ञान और अज्ञान का मतभेद आगे चलकर और अधिक तीव्र हुआ। उपनिषदो मे वैदिक शब्द चिति और अचिति के स्थान पर विद्या और अविद्या का प्रयोग किया गया है। विद्या से जहॉ एक का ज्ञान अर्थ लिया गया वही अविद्या का सबध विभक्त अनेकताओ के उस ज्ञान से है, जो एकीभूत चैतन्य मे परिव्याप्त न हो। उपनिषदो मे परिवर्तनशील तथा अनेकतापूर्ण व्यावहारिक जगत को वास्तविक और सत्य माना गया है, किंतु यह शाश्वत तथा अखण्ड सत्ता की तुलना मे निम्न स्तर का है–'अविभक्त विभक्तेषु, विभक्त इव च स्थितम् या एक रूप बहुधा य करोति' आदि उपनिषदीय कथनो से स्पष्ट है कि वहॉ भी अनेकताओ को असत् न मानकर अखण्ड सत्ता की वास्तविक अभिव्यक्ति माना गया है।[2] इससे भिन्न विचार शकराचार्य का है। उन्होने ज्ञान और अज्ञान का भेद विरोधी अर्थ मे स्वीकार किया है। शाकर-वेदात मे विद्या अविभेदित एकता के ज्ञान के अर्थ मे है, जबकि अविद्या एक ऐसी शक्ति है जो अविभेदित ब्रह्म चैतन्य मे असत् जगत के अध्यास को उत्पन्न करती है। शकराचार्य ने स्वय अविद्या' और माया दोनो शब्दो को समानार्थक रूप मे स्वीकार किया है। यद्यपि परवर्ती अद्वैतवादियो ने माया शब्द को भावात्मक तथा 'अविद्या' शब्द को निषेधात्मक अर्थ मे स्वीकार किया था। माया ईश्वर को प्रभावित करती है और अविद्या जीव को। माया का स्वरूप सात्त्विक है किंतु अविद्या स्वरूपत त्रिगुणात्मक है। अत जब विषयपक्ष के दृष्टिकोण से समस्या का निरीक्षण करते है तो माया शब्द का प्रयोग

---

2 अभयचद्र भट्टाचार्या श्रीअरविंद दर्शन पृष्ठ 66

होता है। किंतु विषयी पक्ष की दृष्टि से निरीक्षण करने पर उसी वस्तु के लिए *अविद्या* शब्द का व्यवहार होता है।[3] शकराचार्य ने समस्त आनुभविक जगत का कारण अज्ञान या अविद्या को माना है। ससार के वस्तुगत क्षेत्र की व्याख्या के लिए अज्ञान का विश्लेषण उन्होने मुख्य रूप से किया है।

(1) अज्ञान का अर्थ

अज्ञान सिद्धात पर विचार करते समय सबसे पहले शकराचार्य द्वारा उसके वास्तविक अर्थ तत्त्व से परिचित होना आवश्यक है। उनकी रचनाओ मे व्यावहारिक जगत का कारण अविद्या मानी गयी है। आभासित जगत ब्रह्म मे नही, अपितु बुद्धि के स्वरूप मे स्थित है। शकराचार्य का मानना है कि इद्रियातीत और लौकिक दृष्टिकोणो को परस्पर मिलाने की प्रवृत्ति या अध्यास वैसे तो भ्राति मे डालने वाला है, लेकिन मानव के बोध के लिए अत्यत स्वाभाविक है। उपनिषदो मे अविद्या शब्द मात्र अज्ञान के अर्थ मे ही प्रयुक्त हुआ है, जो व्यक्ति रूप विषयी ज्ञान से भिन्न है।[4] यहॉ शकराचार्य मानते है कि अविद्या हमारे ज्ञान की आतरिक धुध है। यह ऐसी प्रवृत्ति है जो कि मन द्वारा वस्तुओ की देश, काल तथा कारण की रचना मे देखी जा सकती है। यह ज्ञात कपटाचरण न होकर परिमित शक्ति वाले मन की अज्ञानवश प्रवृत्ति है जो जगत के अपूर्ण मानदण्ड पर निर्भर है। यह एक निषेधकारी शक्ति है जो मानव को स्वय के देवस्वरूप जीवन से दूर ले जाती है। ब्रह्म का जगत के रूप मे आभास अज्ञान के कारण ही होता है। जिसप्रकार रस्सी का साप के रूप मे आभास इद्रियदोष के कारण है। वास्तविकता के ज्ञान से ही सर्प की अयथार्थता का ज्ञान प्राप्त होता है। इसीप्रकार जब ब्रह्म की यथार्थता के दर्शन होते है तो जगत की प्रतीति स्वय दूर हो जाती है। जब मानव रस्सी का रस्सी के रूप मे ज्ञान प्राप्त करता है तब स्वय ही समस्या का अत हो जाता है। रस्सी सर्प की भॉति प्रतीत होती है। यह सापेक्षता के कारण दोषपूर्ण अतर्ज्ञान के अलावा और कुछ नही है। विशुद्ध चैतन्य के दृष्टिकोण से वस्तुओ को

---

3 विद्यारण्य माधव विवरण प्रमेय सग्रह 1 1

4 छादोग्य उपनिषद 1 1 10 वृहदारण्यक उपनिषद 4 3 20 4 4 3

देखने के साथ ही अन्य समस्त आभास समाप्त हो जाते है। अविद्या या तो ज्ञान का अभाव है या सदिग्ध भ्रातिमान ज्ञान है। इसका निषेधात्मक के साथ-साथ भावात्मक रूप भी है। शकराचार्य द्वारा अविद्या को प्रमुख मानने का एकमात्र तात्पर्य सीमितता का तथ्य है। हर व्यक्ति को सपूर्ण ज्ञान की प्राप्ति नही हो सकती।[5] इसकी साक्षी सार्वभौम रूप मे मिलती है। हर सीमित मन मे यह न्यूनता एक समान विद्यमान रहती है। उपनिषदो मे अविद्या अज्ञान के अर्थ मे प्रयुक्त हुई है जो शकराचार्य मे तार्किक विधि के रूप मे प्रस्तुत होकर मानवीय मन की सीमितता का निर्माण करती है। यह बध्यापुत्र के समान अभावात्मक नही है, क्योकि इसकी प्रतीति सभव है। इसके साथ ही यह एक यथार्थ और निरपेक्ष सत्ता रूप वस्तु भी नही है क्योकि अतर्दृष्टि के ज्ञान से इसका नाश हो जाता है। यदि यह असत् होती तो किसी वस्तु का उत्पादक न होती और यदि यह सत् है तो जो इससे उत्पन्न होता वह भी यथार्थ होता आभास मात्र नही। अत यह न तो यथार्थ है न आभास मात्र है और न यह दोनो ही है।[6]

यह सत्य है कि इसकी उत्पत्ति और समाधान दोनो ही हमारी पहुँच से परे है फिर भी मानसिक वर्गभेदो के आधार पर इसका कार्य व्यापार स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। यह अविद्या जो सारे अज्ञान पाप तथा दु ख की जन्मदात्री है, इसकी उत्पत्ति कहाँ से होती है? अविद्या को व्यक्तित्व का कारण नही मान सकते है क्योकि मानव के विलोपन के साथ ही अविद्या का विलोपन भी हो जाता है। अगर मान भी ले कि यह व्यक्तित्व का कारण है तो इसकी स्वतत्र सत्ता होनी चाहिए और इसका सबध उस परम यथार्थ ब्रह्म के साथ होना आवश्यक है कितु ब्रह्म के नित्यस्वरूप होने के कारण अविद्या के साथ उसका कोई सबध नही है। अविद्या इसके प्रतिकूल है।

---

5 अह अज्ञ इत्याधुनुभवात ।

वेदातसार पृष्ठ 4

6 विवेक चूड़ामणि पृष्ठ 3

(ii) अज्ञान का आश्रय

अज्ञान या अविद्या के आश्रय के रूप मे शकराचार्य ने ब्रह्म को स्वीकार नही किया है। सर्वज्ञात्मनि के अनुसार अविद्या का निवास ब्रह्म के भीतर नही हो सकता है और वाचस्पति के अनुसार यह व्यक्ति मे भी नही रह सकती है।[7] यह मानना कि परिवर्तित ब्रह्म अविद्या का आधार स्थल है, अतार्किक है क्योकि ब्रह्म मे परिवर्तन अविद्या के कारण ही सभव है। इस सदर्भ मे रामानुज का तर्क है कि मानव मे हर आत्मा के लिए भिन्न भिन्न अविद्या की कल्पना करनी होगी। अविद्या आत्माओ की भिन्नता का ज्ञान तो रखती है लेकिन यह उसका कारण नही है। इसीलिए इन माध्यमो से अविद्या का समाधान सभव नही है। यहॉ तर्क के चक्रक दोष की प्रतिस्थापना होती है।[8]

शकराचार्य ने इस समस्याओ से निकलने के लिए अविद्या को व्याख्या से परे घोषित किया है। उनकी अध्यात्म विद्या मे यह प्रश्न ही निरर्थक सिद्ध होता है। मानव लौकिक विधानो का प्रयोग इद्रियातीत जगत मे नही कर सकता है। शकराचार्य का कहना है कि हम जानते है अविद्या का अस्तित्व है। पर इसके कारण पर विचार करना निरर्थक है। जिस प्रकार कि सात आत्माओ की उत्पत्ति के विषय मे विचार करना निरर्थक है। यदि मानव आत्मा के साथ अविद्या के सबध को जान सके तो उसे निश्चय ही इन दोनो से उच्च होना चाहिए।[9] इसके साथ ही अविद्या आत्मा का अनिवार्य गुण भी नही है। यह अनिवार्य गुण होती तो आत्मा का इससे छुटकारा पाना असभव होता। लेकिन आत्मा अपने भीतर न तो किसी वस्तु का समावेश करती है और न ही त्याग करती है। अविद्या किसी मनुष्य या ईश्वर जैसी सात वस्तु से सबधित नही है। मनुष्य की अविद्या सभव हो, इसके लिए, उससे पहले ही अविद्या का होना आवश्यक है। ब्रह्म का व्यक्तित्व भाव सीमित आत्माओ की उत्पत्ति अविद्या के कारण नही हो सकता है। यह सीमित जीवन के लक्षण है। यह दैवीय क्रिया की घटना है। तब यहॉ शकराचार्य ब्रह्म और अविद्या के सहअस्तित्व को स्थापित करने के लिए

---

7 श्रीधरकृत न्यायकदली 2 1 15

8 ब्रह्मसूत्र पर रामानुजभाष्य 2 1 15, साख्य प्रबधनसूत्र 1 21 24 5 13 19

9 भगवदगीता पर शाकर भाष्य 13 2

कहते है कि ब्रह्म अविद्या की उपज नही है और स्वय भ्रात भी नही है। लेकिन अन्य कोई चेतन प्राणी ब्रह्म के अतिरिक्त है, जो अज्ञान को उत्पन्न करता है ऐसा मानना भी अनुचित है।[10] सक्षेप शारीरक के अनुसार भेद शून्य परमबुद्धि अविद्या का आश्रय तथा विषय है।[11] ड्यूसन का मानना है कि यथार्थ मे तो ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है। काल्पनिक दृष्टि से जगत मे उसके विकार प्रस्तुत होते है तो यह व्यक्तियो के अनेकत्त्व मे उसका भेद अविद्या पर आश्रित है।[12]

सक्षेप शारीरक विवरण वेदात मुक्तावली अद्वैतसिद्धि और अद्वैत दीपिका के ग्रथकारो का मानना है कि अविद्या का आश्रय और विषय दोनो ब्रह्म है। वाचस्पति मिश्र का विचार है कि अविद्या का आधार जीव है और विषय ब्रह्म है। ईश्वर भी जीवज्ञान की उपज है। जितने जीव है उतने ही ईश्वर भी होने चाहिए। इसके साथ अन्योन्याश्रय सिद्धात भी है। जीव अविद्या पर तथा अविद्या जीव पर आश्रित है। जीव अविद्या पर तथा अविद्या जीव पर आश्रित है। अत अविद्या का आधार ब्रह्म है और वह अविद्या के प्रतिकूल नही है। इसप्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि भ्राति मे डाल देने वाली अविद्या की उत्पत्ति का कोई भी समाधान सभव नही है। अविद्या मिथ्या ज्ञान की जननी है और यह मूलभूत तथा स्वय ब्रह्म की नित्य स्थायी तथा निष्पक्ष पवित्रता के होते हुए भी किसी-न-किसी प्रकार से लौकिक अस्तित्व मे प्रकट हो गयी है।

शकराचार्य के अज्ञान या अविद्या सिद्धात मे विषयनिष्ठ भाव तो है, साथ मे व्यावहारिक जगत के स्वरूप के सबध मे उत्पन्न होने वाले भ्रामक विचारो की चर्चा भी हुई है। यह भ्राति मन के भीतर की उपज मात्र है। शकराचार्य ने अनेक स्थानो पर जगत की विभिन्नता का उल्लेख किया है। उन्होने ईश्वर के कारण के रूप मे अविद्या को रखा है।[13] ब्रह्म स्वरूप पर अविद्या का कोई प्रभाव दृष्टिगत नही होता है क्योकि अविद्या तो अपूर्ण ज्ञान

---

10 वृहदारण्यक उपनिषद पर शाकर भाष्य 1 4 10

11 आश्रयत्वविषयत्वभागिनी निर्विभागचितिरेव केवला', सक्षेपशारीरक 1 319

12 डयूसस सिस्टम ऑफ द वेदात पृष्ठ 302

13 एकत्व पारमार्थिकम मिथ्याज्ञानविजृभित च नानात्वम।
शाकर भाष्य 2 1 14

से ही उत्पन्न होती है। ब्रह्म की प्राप्ति पूर्ण ज्ञान से होती है। जिसप्रकार दृष्टिदोष से ग्रस्त प्राणी को दो चद्रमा प्रतीत होते है जबकि वास्तव मे वह एक ही है। इस इद्रिय दोष का चद्रमा पर कोई प्रभाव नही पडता है। समस्त लौकिक यथार्थ जगत अपने नामो और स्वरूपो सहित जिन्हे न तो सत् कहा जा सकता है और न असत् अविद्या पर ही आधारित है। लेकिन उच्चतम यथार्थ सत्ता के रूप मे सत् बिना किसी परिवर्तन तथा परिणाम के अपनी सत्ता को स्थिर रखता है। एक ऐसा परिवर्तन जो केवल शब्दमात्र पर ही निर्भर करता है, यथार्थ सत्ता की अविभाज्यता मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही कर सकता है।[14]

सृष्टि की रचना और ईश्वर से सबधित समस्याओ पर विचार करते हुए शकराचार्य यह स्थापित करते है कि जब तत्त्वमसि शब्द से अभिन्नता की चेतना जाग्रत होती है तभी आत्मा के जन्म मरण का चक्र और ईश्वर का सृष्टि रचना व्यापार बद हो जाता है। विखण्डन के लिए जगत की समस्त उत्सुकता मिथ्याज्ञान के कारण उत्पन्न होती है। निर्दोष सत्यज्ञान से वह नष्ट हो जाती है। सृष्टि रचना पर विचार करते हुए शकराचार्य मानते है कि पाप और पुण्य कर्मो से युक्त ससार मिथ्या है। यह अविद्या से उत्पन्न निर्णयो मे भेदभाव नही करने से प्रगट होता है। मिथ्याज्ञान या अज्ञान जीवन और मरण के समान, कोई अस्तित्व नही रखता है।[15] अनेकत्व के अश से जिस अविद्या का जन्म होता है वह नाम-रूप से युक्त है विकसित और अविकसित दोनो है, भावात्मक और अभावात्मक दोनो नही है। समस्त जगत का आधार ब्रह्म है।[16] जगत मे जो अनेकत्व दिखता है, वह मानव की अविद्या के कारण है। समस्त परिवर्तन और गति, उत्पत्ति और विकास, विज्ञान तथा कल्पना वस्तुत स्वप्न और छाया मात्र है। शकराचार्य का मानना है कि ब्रह्म मे जगत का अध्यास है, जिसप्रकार रस्सी मे साप का होता है। अधेरे मे रस्सी को साप समझकर मानव भय से कॉपता है और उससे दूर भागता है। परतु सत्यज्ञान होने पर वह भय को त्यागकर भागना बद कर देता है। भ्रमवश रस्सी को साप समझने के भाव से या फिर उस भाव के दूर हो

---

14 शाकर भाष्य 2 1 31 2 1 14 2 3 46 2 1 27

15 अविद्याकृत कार्यप्रपञ्चम ।

शाकर भाष्य 1 3 1

16 शाकर भाष्य 2 1 27

जाने से रस्सी का कुछ बनता-बिगडता नही है।[17] तारे टिमटिमाते हुए प्रतीत होते है, जबकि यथार्थ मे ऐसा नही होता। वे जिस प्रकाश किरण को छोडते है वह तो स्थिर है, किंतु पृथ्वी के वायुमण्डलीय विक्षेप के कारण तारे टिमटिमाते हुए प्रतीत होते है। ठीक ऐसे ही ब्रह्म मे अस्थिरता देखना मानसिक भ्रम है। यह हमारी विकृत दृष्टि के कारण है।[18] इसप्रकार समस्त भेद मानवीय कल्पना से उत्पन्न मृगतृष्णा की तरह है। यह भेद एक त्रिपार्श्व कॉच की तरह है जो विशुद्ध एकत्व को विविध कर देता है। यथार्थ मे विविधता तथा उसका बोध प्राप्त करने वाला मन दोनो ही भ्रमपूर्ण है। शकराचार्य स्पष्ट करते है कि इन दृष्टातो का प्रयोग कुछ समानताओ को स्पष्ट करने के लिए किया गया है न कि सर्वथा तादात्म भाव दिखाने के लिए।[19]

(III) जगत की उत्पत्ति मे अज्ञान की भूमिका

अनेक वेदातियो ने जगत की विषयनिष्ठ व्याख्या की चेष्टा की है। वाचस्पति मिश्र का मानना है कि अविद्या का सबध प्रमाता, अर्थात् विषयी से है तथा यह ऑख के ऊपर आयी झिल्ली के समान विषय के स्वरूप को आवृत करती है – जीवाश्रय ब्रह्मविषयम्। उनके अनुसार ब्रह्म के विभिन्न रूप से अध्यस्त होने वाले अत करण का कारण अविद्या है। इसप्रकार परिवर्तनो तथा उनके विषयो के अस्तित्व को स्वीकार करना होता है। मधुसूदन सरस्वती के अनुसार, अज्ञान इस भ्रातिपूर्ण जगत का कारण है, इसी से ब्रह्म को जगत का उपादान कारण समझा जाता है।[20] चित्सुखी, अद्वैत सिद्धात मुक्तावली तथा योगवाशिष्ठ आत्मवाद का समर्थन करते हुए कहते है कि हमारा चैतन्य ही जगत की उत्पत्ति करता है। इसीलिए विषयी विषय सबधी चैतन्य के विलोप होने के साथ ही यह जगत असत् के रूप मे

---

17 शाकर भाष्य 1 4 6 कठोपनिषद पर शाकरभाष्य 3 14

18 शाकर भाष्य 2 3 46

19 शाकर भाष्य 3 21 17 19

20 अस्य दैत्येन्द्रजालस्य यद उपादानकारणम ।
अज्ञान तदुपाश्रित्य ब्रह्म कारणमुच्यते ।।
अद्वैतसिद्धि पृष्ठ 238

परिवर्तित हो जाता है।[21] इन विचारधाराओ का समर्थन न केवल भारतीय विचारको द्वारा, अपितु पाश्चात्य चितको द्वारा भी किया गया है। एडवर्ड केयर्ड के अनुसार ब्राह्मण धर्म केवल बहुदेववाद तक सीमित है, जो जगद्भिन्नत्त्ववाद के रूप मे आता है। इसके द्वारा एकत्त्व की ओर बढा गया। जगदभिन्नत्त्ववाद वस्तुओ के अनेकत्त्ववाद की व्याख्या नही है, बल्कि यह एक ऐसा माध्यम है जो वस्तुओ के समस्त भेद को नष्ट करता है।[22] यद्यपि व्यावहारिक जगत जीवन का दुखात परिहास है। यह प्रत्येक निर्दोष व्याख्या से प्रतिद्वद्विता करता है।

शकराचार्य का मानना है कि अविद्या स्वय मे साख्य के प्रधान की भॉति, जड होने से जगत का कारण नही है। इससे अविद्या द्वारा जगत सबधी रचना का समर्थन सभव नही है। साथ ही उन्होने बौद्धमत की कार्य कारण सबधी श्रृखला की समालोचना की है जो कि अविद्या को साथ लेकर चलती है। उनके अनुसार, अविद्या चैतन्य रूप विषयी के मन की काल्पनिक वस्तु है। यह बारह कडियो की कार्य-कारण श्रृखला मे सर्वप्रथम कडी है। यही अत मे मन और देह का स्वत सिद्ध पुजरूप होता है। यह एक विचार है इसे मान लेना होता है।[23] शकराचार्य ने शून्यवाद' अर्थात् किसी का भी अस्तित्व नही है न ही प्रकृति और न मन का के सिद्धात को नही माना है।[24] उन्होने क्षणिकवाद[25] तथा विज्ञानवाद का भी खण्डन किया है। उनका मत है कि जीवन मानव की मानसिक वृत्तियो पर निर्भर नही करता है। जब जगत ज्ञानस्वरूप होता है तब अध्यात्म सबधी तथ्यो की प्राप्ति होती है। इसीतरह जाग्रत अवस्था के अनुभव को स्वप्नावस्था के अनुभव के स्तर से नष्ट करने पर वे समस्त प्रयत्नो को भी अस्वीकार कर देते है। शकराचार्य के दर्शन मे अविद्या केवल अधिकरणनिष्ठ शक्ति न होकर विषयगत वास्तविकता रखती है। एक प्रसिद्ध श्लोक मे जिसे सिद्धातरत्नमाला मे

---

21 सर्वसिद्धातसार सग्रह 12 17 19

22 एडवर्ड केयर्ड एवोल्यूशन ऑफ रिलीजन खण्ड 1 पृष्ठ 263

23 शाकर भाष्य 2 2 19

24 वही 2 2 31

25 वही 2 2 18 21 26

उद्धृत किया है लिखा है – आत्मा ईश्वर, विशुद्ध चैतन्य प्रथम दो का परस्पर भेद अविद्या और विशुद्ध चैतन्य के साथ इसका सबध – ये छह पदार्थ अनादि है। इस समस्त व्यावहारिक जगत का कारण अविद्या है, जो सबके लिए समान अर्थात् सर्वसाधारण है। अविद्या का स्वरूप विध्यात्मक है। विषयरूप शक्ति है जो अनादि है।[26] यह स्थूल तथा सूक्ष्म दोनो है।[27] क्रियात्मक रूप मे अविद्या माया और प्रकृति सब एक है।[28]

शकराचार्य तर्क देते हुए कहते है कि ब्रह्म की सर्वोपरि वास्तविकता जगत का आधार है। यदि ब्रह्म जगत से आत्मा की जाग्रत स्वप्न तथा निद्रा अवस्थाओ से, सर्वथा भिन्न है तो जगत की वास्तविकता के खण्डन द्वारा भी सत्य ज्ञान की प्राप्ति असभव है। यहॉ शून्यवाद को मानकर समस्त ज्ञात को निष्प्रयोजन मानना होगा।[29] भ्राति अवस्था मे साप की उत्पत्ति शून्य से नही होती है। भ्राति खत्म होने पर भी यह विश्वास नही रहता कि वह नही था। अत भ्रम तार्किक और मनोवैज्ञानिक माया है, आध्यात्मिक नही है। विश्व का अनेकत्त्व स्वरूप निर्णय की भूल है। भूल सुधार के लिए मत परिवर्तन होना आवश्यक है। जो रस्सी साप के रूप मे प्रतीत होती है भ्राति समाप्त होने के साथ ही अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेती है। इसीप्रकार व्यावहारिक अनुभव जगत का ब्रह्म के अतर्ज्ञान मे स्वरूप परिवर्तन होता है। शकराचार्य ने जगत की नये सिरे से व्याख्या तो की है लेकिन निराकरण नही किया है।

जीवमुक्ति, क्रममुक्ति, योग्यताओ मे परस्पर भेद, सत्य और भ्राति का भेद, पाप

---

26 अनादि भावरूप यद विज्ञानेन विलीयते ।
तद ज्ञानमिति प्राज्ञा लक्षण सम्प्रचक्षते ।।

चितसुखी 1 13

27 आत्मन्यविद्या सानादि स्थूलसूक्ष्मात्मना स्थिता ।

सर्वसिद्धातसारसग्रह 12 19

28 लोकाचार्य तत्त्वत्रय पृष्ठ 48

29 यदि हि व्यवस्थात्मविलक्षण तुरीयम अयत तत्प्रतिपत्ति द्वारा भावात शास्त्रोपदेशानर्थक्य शून्यतापत्तिर्वा।

माण्डूक्योपनिषद पर शाकर भाष्य 2 7

और पुण्य का भेद व्यावहारिक जगत द्वारा मोक्षप्राप्ति-विषय की भ्राति और प्रतीति के भीतर यथार्थ स्वरूप के साथ विद्यमान रहते है। ब्रह्म जगत स्वरूप न होकर भी उसमे विद्यमान है। अनुभव जगत को मायास्वरूप और ब्रह्म से असबद्ध मान ले तो भी प्रेम ज्ञान तथा त्याग से विकसित जीवन की प्राप्ति असभव हो जायगी। शकराचार्य पुण्य आचरण को स्वीकारते हुए उसके द्वारा निरपेक्ष परम ब्रह्म के साक्षात्कार की बात कहते है। जगत मायारूप न होकर अयथार्थ है। जीव मे मिथ्यात्त्व के निराकरण से मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह मात्र अभावात्मक ही नही है। यह मिथ्यात्त्व आत्मा के स्वरूप के प्रतिकूल है।

ब्रह्म की सत्ता को अस्वीकार करने पर व्यावहारिक जगत तथा भ्राति की सत्ता का भी खण्डन हो जाता है। ऐसी स्थिति मे जगत की मूल यथार्थ सत्ता का खण्डन करके उसे निराधार मानना होगा। ब्रह्म के साथ किसी भी अन्य यथार्थ सत्ता को स्वीकार नही किया जा सकता है। शकराचार्य ने यह स्वीकार किया है कि मानव व्यावहारिक जगत के माध्यम से यथार्थ को प्राप्त कर सकता है क्योकि इसमे वास्तविकता के लक्षण स्पष्टतया रहते है। यद्यपि यह शकराचार्य का परस्पर विरोधी मत है। उन्हे यथार्थ और आभास मे सबधी को स्वीकारने वाले भी नही मानते है।

यह समस्त जगत निरपेक्ष ब्रह्म न होकर भी उस पर आश्रित है। जगत का आधार यथार्थ होता अवश्य है, किंतु वह स्वय अयथार्थ होने के कारण व्यावहारिक ही माना जाता है। इसीलिए व्यावहारिक जगत ब्रह्म के समान सत्य नही है आभास अवश्य सत्य है। इन समस्त प्रस्तुतियो से जगत की क्रियात्मक यथार्थता का प्रतिपादन तो होता ही है।

शकराचार्य परमवस्तु के मूर्तरूप को अस्वीकार करते है। इसीकारण उन्होने जगत को निष्प्रयोजन कहा है। ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है इसके अतिरिक्त अन्य किसी सत्ता का अस्तित्त्व नही है। शकराचार्य के अनुसार, ब्रह्म तथा जगत के सबध की तार्किक विधि से व्याख्या नही हो सकती है। साथ ही यह भी सत्य है कि यदि ब्रह्म और जगत एक सपूर्ण इकाई के रूप मे एक दूसरे के पूरक नही है तो प्रतिकूल भी नही है। वास्तविकता और आभास का सबध सीमित शक्ति से युक्त व्यक्तियो की समस्या है। मानव ज्ञान को भ्रातिपूर्ण मानकर दूषित नही कहा जा सकता है। इसके द्वारा समस्त परमार्थरूप क्रियाओ से ढॅके आवरण को हटाने मे असमर्थ है।

ब श्रीअरविद का अज्ञान सिद्धात

शकराचार्य ने ब्रह्म की स्थापना के साथ जगत के आभास को अज्ञान तत्त्व से जोडते हुए उसके भ्रातिपूर्ण अस्तित्व की व्याख्या किया है। वही श्रीअरविद ने अज्ञान के विषय मे शकराचार्य से असहमति जताया है। इसलिए श्रीअरविद के अज्ञान सबधी विचारो को पहले समझ लेना आवश्यक है।

(1) अज्ञान का अर्थ

नवीन वेदात के व्याख्याता श्रीअरविद ब्रह्म और जगत दोनो को सत्य मानते है। उन्होने इन दोनो को तात्त्विक रूप से अभिन्न बताया है। शुद्ध सत् अनिर्वचनीय तथा अवर्णनीय परमतत्त्व की अभिव्यक्ति सच्चिदानद कही जाती है। सच्चिदानद वस्तुत एक अविभक्त तथा एकीभूत चैतन्य है, जिसकी रचनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम अतिमानस है। यह अतिमानस स्वय के आत्मज्ञान से सच्चिदानद मे अतर्निहित अनत सभावनाओ को जानता है तथा रचनात्मक सकल्प से उन सभावनाओ को उपलब्ध कराने मे प्रयासरस रहता है। अत जगत सच्चिदानद के समान ही तत्त्वत सत् है।

श्रीअरविद ने शकराचार्य की भॉति जगत को मिथ्या, भ्रम या अध्यास नही कहा है। उन्होने ब्रह्म तथा जगत दोनो को सत्य मानते हुए सृजनात्मक सिद्धात के रूप मे ज्ञान या चैतन्य के विपरीत अज्ञान या अविद्या की सत्ता को स्वीकार नही किया है। परतु उपनिषदो मे वर्णित ब्रह्म मायावी है तथा प्रकृति माया है।[30] इसके साथ ही ब्रह्म माया के सहारे नानारूप ग्रहण करता है।[31] यहॉ श्रीअरविंद को दो समस्याओ का सामना करना पड़ा है। पहला यह कि वेदो मे ब्रह्म को अनिर्वचनीय, अवर्णनीय, निराकार और अपरिवर्तनशील कहा गया है वही उपनिषदो मे ब्रह्म को – एकोवशी सर्वभूतातरात्मा, एक रूप बहुधा य करोति' या अयमात्मा सर्वेषा भूतानामधिपति' कहा गया है। ऐसी स्थिति मे ब्रह्म को एकमात्र सत्य मानकर जगत को भ्रम कहना उचित नही लगता है।

---

30 श्वेताश्वतर उपनिषद 4 10

31 वृहदारण्यक उपनिषद, 2 5 19

दूसरी समस्या यह है कि जगत की उत्पत्ति अविद्या से (उपनिषदो द्वारा भी अनुमोदित) मानने पर इस जगत को ब्रह्म से उद्भूत नही माना जा सकता है। अज्ञान को ज्ञान का विपरीतार्थक नही कहा जा सकता। निस्सदेह यह जगत अज्ञान का परिणाम है। जिसका तात्पर्य जगत के स्वरूप से विपरीत सच्चिदानद का स्वरूप नही है। अज्ञान ज्ञान की शून्यता नही अपितु प्रच्छन्न ज्ञान है।

श्रीअरविद दर्शन मे अविद्या सर्जनात्मक जगत की मुख्य कारिका शक्ति के रूप मे नही रखी गयी है। वह गौण अथवा व्युत्पत्तिक शक्ति के रूप मे है। यदि अविद्या को ब्रह्म की एक शक्ति समझा जाय जिसप्रकार वेदात के आचार्यो ने समझा था तो ब्रह्म का मूल स्वरूप एकीभूत तथा अविभक्त सिद्ध हो पायेगा। यदि इसे बनाये रखने का प्रयास किया जाय तो शकराचार्य के समान अविद्या के स्वरूप की व्याख्या करने के स्थान पर उसे अनिर्वचनीय कहना होगा।[32] इसीकारण श्रीअरविद ज्ञान से भिन्न अज्ञान के अर्थ को नही मानते है। अज्ञान या अविद्या कितनी ही सीमित विभक्त या विकृत हो, अतिम विश्लेषण मे वह ज्ञान ही सिद्ध होता है।

श्रीअरविद ने जगत को अतिमानस के अज्ञान मे निमज्जन का परिणाम बताया है, अर्थात् अज्ञान अतिमानस से भिन्न एक अनिर्वचनीय तत्त्व अथवा ज्ञानस्वरूप परमतत्त्व का विरोधी नही अपितु ज्ञान की सीमित एकागी तथा विभेदकारी अभिव्यक्ति है। जब चेतन शक्ति स्वय को सीमित करती है, रोकती है या एक विशेष दिशा मे सचालित है, तभी अज्ञान की उत्पत्ति होती है। यह ज्ञान से पृथक और स्वतत्र कदापि नही है।

सक्षेप मे कहा जाय तो अज्ञान विशेष दिशा मे एक विशेष प्रयोजन से, चेतना की एकातिक गति है। यह चेतन शक्ति की एकातिक एकाग्रता है। यह चेतना का बहिष्कार कदापि नही है। श्रीअरविद के अनुसार, आत्मा तथा समस्त के सबध मे यह प्रकृति की उद्देश्यमूलक विस्मृति है। उन समस्त को उन्होने पीछे छोड दिया, जिससे अस्तित्व की बाह्य क्रीडा मे एकातिक रूप से कार्य किया जा सके। अत अज्ञान न ज्ञान के विपरीत है न विश्वात्मक है और न ही व्यक्तिगत है। यह एक विशेष अवस्था है जो चेतन शक्ति के एक

---

32 अभयचद्र भट्टाचार्या श्रीअरविंद दर्शन पृष्ठ 63

विशेष दिशा मे एक विशेष प्रयोजन से कार्य करने पर उत्पन्न होती है। यह चेतन शक्ति की एकातिक एकाग्रता है जो एक विशेष दिशा मे गतिशील रहती है।

वस्तुत श्रीअरविद ने चित्शक्ति द्वारा विशेष उद्देश्य से स्वय को सीमित कर एक निश्चित दिशा मे गतिमान होने को, अज्ञान कहा है। चित् शक्ति की इस विशेष प्रक्रिया को उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। जब एक गणितज्ञ किसी विशेष गणितीय समस्या मे तल्लीन रहता है उस समय समस्या पर ही उसका ध्यान रहता है। ऐसे समय मे अपने अस्तित्त्व और स्वरूप के सबध मे वह नही सोचता है। उसके इस कार्य मे उसकी सत्ता तो गत्यात्मक रूप से विद्यमान रहती है किंतु इसकी चेतना एक विशेष दिशा मे विशेष उद्देश्य से ही कार्य करती है। यह आत्मविस्मृति या आत्मसकुचन गणितज्ञ की कमजोरी न होकर महान शक्ति है।

लेकिन कवि गणितज्ञ या योद्धा की आत्मलीनता तथा आत्मविस्मृति मे अतर है। अतिमानस की आत्मविस्मृति के कारण ही मानव मे अज्ञान की उत्पत्ति होती है, जो प्रपचात्मक तथा पारमार्थिक मानव के बीच भेद उत्पन्न करती है। कवि या गणितज्ञ स्वय की इच्छा से पुन आत्मलीन अवस्था से बाहर आ सकता है परतु प्रपचात्मक मानव स्वय की इच्छा से पारमार्थिक सत्ता को नही प्राप्त कर सकता है। दोनो का यह अतर अश और डिग्री मात्र का है। मानव भी आध्यात्मिक स्वरूप की प्राप्ति कर सकता है।

श्रीअरविंद ने परमतत्त्व को चित् या चैतन्य रूप मे स्वीकारने के साथ ही शक्तिस्वरूप भी माना है। इस चित् शक्ति को कुछ स्थानो पर चिन्मयी मॉ या काली कहा है तो कही पर तपस् कहा है। वैदिक शब्द तपस् परमतत्त्व की आत्मऊर्जामयी चेतन शक्ति है जो स्वय पर अथवा अपने विषय पर कार्य करती है। चित् शक्ति की इसी ऊर्जा का प्रयोग गणितज्ञ समस्या हल करने मे या सगीतप्रेमी सगीत साधना मे करता है। वस्तुत यह सत्ता की मूल क्रियात्मक शक्ति है। श्रीअरविद ने तपस् के चार रूपो को स्वीकार किया है

1 तपस् की मूल[33] एकाग्रशक्ति एक ओर अतिचेतन अक्षर चैतन्य मे तथा दूसरी ओर भौतिक निश्चेतना मे क्रमश आत्म-प्रकाशन और आत्म विस्मृति के रूप

---

33 अभयचद्र भट्टाचार्या श्रीअरविंद दर्शन पृष्ठ 69

मे रहती है।

2 तपस् की सर्वागीण[34] एकाग्रशक्ति, सच्चिदानद की अतिमानसिक एकाग्रता मे निहित है जो एक साथ आत्म ज्ञान तथा जगत ज्ञान दोनो ही है।

3 तपस् की बहुमुखी[35] एकाग्रशक्ति अधिमानस की उस सवित् मे निहित है जो विश्वव्यापी चेतना की विविध गतियो को धारण करती है।

4 तपस की पृथगात्मक[36] एकाग्रशक्ति सत्ता या गति के किसी एक क्षेत्र मे चेतना के एकातिक प्रयोग मे निहित है। वस्तुत तब अज्ञान या अविद्या की उत्पत्ति होती है जब सत्ता या गति के किसी विशेष क्षेत्र पर चेतना एकातिक रूप से नियोजित या एकाग्र हो जाती है।

इस विवेचना से स्पष्ट है कि ब्रह्म के अतर्गत तपस्' निष्क्रिय और सक्रिय दोनो ही अवस्थाओ मे व्याप्त रहता है। अतिचेतन अक्षर चैतन्य और भौतिक निश्चेतना मे तपस् निष्क्रिय अवस्था मे होता है, जबकि सर्वागीण, पृथगात्मक तथा बहुमुखी चेतनाओ मे सक्रिय रूप मे रहता है।

(ii) अज्ञान का आश्रय

यहॉ अविद्या या अज्ञान के आश्रय को समझ लेना भी आवश्यक है। इसे समझने के लिए ब्रह्म या जीव या किसी और को आधार के रूप मे देखना होगा। यदि गूढ़ अर्थ मे जायॅ तो अज्ञान का आश्रय ब्रह्म ही माना जायगा, क्योकि अतिम विश्लेषण की अवस्था मे विश्व की समस्त अभिव्यक्ति ब्रह्म पर ही आश्रित है। लेकिन ब्रह्म को अज्ञान का आश्रय इसलिए नही माना जा सकता, क्योकि यह स्वरूपावस्था मे सक्रियता और निष्क्रियता से परे होता है। उसमे आत्मविस्मृति की सभावना भी नही होती है।

---

34 अभयचद्र भट्टाचार्या श्रीअरविंद दर्शन पृष्ठ 69

35 वही, पृष्ठ 69

36 वही पृष्ठ 69

जीव भी अज्ञान का आधार नही है, क्योकि वह ब्रह्म की वास्तविक अविस्थिति है। ऐसे मे यदि अज्ञान जीव पर आश्रित होता है तो किसी जीव मे अज्ञान को समाप्त करने या दूर करने की प्रेरणा नही होती। साथ ही ज्ञान प्राप्त करने की उत्कठा भी नही होती है। जब जीव चेतना के बाह्य स्तर पर होता है उस समय वह वृहत्तर चैतन्य से अलग हो जाता है। ऐसे मे अन्य जीवो तथा परमतत्त्व से स्वय के एकात्म को विस्मृत कर जाता है, किंतु चेतना की गहराई मे उतरने पर उसे इस एकात्म का ज्ञान होता है।

स्पष्ट है कि अज्ञान का आश्रय न ब्रह्म है और न ही जीव। अतिम विकल्प के रूप मे प्रकृति भी आश्रय नही है, क्योकि प्रकृति मे अतर्निहित सार सत्ता परम चैतन्य ही है। यहाँ पर श्रीअरविद ने बहुत सुदर शैली मे अपनी अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है – अविद्या की उत्पत्ति को तब हमे तपस् की किसी आत्मलीन एकाग्रता मे ढूँढना होगा – क्रियात्मक चेतन शक्ति के रूप मे देखना होगा जो शक्ति किसी पृथक् गति मे चल रही हो। किसी पृथक् शक्ति के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए मनस् उसकी गति से उत्पन्न हर आकार के साथ अलग-अलग तादात्म्य स्थापित करता है।'[37]

अर्थात् श्रीअरविद की दृष्टि मे अविद्या की उत्पत्ति न सच्चिदानद से, न अतिमानस से और न ही चित्शक्ति से हुई है। वह अपने आश्रय के रूप मे ब्रह्म, जीव ब्रह्म की अव्यक्त एकता या जीव की व्यक्त विभिन्नता मे किसी को भी स्वीकार नही करती है। वस्तुत अज्ञान चित्शक्ति या तपस् की आत्मलीन एकाग्रता से उत्पन्न होता है। इससे चेतना का प्रत्येक रूप विभिन्न दीवारो से इस तरह जुडा रहता है कि न तो पूर्ण चेतना की स्मृति रहती है और न ही अन्य चेतन आत्माओ और अतिमानस का चैतन्य रहता है।

वास्तव मे आत्मतल्लीनता या आत्मविस्मृति सपूर्ण सत्ता की तल्लीनता नही है और न ही सपूर्ण चेतना की तल्लीनता है। यह मात्र चित्शक्ति की आशिक क्रिया से उत्पन्न आशिक तल्लीनता है, जिसमे एकाग्रता के क्षुद्र विषय को छोडकर अन्य समस्त विषयो की विस्मृति है।

शुद्ध सत्, चित्त तथा आनद मे भी अज्ञान का समावेश नही है। अतिमानसिक स्तर

---

37 श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 690

पर भी इसकी उपस्थिति नही है। इन दोनो का अवस्थान पराप्रकृति की सृष्टि है। मानसिक स्तर पर अज्ञान क्रियान्वित रहता है। मनस् चेतना की विभाजनकारी शक्ति है। मनस् का कार्य ही विभाजित और विभेदित करना है परतु इन क्रियाओ की पृष्ठभूमि मे एकता का बोध सर्वत्र व्याप्त रहता है। इसमे मानसिक विभाजनो को एकीभूत चेतना मे ग्रथित करने की प्रक्रिया भी चलती रहती है। जब विभेदकारी मनस् और ऐक्य-सपादनकारी चेतना के मध्य परदा पडता है तभी अज्ञान की उत्पत्ति होती है। इसमे मनस् स्वय अपनी क्रियाओ के माध्यम से परदा तैयार करता है।

श्रीअरविद का मानना है कि अतिमानस की तीन स्थितियाँ है और इन्ही के अनुसार उनके कार्य भी है। यह तीन स्थितियॉ है – अवधारण चेतना (Comprehendıng Consciousness), प्रज्ञान चेतना (Apprehendıng Consciousness) तथा प्रक्षेपणकारी चेतना (Projectıng Consciousness)। अवधारण चेतना के माध्यम से ही सच्चिदानद का एकात्मक चैतन्य अतिमानस मे समान रूप से एकाग्र और परिव्याप्त रहता है। प्रज्ञान चेतना असमान एकाग्रता के कारण उस चैतन्य को अनत विभाजनो से अपने भीतर विभाजित कर देती है तथा प्रक्षेपणकारी चेतना उस अनत विभाजन मे भिन्न-भिन्न आत्म सलग्नता उत्पन्न करती है। इसीलिए अतिमानस की अतिम दो क्रियाओ के परिणामस्वरूप चित्शक्ति अभेद मे भेद का अर्थात् एकता के होने पर भी अनेकता का बोध कराती है।[38]

इस अवस्था मे सर्वप्रथम एकात्मक चेतना दूषित होती है क्योकि यहॉ पर विश्वात्मा या अध्यात्म सत्ता स्वय के परवर्ती स्तर अधिमानस स्वरूप मे अवतरित होती है। इस स्वरूप मे मूल एकात्मक चेतना के होने पर भी यह ऐक्य बोध उसके कार्यो को मुख्य रूप से सचालित नही करता है। अविद्या के कुछ चिह्न अधिमानस पर भी स्पष्टत परिलक्षित होते रहते है। इस अवस्था की अविद्या स्वभावत ज्यातिर्मय होती है, जिससे चित्शक्ति स्वय की एकातिक एकाग्रता से अतर्निहित सभावनाओ को स्वतत्र दिशाओ मे विकसित करती है। इस अवस्था से असख्य ईश्वर क्रियाशील प्रतीत होते है तथा प्रत्येक को अधिमानस परमब्रह्म के किसी न किसी शक्ति अथवा गुण से युक्त करता है। इस कारण ही ईश्वर को पृथक् रूप मे

38 अभयचद्र भट्टाचार्या श्रीअरविंद दर्शन पृष्ठ 72

महत्ता मिली ताकि वे अपने-अपने जगत का निर्माण कर सके। अतिमानस और अधिमानस के मध्य का परदा पारदर्शक रहता है। पर अज्ञान का यह आवरण रहता अवश्य है। इसीकारण अधिमानस अज्ञान की इस प्रगति को रोक नही पाता है। इसी से चित्शक्ति अवनति की ओर उतरकर स्वय को अधकार और तमस मे डाल लेती है।[39]

एकातिक एकाग्रता के फलस्वरूप मानसिक स्तर पर चेतना की मूल एकात्मकता के सबध से चित् शक्ति आत्मविस्मृत हो जाती है। यहॉ मनस् तथा अधिमानस के मध्य का परदा अतिमानस और अधिमानस के मध्य के आवरण की भॉति पारदर्शक नही होता है। श्रीअरविद ने इस आवरण को ओपक अथवा अपारदर्शक कहा है क्योकि इसी स्थान पर विश्वात्मक एकता का ज्ञान मनस् तक आने पर समाप्त हो जाता है किंतु चितशक्ति की अतिम अवनति मनस् की आत्म विच्छेदनकारी क्रिया द्वारा चेतना की महामोह की निद्रा मे अगाध समाधि मे पूर्णतया तल्लीन होने पर होती है। चेतना की यह महासुषुप्ति ही जड प्रकृति है और जड प्रकृति के सक्रिय होने के लिए यह महासुषुप्ति आवश्यक आधार है।

एकात्मक चैतन्य यद्यपि दृष्टि से अगोचर होता है, लेकिन वह स्वय चैतन्य मनस् को हर क्षण धारण भी किये रहता है। इसके माध्यम से ही मनस् का प्रत्येक कार्य सपादित होता है। वास्तव मे यह आत्मचेतन चित्शक्ति ही मनस् द्वारा अविद्या से आच्छादित होने पर भी समस्त कार्यो का प्रतिपादन स्वय ही करती है। समस्त विभिन्नताओ और विभाजनो के होने पर चित्शक्ति स्वय मे एक तथा अविभाजित है। श्रीअरविंद के शब्दो मे, अविद्या या अज्ञान स्वय को सीमित करने वाली ज्ञान की ही एक शक्ति है, जिससे हाथ मे आये काम पर निज को सलग्न किया जा सके। इस एकातिक एकाग्रता के रहते हुए भी पीछे की पूरी चेतन सत्ता का सपूर्ण अस्तित्त्व और क्रियाशीलता अवरुद्ध नही होती है। स्व-निर्वाचित और आत्म प्रवर्तित निर्धारको के भीतर ही वह कार्य करती है। आत्म-सीमितता को उस सत्ता के निरपेक्ष चैतन्य के साथ असबद्ध न समझकर इसे उस चैतन्य की एक शक्ति समझना चाहिए। इसे अनत की नानारूपात्मक शक्तियो के साथ बने रहने की आशा की जाती है।"[40]

श्रीअरविद यह भी कहते है कि एक शाश्वत सचेतन पुरुष है जो काल की क्रिया से

---

39 अभयचद्र भट्टाचार्या श्रीअरविंद दर्शन पृष्ठ 72

40 श्रीअरविद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 706

मुक्त स्थिर आत्म चेतना पर मन की गतिशील क्रियाओ को सहारा देता हैं और मन की क्रिया द्वारा उस गति मे निवास करता है। सत् ही मनोमय सत्ता के रूप मे क्षण-क्षण गति करता हुआ अपनी सारभूत आत्मा को देखे बिना केवल कालगति के अनुभवो के साथ अपने सबधो का अवलोकन करता हुआ उस गति मे भविष्य को अपने आप से दूर रखता हुआ जो अज्ञान और असत् की शून्यता प्रतीत होती है लेकिन है एक अनुपलब्ध पूर्णता। वर्तमान मे होने के ज्ञान और अनुभव को लेकर उसे अतीत मे इस तरह से सजोता है मानो वह भी अज्ञान और असत की शून्यता ही है। आशिक रूप से प्रकाशित और स्मृति द्वारा रक्षित एव सचित वह ऐसी वस्तु का रूप धारण करता है जो चचल और अनिश्चित है। वास्तव मे वह शाश्वत ही रहता है जो सदा अपने अतिमानसिक ज्ञान मे स्थिर तथा आत्मप्रतिष्ठित है। वह जिसे पकडता है वह भी सदा स्थिर और शाश्वत है क्योकि वह काल के अनुक्रम मे मानसिक रूप से अपने आपको ही अनुभव कर रहा है।[41]

श्रीअरविद के शब्दो मे, ऊपरी सत्ता हमारे भीतर की ज्यादा गहरी और शाश्वत आत्मा ही है, जो अपने आपको साहस-यात्रा के लिए, अनत सभावनाओ का जुआ और सट्टा खेलने के लिए बाहर प्रक्षिप्त करती है। अपने-आपको क्षणो के अनुक्रम मे सीमित करती है ताकि उसे अपनी साहस-यात्रा का पूरा पूरा कौतुक और आनद मिल सके। वह अपने आत्म-ज्ञान और आत्म-सत्ता को पीछे की ओर खीच लेती है, ताकि फिर से खोई और हारी हुई प्रतीत होने वाली चीजो को जीत सके। युगो की आकुलता और खोज के मिले-जुले सुख-दु ख के बीच मे से अपने पूर्ण स्वरूप को फिर से जीत सके।[42]

श्रीअरविद का मानना है कि सपूर्ण जगत हमारे भीतर ही निवास करता है, विचार करता है, अपने-आपको हमारे भीतर ही रूपायित भी करता है। किंतु हम यह कल्पना करते है कि हम अपने लिए अलग जीते, विचार करते और रूप धारण करते है। जिसप्रकार हम अपने कालातीत अपने अतिचेतन, अपने अतस्तलीय और अपने अवचेतन स्वरूपो के बारे मे अज्ञ है, उसी प्रकार अपने वैश्विक सत् के बारे मे भी है। हमारी सुरक्षा मात्र इसमे है कि

---

41 श्रीअरविंद दिव्य जीवन पृष्ठ 502

42 वही पृष्ठ 503

हमारा अज्ञान अतर्वेग से भरा है और शाश्वत तथा अप्रतिरोध्य रूप से, अपनी सत्ता के धर्म के अनुसार आत्मज्ञान के लिए प्रयास करता है। मानसिक सत्ता मनुष्य की चेतना की परिभाषा है – एक बहुमुखी अज्ञान जो व्यापक ज्ञान बनने का प्रयास कर रहा है। यदि उसे एक और दिशा मे देखने का प्रयास करे तो समान रूप से कहा जा सकता है कि यह वस्तुओ की सीमित और अलग करने वाली अभिज्ञता है जो पूर्ण चेतना और पूर्ण ज्ञान बनने के लिए प्रयत्न कर रही है।[43]

(iii) अज्ञान की उत्पत्ति एव रूप

श्रीअरविद का मानना है कि ज्ञान के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए अज्ञान के समस्त रूपो को समझना आवश्यक है। अज्ञान की उत्पत्ति चेतना के सिमटने मे, व्यक्ति चेतना पूर्ण चेतना से अलग है, ऐसा सोचने मे है। अर्थात् अज्ञान के विभिन्न रूपो को समझने के लिए हमे अपने सामान्य व्यावहारिक जीवन तथा अस्तित्व की जॉच करनी होगी। श्रीअरविद कहते है कि यदि अपने साधारण अस्तित्व अर्थात् अस्तित्व की सामान्य, भौतिक तथा कालगत विधा पर ध्यान केद्रित करे तो स्पष्ट होगा कि सामान्य जैविक चेतना मे मानव स्वय विभिन्न प्रकार के अज्ञान से घिरा है। यही आत्म अज्ञान है। महोपनिषद् का आधार ले तो अज्ञान के सात चरण तथा ज्ञान के भी सात चरण है। जिस अज्ञान से मानव ग्रस्त है वस्तुत वह सात तरह से हम पर परदा डालता है। इन्ही सप्त रूपो ने सत्ता का वास्तविक स्वरूप अवरुद्ध कर रखा है। इसीकारण ज्ञान का प्रकाश भी इन्ही सात तरह के अज्ञान से मुक्त होने पर निर्भर है। अज्ञान के सात रूप निम्नवत है

1 **प्राथमिक अथवा आद्य अज्ञान (Original Ignorance)**—सामान्यत अपने दैनिक जीवन मे हम जिन वस्तुओ से घिरे होते है, जिनके बीच हमारा वास होता है, उन्हे वास्तविक मान लेते है। मानव सामान्य जीवन इसी आधार पर जीता है कि भौतिक वस्तुएॅ, शरीरधारी जीव, वस्तुओ के मध्य स्थान तथा काल के सारे सबध वास्तविक है। श्रीअरविद का मानना

---

43 श्रीअरविद दिव्य जीवन पृष्ठ 558

है कि इसप्रकार के विचार सत् के विषय मे प्राथमिक या आद्य अज्ञान पर आधारित है। वास्तविक अवास्तविक स्वरूप के अज्ञान पर आधारित है। किंतु मानव को उस मूल निरपेक्ष सत् का अज्ञान है जो समस्त वास्तविक आभासित होने वाली वस्तुओ पर आधारित है। इसे ही श्रीअरविंद ने प्राथमिक या आद्य अज्ञान कहा है। यह समस्त अज्ञान का मूल आधार है।

2 **ब्रह्माण्डमूलक अज्ञान (Cosmic Ignorance)**—प्राथमिक अज्ञान निरपेक्ष सत् के स्वरूप का ज्ञान न होने से उत्पन्न है, जबकि ब्रह्माण्डमूलक अज्ञान मे जगत सबधी अज्ञानता को दर्शाया गया है। सामान्यत जिस स्थान और काल से युक्त जगत मे मानव निवास करता है उसे ही सत् तथा वास्तविक मानता है। इसीकारण जगत मे होने वाले परिवर्तनो को वास्तविक मान लिया जाता है किंतु श्रीअरविंद का कहना है कि परम तत्त्व के दो अभिन्न पहलू है – निश्चल और गतिशील। सामान्यत हम नही जानते कि इस विश्वव्यापी अनेकत्त्व का धारक विश्वातीत अक्षर चैतन्य है। जगत को गतिशील तथा परिवर्तनशील मानना जगत के वास्तविक स्वरूप के सबध मे अज्ञानता है। इसे ब्रह्माण्डमूलक अज्ञानता कहते है।

3 **अहकेंद्रित अज्ञान (Egoistic Ignorance)**—अज्ञान का यह स्वरूप आत्म के स्वरूप से सबधित है। सामान्यतया यह धारणा प्रचलित है कि शरीरधारी व्यक्ति ही वास्तविक आत्म है। 'अह के तथा मै के भाव को ही सब कुछ मान लिया जाता है। इसके साथ ही समस्त सत्ता तथा सारी गति के पीछे स्थित शुद्ध सत् के अस्तित्व को अस्वीकार किया जाता है। हम नही जानते कि बाह्य जगत वस्तुत हमसे पृथक अनात्मन् नही, बल्कि अभिन्न और अविच्छिन्न है। मानव अपने सीमित विचार, वैयक्तिक अस्तित्त्व को ही वास्तविक, सत् तथा अन्य वस्तुओ को 'अनात्मन्' समझता है। श्रीअरविंद के शब्दो मे "We take our limited egoistic mentality, vitality corprealıty for our tone self and regard everything other

than that as not self"[44] इसी समझ को श्रीअरविंद ने अहकेद्रित अज्ञान नाम दिया है।

4 **सामयिक अज्ञान (The Temporal Ignorance)**—श्रीअरविद ने यहाँ पर मानव के स्वय के सबध तथा नित्य और शाश्वत स्वरूप के सबध मे अज्ञान को स्पष्ट किया है। इसी अज्ञान के कारण मानव जन्म से मृत्यु तक की अवस्था को ही सब कुछ मान लेता है। मात्र यही तक उसके अस्तित्व की सीमा है। इसी सीमित सोच एव धारणा के कारण मानव सपूर्ण जीवन के प्रत्येक काल, प्रत्येक क्षण तथा प्रत्येक स्थिति को आत्म अस्तित्व का प्रमुख अश मान लेता है। इस ओर ध्यान ही नही जाता कि मानव की वास्तविक सत्ता कालिक क्षणो तथा स्थानो की यथास्थितियो मे सीमित नही होती है। यह काल की गलत धारणा मे स्थित अज्ञान है। इसीकारण श्रीअरविद ने इसे कालिक या सामयिक अज्ञान कहा है।

5 **मनोवैज्ञानिक अज्ञान (The Psychological Ignorance)**—प्राय मानव अपने साधारण आचरण तथा व्यवहार को वास्तविक जीवन और मूल आत्म-रूप के आचरण तथा व्यवहार को एक मानने लगता है। इन्ही व्यवहारो को जानने-समझने को आत्म के वास्तविक स्वरूप को समझने का दावा करता है। उदाहरण के लिए, मानव सामान्यत जीवन मे इद्रिय अनुभव को अधिक महत्त्व देता है किंतु इद्रिय जीवन अत्यत सीमित और आशिक होता है। मानव यह समझने का प्रयास भी नही करता कि हमारी सत्ता के कुछ ऐसे मूल और वास्तविक आयाम है, जिन्हे इद्रियो' जैसी धरातली दृष्टि से जाना भी नही जा सकता। श्रीअरविद का मानना है कि मानव अपने जीवन मे इन ऊपरी धरातली क्रिया-व्यापारो मे तल्लीन हो जाने से इनके ऊपर की उपचेतनावस्था और परात्ममूलक चेतनावस्था जैसी सभावनाओ के बारे मे सोचने का काम भी नही करता है। यही मानव का अज्ञान है। इसे श्रीअरविद ने मनोवैज्ञानिक अज्ञान कहा है।

---

44 श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 583

6 **सघटनात्मक अज्ञान (The Constitutional Ignorance)**— श्रीअरविंद की मान्यता है कि अज्ञान का एक रूप साधारण मानवीय जीवन मे इसप्रकार सचरित होता है जिससे वह जीवन की वास्तविक सरचना से अनभिज्ञ रहता है अर्थात् मानव अपने भौतिक जीवन अथवा प्राण शक्तियो मानसिकता अथवा इन सबके सम्मिश्रण को ही स्वय के जीवन की वास्तविक सरचना मानता है। मानव की वास्तविक सरचना शरीर प्राण तथा मन से है किंतु इस तथ्य को नही जान पाते है कि मानवीय सरचना की गहराइयो मे इन तीनो के अतिरिक्त कुछ और भी तत्व है। इसीलिए मानव यह भी नही समझ पाता है कि शरीर, प्राण मन आदि की शक्ति भी हमारी उन्ही वास्तविक गहराइयो मे स्थित शक्ति है। इस सामान्य अज्ञान को श्रीअरविद ने सघटनात्मक अथवा राचनिक' अज्ञान कहा है।

7 **व्यावहारिक अज्ञान (The Practical Ignorance)**—श्रीअरविद की मान्यता है कि उपर्युक्त अज्ञानो के कारण मानव अनत के साथ एकतान मे रहना नही जान पाता है और हमारा व्यावहारिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। मानव का जीवन कुछ अर्थो मे अर्थहीन और लक्ष्यहीन लगने लगता है क्योकि जीवन के वास्तविक लक्ष्य का ज्ञान न होने से मानव जीवन की दिशा को निश्चित नही कर पाता है। फलत व्यावहारिक जीवन भ्रम मे और अनर्गल कार्यो मे ही उलझा रहता है। इससे जीवन दु खमय, कष्टपूर्ण तथा अर्थहीन बन जाता है।[45] मानव उस शक्ति को खो देता है

---

45 As a result of all these ignorances (the six mentioned above) we miss the true knowledge, government and enjoyment of our life in the World, we are ignorant in our thought will sensations actions, return wrong or imperfect response at every point of the questioning of the World wander in a maze of errors and desires, strivings and failures, pain and pleasure, sin and stumbling follow a crooked road, grope blindely for a changing goal - that is the seventh, the Practical Ignorence

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 584

जिसके द्वारा अपने मानवीय अस्तित्व को दिव्य जीवन की अभिव्यक्ति हेतु उपयुक्त बना सके। मानवीय जीवन को पवित्र आनद के एक छद मे परिवर्तित कर सके। यही व्यावहारिक अज्ञान है।

(iv) जगत की उत्पत्ति मे अज्ञान की भूमिका

श्रीअरविद ने अतिमानस के अज्ञान मे निमज्जन को सपूर्ण व्यावहारिक जगत कहा है। सृजनात्मक तत्त्व अतिमानस स्वय को अज्ञान, अधकार और एक सीमा मे निवर्तित कर देता है। इसीकारण जगत फिर से अज्ञान और अधकार से ज्ञान और प्रकाश मे बदलता तथा विकसित होता है। श्रीअरविद का मानना है कि पूर्ण आत्माभिव्यक्ति मे पूर्ण आत्म-चेतना के साथ भी अतिमानस की सृष्टि होती है। परतु वह सृष्टि की ऐसी उच्चतम अभिव्यक्ति है, जिसे नित्यधाम आदि कहकर हमारे आत्मज्ञ ऋषियो ने वर्णित किया है। यह सामान्य व्यावहारिक मानवीय जगत ज्ञान तथा अज्ञान का मिश्रण है। इस प्रकाश तथा अधकार के मिश्रण से युक्त जगत की उत्पत्ति का एकमात्र कारण अविद्या ही है।[46]

श्रीअरविद ने परम तत्त्व के इस अज्ञान मे निमज्जित होने का एकमात्र कारण आनद को माना है। यदि मानव परम सत् अखण्ड सच्चिदानद के आत्मस्थित, आत्मलीन तथा आत्मचरितार्थ स्वरूप को देखे तो उसके लिए किसी इच्छा प्रयोजन या उद्देश्य का प्रश्न ही नही रह जाता है। सृजनात्मक प्रेरणा का कोई आभास उस आत्म-चरितार्थ आनद मे नही प्राप्त होता है। फिर भी जब परिवर्तनशील जगत पर ध्यान आकृष्ट होता है, तो सत्ता की अनत सभावनाओ की विविध पूर्तियो मे सत्ता का वही आनद सभूति के आनद के रूप मे सर्वत्र परिव्याप्त दिखता है। जगत-सृष्टि आनद की ही अभिव्यक्ति है। सृष्टि का प्रयोजन आनद है। अपनी इच्छा से असीम और अनत सत्ता इस ससीम तथा सात जगत मे इस अज्ञान और अधकार मे निमज्जित होती है। यह उस परम तत्त्व का सपूर्णत आनद का खेल है।[47]

---

46 अभयचद्र भट्टाचार्या श्रीअरविंद दर्शन पृष्ठ 64 65

47 वही पृष्ठ 65

उपर्युक्त विवेचन मे श्रीअरविद के अज्ञान के स्वरूप आश्रय उत्पत्ति तथा जगत की उत्पत्ति मे अज्ञान की भूमिका का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस विवेचन से ज्ञात होता है कि श्रीअरविद ने अविद्या को उस अर्थ व्याख्यायित नही किया है, जिस अर्थ मे शकराचार्य ने किया है। शकराचार्य ने ज्ञान और अज्ञान को विरोधात्मक रूप मे स्वीकार किया है। शाकर-वेदात मे विद्या का अर्थ अविभेदित एकता है, एक ऐसी शक्ति जो अविभेदित ब्रह्म-चैतन्य मे असत् जगत का अध्यास उत्पन्न करती है। शकराचार्य ने अज्ञान सिद्धात को परम सत् ब्रह्म और पूर्णतया असत् जगत को मिलाने वाली कडी के रूप मे स्वीकार किया है और यह सिद्धात स्थापित किया है कि ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है विविधता से भरा हुआ यह सपूर्ण जगत मिथ्या है।

इसके विपरीत श्रीअरविद ने ब्रह्म और जगत दोनो को सत्य और अभिन्न माना है। इसीलिए सृजनात्मक सिद्धात के रूप मे अज्ञान को ऐसी काल्पनिक शक्ति नही माना है, जो ज्ञान और चैतन्य से पूर्णत भिन्न हो। उन्होने अज्ञान को ज्ञान का बहिष्कार नही माना है अपितु प्रच्छन्न ज्ञान के रूप मे स्वीकार किया है। श्रीअरविद के अनुसार, अज्ञान अतिम ज्ञान ही है चाहे वह कितना ही सीमित विभक्त या विकृत क्यो न हो?

यहॉ श्रीअरविद के विचारो से विरोध व्यक्त करते हुए शकराचार्य के अनुयायी प्रोफे मलकानी का कहना है कि श्रीअरविद ने मायावाद को अस्वीकार करते हुए अज्ञान को स्वीकारा है। लेकिन यदि यह सपूर्ण विश्व चैतन्यमय ब्रह्म की वास्तविक अभिव्यक्ति है तो यहॉ अज्ञान की उत्पत्ति असभव होगी। मायावाद को स्वीकारने से यह समस्या नही उत्पन्न होती है।

कितु ध्यान देने की है कि प्रस्तुत आलोचना जगत के बौद्धिक विश्लेषण पर आधारित है। मानवीय बुद्धि तथा तर्क द्वारा चेतन और अचेतन के सबध की व्याख्या असभव है। यहॉ भी शकराचार्य के अनुयायी प्रोफे मलकानी ने बौद्धिक तर्क का सहारा लिया है जो ब्रह्म और जगत के सबध को अस्पष्ट बना देता है।[48] श्रीअरविद ने मायावाद को बौद्धिक या मानसिक तर्क पर आधारित माना है किंतु बुद्धि से अखण्ड सच्चिदानद का

---

48 अभयचद्र भट्टाचार्या श्रीअरविंद दर्शन पृष्ठ 88

अनुभव सभव ही नही है। बौद्धिक ज्ञान स्वय अज्ञान मे समाहित है। श्रीअरविद परम तत्त्व को व्याख्यायित करने के लिए बौद्धिक तर्क के स्थान पर अनत के तर्क का सहारा लेते है। इसके द्वारा प्रत्यक्ष तथा सादृश्य के माध्यम से साक्षात ज्ञान की प्राप्ति सभव है। इस तर्क के अनुसार पूर्ण से पूर्ण निकालने पर पूर्ण ही शेष रहता है। इसी अनत के तर्क द्वारा श्रीअरविद ने अज्ञान की व्याख्या की है।

यह सत्य है कि श्रीअरविद का जगत सबधी विचार मूलत बुद्धि पर आधारित है कितु सत्ता-सबधी विचार मे बुद्धि से परे जाने मे भी वे हिचकते नही है। उन्होने जब बुद्धि की परिधि मे चेतना के विभिन्न स्तरो पर ध्यान दिया तो इस जगत मे चितशक्ति के विकसनशील होने का बोध हुआ साथ ही मानव की अपूर्णता और सीमितता का बोध भी हुआ। इससे मानव मे पूर्णता और अनतता के अतर्निहित होने का ज्ञान प्राप्त होता है। इस बुद्धि ज्ञान के लिए अनत के तर्क का सहारा लेना पडता है।[49]

हेगलीय दर्शन के समान श्रीअरविद भी मानते है चेतना विकसित नही होती है, यह समस्त जीवो मे पूरी तरह विकसित है। सिर्फ अज्ञान के आवरण से प्रकाशित नही हो पाती है। इसीकारण मुक्ति हेतु भी चेतना के विकास की नही अज्ञान के बधनो से मुक्त होने की आवश्यकता है। श्रीअरविद ने सर्वमुक्ति की धारणा को स्वीकृति दी है, जो वेदात की पारपरिक धारणा के विपरीत है।

सारत श्रीअरविद का अज्ञान सबधी विचार शकराचार्य और वेदात से जितना भिन्न है, सभवत आपात दृष्टि से उतनी कल्पना भी नही की जा सकती है। श्रीअरविंद ने अपने दर्शन मे वेद उपनिषद आदि के प्रमाण रखते हुए भी परपराहीन विचारो का समावेश सर्तकता से किया है। यह उन्हे वेदात के मौलिक दर्शन से कुछ दूर ले जाकर खडा करता है।

□□□

---

49 अभयचद्र भट्टाचार्या श्रीअरविंद दर्शन पृष्ठ 90

षष्ठ अध्याय

मायावाद की मूल्य-मीमासा के संदर्भ में शकराचार्य और श्रीअरविंद के विचार

अ शकराचार्य के अद्वैतवाद मे परम मूल्य

(i) माया

(ii) आत्मन्

(iii) मनुष्य को परम मूल्य के रूप मे प्राप्तव्य (धर्म, अर्थ, काम मोक्ष)

(iv) मोक्ष मार्ग

(v) आत्मन् एव ब्रह्म का सबध

ब श्रीअरविद के अनुसार परम मूल्य

(i) दर्शनशास्त्र व्यवहार सिद्धात (मूल्य मापदण्ड)

(ii) मानवीय अभीप्सा

(iii) योग तथा तत्र का प्रभाव

(iv) मानव-चक्र के तीन स्तर

(v) परम मूल्य का स्वरूप

(vi) अतिमानस की प्राप्ति

(vii) नॉस्टिक बीइग का स्वरूप

(viii) प्रज्ञान पुरुष तथा जीवन्मुक्त के स्वरूप मे अतर

स शकराचार्य और श्रीअरविंद के परम मूल्य का तुलनात्मक विवेचन

षष्ठ अध्याय

मायावाद की मूल्य-मीमांसा के संदर्भ में शंकराचार्य और श्रीअरविंद के विचार

भारत मे दर्शन जीवन से कभी अलग नही रहा। भारतीय दर्शन की लगभग सभी शाखाएँ जीवन के व्यावहारिक पक्ष के बारे मे सोच-विचार करती रही है। इन सभी शाखाओ ने मानव जीवन के परम मूल्य एव आदर्श का निर्धारण तो किया ही है उन्हे प्राप्त करने के उपाय भी सुझाए है। दार्शनिक सिद्धातो को जितनी सुदृढ़ भूमि पर स्थापित करने के प्रयास हुए है उतना ही महत्त्व व्यावहारिक जीवन मे उन्हे अपनाने पर भी दिया गया है। जब तक मानव प्रकृति की एकरूपता सुख-दु ख एव क्षणिक-शाश्वत के अतर को समझता रहेगा तब तक दर्शन निश्चय ही सर्वोत्तम जीवन साधन के रूप मे बना रहेगा।

देखा जाय तो मानव जीवन सदैव गतिशील प्रक्रियात्मक तथा आगे की ओर बढने वाला रहा है। ऐसे मे जीवन तथा उसके नैतिक विकास के लिए परम मूल्य की प्राप्ति का लक्ष्य अत्यत आवश्यक है क्योकि जो लक्ष्य अभी प्राप्त नही हो पाया है, जो वास्तव मे प्राप्तव्य है, उसके लिए तो हमेशा क्रियाशील रहना पड़ता है। मानव की प्रगति और विकास के लिए किसी महत्त्वपूर्ण लक्ष्य को सचेत होकर प्राप्त करना अभीष्ट माना गया है। जीवन के परम मूल्य को प्राप्त करने मे नवीनता पुलक और सुख की अनुभूति होती है। साधारण मानव के लिए भारतीय दर्शन मे मूल्यो की स्थापना की गयी है। यह मूल्य वास्तव मे, मानव जीवन के व्यावहारिक आदर्श है। मूल्यो को ही पुरुषार्थ भी कहा गया है। इन पुरुषार्थो अर्थात् मूल्यो की सख्या चार है जो क्रमश इसप्रकार है – धर्म अर्थ काम और मोक्ष। यहॉ अर्थ से तात्पर्य सासारिक ऐश्वर्य से है। काम का तात्पर्य सासारिक इच्छाओ की पूर्ति से है। अर्थ, काम का साधन है। धर्म, नैतिक मूल्य के अर्थ को व्यक्त करता है। यहॉ

धर्म का अर्थ नैतिकता से है कितु मोक्ष का तात्पर्य आध्यात्मिक मूल्य है। मोक्ष की प्राप्ति का साधन नैतिक जीवन है। अतएव धर्म मोक्ष का साधन है। मोक्ष स्वय मे साध्य है।

मोक्ष को भारतीय दर्शन मे परम मूल्य स्वीकारा गया है। यह इसे पाश्चात्य दर्शन से अलग स्वरूप प्रदान करता है। पाश्चात्य दर्शन मे मानव जीवन का लक्ष्य नैतिक जीवन तथा मानवता की सेवा करना है, किंतु भारतीय चितको ने इसे केवल साधन मूल्य ही माना है। वस्तुत समस्त दु खो से आत्यतिक निवृत्ति एव जीवन मरण के चक्र से मुक्ति ही साध्य-मूल्य है जिसकी प्राप्ति मोक्ष से होती है। इसीकारण भारतीय चितक मानव जीवन के अध्ययन द्वारा तात्त्विक विवेचन तक सीमित न रहकर जीवन पद्धति का व्यावहारिक अध्ययन भी करते है। ऐसे मे मोक्ष ही उनके चितन का केद्रबिंदु है।

चितनशील मानव स्वय के जीवन के उचित अनुचित शुभ-अशुभ पक्ष पर विचार करके लक्ष्य या मूल्य का निर्धारण करता है। इसलिए भिन्न-भिन्न व्यक्तियो के, अपने विवेक के अनुसार मूल्य अलग-अलग हो सकते है। ऐसे मे कोई मोक्ष को, तो कोई अर्थ को मूल्य मानता है। लेकिन इस मायिक जगत मे मोक्ष को मूल्य के रूप मे स्वीकारने वाले को आस्तिक दर्शन का पक्षधर माना गया है। शकराचार्य और श्रीअरविंद दोनो ने मोक्ष को परम मूल्य माना है। दोनो के दर्शन मे इस परम मूल्य की प्राप्ति मे माया की महत्त्वपूर्ण भूमिका बतायी गयी है। इन दर्शन धाराओ का अलग-अलग विवेचन तथा मूल्याकन करना समीचीन होगा।

अ शकराचार्य के अद्वैतवाद मे परम मूल्य

शकराचार्य ने मायावाद के आधार पर परम मूल्य की स्थापना की है। माया द्वारा परम मूल्य की ओर बढना तत्कालीन परिस्थितियो की मॉग भी थी। शकराचार्य के समय मे बौद्ध धर्म का अपरिष्कृत रूप, मठो मे भ्रष्टाचार, कामवासना, भौतिकवाद की प्रधानता ने भारतीय समाज तथा दर्शन दोनो को ही प्रदूषित कर दिया था। इन परिस्थितियो को शकराचार्य ने आकर सभाला। इन्होने समस्त वेदो तथा उपनिषदो पर भाष्य लिखकर जनमानस को भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया। इन्होने ब्रह्म को ही जीवन का एकमात्र सत् बताया।

(i) माया

शकराचार्य के दर्शन मे परम मूल्य अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति के लिए माया के स्वरूप का अवलोकन आवश्यक है। शकराचार्य माया और अविद्या को पर्यायवाची शब्द मानते है तथा माया को परमात्मा की शक्ति कहते है। महादेव शास्त्री ने माया को व्यावहारिक सत्ता का एक ऐसा नामधेय कहा है जो वर्ण्य विषय से बाहर है।[1] वस्तुत माया मे तुच्छ अर्थात् नितात असत् सदसत् से विलक्षणत्व और वास्तविकता ये तीनो प्रत्यय सपुटित है। पारमार्थिक दृष्टि से जगत असत् है, क्योकि परमार्थत एकमात्र ब्रह्म ही सत् है। व्यावहारिक दृष्टि से जगत सत् है और जगत का अस्तित्त्व भ्रम या स्वप्न के समान नही है। अद्वैत वेदात प्रातिभासिक सत्ता व्यावहारिक सत्ता तथा पारमार्थिक सत्ता तीन प्रकार की सत्ता का विवेचन करता है। प्रातिभासिक सत्ता भासित होती है, कितु परवर्ती अनुभव द्वारा खण्डित भी हो जाती है। यह व्यक्तिगत अनुभवो की सत्ता है जैसे कि स्वप्न। जगत की वस्तुओ, जैसे घट, पट आदि की सत्ता व्यावहारिक है। यह प्रतीयमान होने के साथ कार्य-कारण नियम की शृखला मे निबद्ध है लेकिन अविनाशी और नित्य भी नही है। भौतिक वस्तुएँ उत्पन्न होने के साथ-साथ नष्ट भी हो जाती है। इनके मूल मे एक सत्ता है, जो उत्पत्ति तथा विनाश से रहित है। यही सत्ता ब्रह्म है। ब्रह्म का अस्तित्व नित्य और एकरस है। उसके सापेक्ष समस्त जागतिक वस्तुएँ अनित्य और असत् है। इसीलिए ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है।

(ii) आत्मन्

शकराचार्य ने आत्मा और ब्रह्म को एक ही सत्ता के दो अलग अलग सबोधन माना है। उनके अनुसार, सब के आत्मतत्त्व के रूप मे ब्रह्म का अस्तित्त्व ही प्रसिद्ध है।[2] शरीर और इद्रियो के साथ आत्मा का तादात्म्य नही हो सकता है, क्योकि शरीर विकारवान और इद्रियाँ विकल है। इनको स्वीकारते ही आत्मा भी इनके दोष से दूषित हो जायगी। मन भी आत्मा नही है, क्योकि यह भी विकारवान है। शकराचार्य के अनुसार आत्मा के

---

1 ए महादेव शास्त्री वेदात डाक्ट्रिन आफ श्रीशकराचार्य पृष्ठ 16

2 सर्वस्यात्मत्वाच्च ब्रह्मास्तित्वप्रसिद्धि 1 1 1

चेतनस्वरूप की प्राप्ति के लिए सभी भौतिक पदार्थो और शरीर रूपी ढाँचे से आवृत्त होने वाले तत्त्वो को विलग करना होगा। मनुष्य की जाग्रत स्वप्न एव सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओ मे आत्मा का सारभूत चैतन्य स्वरूप अवश्य विद्यमान रहता है। बाह्य विषयो का ज्ञान इद्रियार्थ सन्निकर्ष से होता है तथा आतरिक विषयो का ज्ञान अत करण एव मनोभावो के सन्निकर्ष से होता है। यह जाग्रत अवस्था मे उत्पन्न विषयो के ज्ञान है। जबकि स्वप्न आतरिक और सूक्ष्म विषयो का ज्ञान है। सुषुप्ति मे किसी भी विषय का ज्ञान नही होता है मात्र चैतन्य बना रहता है। अत इन तीनो अवस्थाओ मे जो अपरिवर्तनशील और स्थायी तत्त्व है वह चित् और ज्ञान मात्र है। इसप्रकार आत्मा का वास्तविक स्वरूप चैतन्य है।

किंतु आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान तुरीयावस्था मे होता है जो आतरिक तथा बाह्य सभी विषयो के अभाव की अवस्था है। यह अन्य तीनो से भिन्न अवस्था है। यह सदा वर्तमान रूप मे और एकरस है। शकराचार्य ने बाह्य जगत के विश्लेषण मे माना है कि जीवो का साररूप चैतन्य ही बाह्य जगत का भी आधारभूत तत्त्व है। आत्मा चैतन्य स्वरूप होने के साथ आनदस्वरूप तथा सच्चिदानद है। जाग्रत एव स्वप्न मे प्राप्त होने वाले क्षणिक आनद उसी सच्चिदानदस्वरूप आत्मा के ही अश है। यह अजर-अमर, कूटस्थ एव नित्य तत्त्व है। यह निर्विशेष चिन्मात्र है। इसके ऊपर शरीर के भस्मीभूत होने या चित्त के नष्ट होने का भी कोई प्रभाव नही पडता है।

ईश्वर और आत्मन् (जीव) की सज्ञाओ का मूल कारण माया है। परमेश शक्ति माया स्वरूपत एक ही है किंतु इसकी आवरण और विक्षेप शक्तियो के आधार पर व्यावहारिक दृष्टि से अविद्या और माया दो भेद प्रगट होते है।[3] आवरण शक्ति अविद्या का स्वरूप है जो आत्मा से सबधित है। विक्षेप शक्ति जगत की माया का स्वरूप है।[4] प्राज्ञ ईश्वर तथा अल्पज्ञ जीव दोनो की सत्ता व्यावहारिक है। परमार्थत केवल अद्वैत ब्रह्म की सत्ता है। शकराचार्य के अनुसार 'जीवो ब्रह्मैवनापर उक्ति के अनुरूप जीव अतिरिक्त तत्त्व न होकर ब्रह्म ही है। अविद्या की उपाधि से ब्रह्म का विशुद्ध चैतन्य स्वरूप ही जीव रूप मे परिणत हो जाता है। प्रत्येक जीव के साथ अत करण की एक उपाधि होने के कारण जीव

---

3 पचपादिका विवरण (विजयनगरम सीरिज) पृष्ठ 32

4 रामाद्वयाचार्य वेदात कौमुदी पृष्ठ 182

परिच्छिन्न एव अल्पज्ञ है। इसलिए अविद्योपाधिक अत करण से सबद्ध चैतन्य को जीव कहते है।

माया के द्वारा ही जीव का जीवत्त्व सिद्ध होता है। शकराचार्य का मानना है कि जीव स्वरूप बोध न होने से अविद्या मे ही लीन रहता है।[5] वस्तुत जीव ब्रह्म का ही एक रूप है।[6] ब्रह्म ही अविद्या के द्वारा जीव भाव को प्राप्त होता है। अविद्या निवृत्ति से जीव को ब्रह्मरूपता का ज्ञान प्राप्त होता है। ब्रह्म माया यानी कि अविद्यात्मिक बीज-शक्ति के साथ ही मोह- शक्ति भी रखता है। उसमे जैसे जगत की सर्जना की सामर्थ्य है वैसे ही जीव को मोहने की शक्ति भी है। माया से मोहित होने के कारण जीव को चिदानद स्वरूप ब्रह्म का ज्ञान नही रहता है।[7] यह अत करणावच्छिन्न जीव स्वय को कर्त्ता और भोक्ता मानता है। जगत का स्रष्टा ईश्वर है कितु भोक्ता जीव है। ईश्वर के सकल्प से जगत की सृष्टि और जीव के सकल्प से जगत का भोग होता है। इसप्रकार अविद्या जीव को सासारिक बधनो मे बॉधती है।

(iii) परम मूल्य के रूप मे प्राप्तव्य (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)

भारतीय दर्शन मे मानव जीवन की महत्ता बढ़ाने के लिए और मानव के लक्ष्य के निर्धारण के लिए मूल्यो की स्थापना की गयी है, जिन्हे पुरुषार्थ भी कहते है। पुरुषार्थ दो शब्दो – पुरुष और अर्थ के योग से बना है। अर्थ शब्द प्रयोज्य, लक्ष्य या साध्य को इगित करता है। पुरुष के प्रयोजन को ही पुरुषार्थ कहा गया है। पुरुषार्थ चार माने गये है – धर्म, अर्थ काम और मोक्ष। ये सब पुरुष के मूल्य है। इन चार मे से किसी एक की प्राप्ति के लिए ही कोई जीव अर्थात् पुरुष कार्य करता है।[8]

---

5 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 4 3

6 जीवाना स्वरूप वास्तव ब्रह्म।

भामती ब्रह्मसूत्र 1 4 3

7 पचदशी 4 22

8 धर्मार्थ काम मोक्षाश्य पुरुषार्था उदारता ।

विष्णुपुराण 1 18

धर्म भारतीय दर्शन मे सर्वप्रथम मूल्य धर्म को माना गया है। यह भारत का प्राण–देश है। धर्म ही हमारी सस्कृति और सभ्यता का मूल है। धर्म को मुख्यत तीन अर्थो मे व्याख्यायित किया गया है। पहला लोक को धारण करने वाला धर्म है – ध्रियते लोक अनेन। दूसरा लोकयात्रा का सही निर्वाह धर्म है – ध्रियते लोकयात्रा निर्वाहार्थ य स धर्म। तीसरा ससार को धारण करने वाला धर्म है – धरति धारयति वा लोक। स्पष्ट है कि सपूर्ण ससार के नैतिक व्यवहार का सचालन करने वाला धर्म है। ऋत् समस्त विश्व के सचालन की नैतिक व्यवस्था को कहते है। इस नैतिक व्यवस्था के सचालन के लिए सदाचार और कर्त्तव्य पालन का आदर्श आवश्यक है। सदाचार सत्कर्म है। इसका अनुपालन मनुष्य का कर्त्तव्य है।

धर्म के मुख्यत दस लक्षण माने गये है। आपत्ति काल मे भी धर्म को न छोडना धृति या धैर्य है। क्रोध को सहना ही क्षमा है। मन को वर्जित विषयो की ओर आकर्षित न होने देना अर्थात् मन का नियत्रण ही दम है। 'शौच' बाहरी और आतरिक पवित्रता है। शरीर को जल स्नान आदि से शुद्ध रखना बाह्य शौच है तथा मन के मैल को दूर करना आतरिक शौच है। इद्रियॉ एकादश है, जिनका नियत्रण ही इद्रियनिग्रह है। चोरी न करना, आस्तेय है। धी अर्थात् तत्त्वद्रष्टा होना आवश्यक है। आत्म ज्ञान को, विद्या कहते है। सत्य' का आचरण धर्म का मूल है। क्रोध का कारण होने पर भी मन मे क्रोध न आना अक्रोध है। इनके अतिरिक्त अहिंसा, अलोभ तप श्रद्धा, अपरिग्रह भी धर्म के लक्षणो मे प्रमुख माने गये है। इसप्रकार धर्म नैतिक व्यवस्था के स्थापक और जागतिक व्यवस्था के सचालक नियम है।

अर्थ द्वितीय पुरुषार्थ 'अर्थ' है। जिससे सभी प्रयोजनो की सिद्धि हो, उसे 'अर्थ कहते है। कौटिल्य ने अर्थ को धर्म और काम का मूल तत्त्व स्वीकार किया है। चाणक्य ने अर्थ को जीवन का प्रमुख प्रवर्तक कहा है। मनुष्य स्वभावत सुख चाहता है। सुख का मूल धर्म है और धर्म का मूल अर्थ है। अर्थ के बिना धर्म भी सभव नही है। अर्थ वृत्ति अथवा आजीविका से प्राप्त होता है। इसप्रकार धन अर्थात् अर्थ जीवन का आधार है। धन उपार्जन मनुष्य का ध्येय होता है। इसके लिए वह विभिन्न साधनो की खोज करता है। जिनमे मुख्यत उच्च व शीलवृत्ति मृत्तवृत्ति, प्रमृत्तवृत्ति, वाणिज्यवृत्ति तथा स्ववृत्ति हैं। यह अर्थोपार्जन

के सतोषजनक साधन है। सतोष के बिना अर्थोपार्जन से सुख भी प्राप्त नही होता है। चोरी, हिसा असत्य दभ, काम क्रोध मद अविश्वास, स्पर्धा लपटता द्यूत मद्य, दुर्व्यसन अर्थोपार्जन के दोष है। मानव को इन दोषो से बचना चाहिए। अर्थ जीवन के लिए आवश्यक है, लेकिन इसका उपार्जन और उपभोग दोनो धर्म के आधार पर होना चाहिए अन्यथा अनर्थ होता है। अर्थ का पहला दोष दर्प या अहकार और दूसरा मोह है। मानव को इन दोषो से भी बचना चाहिए।

काम तृतीय पुरुषार्थ काम है। यहॉ काम शब्द व्यापक और सकुचित दोनो अर्थो मे स्वीकार किया गया है। व्यापक अर्थ मे काम समस्त इच्छा, कामना वासना स्पृहा, तृष्णा, एषणा आदि की ओर सकेत करता है किंतु सकुचित अर्थ मे काम मुख्यत यौन सुख की ओर सकेत करता है। व्यापक अर्थ मे काम भावना का पक्ष सतुष्ट करना है। इसीकारण कला, ललितकला चित्रकला, सगीत कविता, सौदर्यशास्त्र आदि क्षेत्र सुख के बोधक है, किंतु काम इद्रियो को विषयो की ओर प्रेरित ही नही करता बल्कि इद्रियो को नियत्रित भी करता है। यौन सुख मनुष्य और पशु मे समान है किंतु मनुष्य नियत्रित सुख चाहता है। वह भोग से योग को सपृक्त करता है। काम पाशविक सुख नही, नियत्रित भोग है। यौन सुख को मैथुन भी कहते है। मैथुन के आठ प्रकार है – स्मरण, कीर्तन केलि प्रेक्षण गुह्यभाषण, सकल्प, अध्यवसाय और क्रिया निवृत्ति। इन सब के साथ नियत्रण और व्याख्या भी आवश्यक है। इनके बिना काम पुरुषार्थ नही है।

मोक्ष चौथा और अतिम पुरुषार्थ मोक्ष है। यह समस्त पुरुषार्थो, मूल्यो का परम मूल्य है। समस्त परेशानी और कठिनाइयो से छुटकारा पा लेना ही मोक्ष है। यही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। मानव अथवा जीव अविद्या या अज्ञान के कारण दु ख प्राप्त करता है। ज्ञान (मोक्ष) अविद्या से मुक्ति का साधन है। मोक्ष की स्थिति पारमार्थिक है। जीव की सासारिक बधनो से मुक्ति तथा आत्मन् स्वरूप की प्राप्ति ही मोक्ष है। समस्त भारतीय दर्शन मोक्ष को परम मूल्य मानते है, किंतु इस मूल्य को प्राप्त करने के मार्ग और स्वरूप मे मत-वैभिन्य है।

मानव जीवन के परम मूल्य अर्थात् मोक्ष की स्थिति पारमार्थिक है। शकराचार्य ने पारमार्थिक सत्ता के साथ जगत की व्यावहारिक सत्ता स्थापित करने का प्रयास करके

वेदात को पलायनवादी होने से बचाया है। उन्होने मोक्ष की व्याख्या अत्यत मौलिक ढग से की है।

अन्य भारतीय दार्शनिको के समान शकराचार्य ने भी अज्ञान या अविद्या को जीव या मानव के दु ख एव बधन का मूल कारण स्वीकार किया है। यहॉ मोक्ष तथा उसके साधन प्रतीकात्मक है, क्योकि जीव स्वभावत मोक्ष स्वरूप ब्रह्मस्वरूप तथा नित्यमुक्त है किंतु अनादि अविद्या के कारण जीव ब्रह्म से अलग होने का अनुभव करता है तथा सासारिक दु खो को भोगता है। मोक्ष जीव की बाधा को हटाने का कार्य करता है। शकराचार्य ने माना है कि जीव अविद्या के कारण देह इद्रिय एव अत करण आदि से अपना तादात्म्य करके बधनग्रस्त होता है। परिणामस्वरूप वह स्वय को अच्छे-बुरे कर्मो का कर्त्ता, सुख-दु ख आदि का भोक्ता मानकर आचरण करता है।

जीव का बधन अविद्याकृत है। इसीलिए अविद्या से निवृत्ति को ही मोक्ष कहा गया है। मोक्ष आत्मन् अथवा ब्रह्म के स्वरूप की अनुभूति है। आत्मा नित्य शुद्ध, चैतन्य एव अखण्ड आनदस्वरूप है। आत्मा ज्ञान स्वरूप है, किंतु मोक्ष आत्मा का स्वरूप ज्ञान है। शकराचार्य के अनुसार, ब्रह्म और मोक्ष एक ही है।[9] जो ब्रह्म को जानता है, वह स्वय ब्रह्म हो जाता है।[10] अत ब्रह्म ज्ञान तथा ब्रह्म भाव एक है। वास्तव मे जीव ब्रह्म होता या बनता नही है, उसकी कोई क्रिया भी नही है, क्योकि जीव सदैव ब्रह्म ही है। जब अविद्या का लोप होता है, तभी आत्मन् के स्वप्रकाशित स्वरूप का ज्ञान होता है। जैसे कि प्रभावी मलिनताओ के छूट जाने पर सुवर्ण मे चमक आ जाती है अथवा सूर्य के छिप जाने पर मेघो से रहित रात्रि मे तारे प्रकाश देने लगते है।[11]

---

9 नृत्यशालास्थितो दीप प्रभु सभ्याश्च नर्तकीम ।
दीपयेदविशेषेण तदभावेऽपि दीप्यते ।।
अहकार प्रभु सभ्या विषया नर्तकी मति ।
तालादिकारीव्यक्षाणि दीप साक्ष्यवभासक ।।
विष्णु पुराण 10 4

10 ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति।
मुण्डकोपनिषद 3 2 9

11 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य, 1 3 19

जब आत्मज्ञान द्वारा अविद्या की निवृत्ति हो जाती है तो जीव नित्य-शुद्ध-बद्ध मुक्त ब्रह्मभाव को प्राप्त कर लेता है। यही मुक्ति या मोक्ष है। वस्तुत ब्रह्मात्म्यैक्य के त्रिकालसिद्ध और नित्य होने के कारण जीव न तो बधनग्रस्त होता है और न मुक्त। केवल अविद्या ही आती और जाती है। अविद्या भ्राति है इसलिए उसका आवागमन प्रवृत्ति और निवृत्ति भी भ्राति ही है। बधन और मोक्ष व्यावहारिक है परमार्थत मिथ्या है। यद्यपि भ्रम की अवस्था से भ्रमनिवारक ज्ञान की अवस्था मे आने मे समय लगता है। भ्रम की अवस्था पूर्वकालिक और भ्रमनिवृत्ति की अवस्था उत्तरकालिक है। भ्रम पदार्थ त्रिकाल मे असत् है। अत भ्रम और उसकी निवृत्ति काल सापेक्ष नही हो सकती है। दोनो ही मिथ्या है। मोक्ष वास्तव मे प्राप्त की ही प्राप्ति है। मोक्ष-प्राप्ति जीव के उस नित्य स्वरूप का ज्ञान है, जिसे वह कुछ समय के लिए भूल चुका होता है। वस्तुत अधिष्ठान का ज्ञान और भ्रम निवृत्ति एक साथ ही होती है। दोनो एक ही है। ब्रह्म साक्षात्कार, अविद्या-निवृत्ति, प्रपच-विलय और मोक्ष-प्राप्ति, ये सब एक है। 'ये एक साथ प्राप्त होते है , यह कहना भी उपचारमात्र है, क्योकि यहॉ होना क्रिया नही है।

मोक्ष नित्य सच्चिदानद स्वरूप आत्मा या ब्रह्म की अपरोक्ष अनुभूति है। मोक्ष उपादेय रहित है। मोक्ष मे न कुछ खोना है, न कुछ पाना है। यह आत्मभाव है जो सदैव प्राप्त है। शकराचार्य ने मोक्ष के तीन लक्षण बताये है

(अ) मोक्ष अविद्या निवृत्ति है।

(ब) मोक्ष ब्रह्मभाव या ब्रह्मसाक्षात्कार है।

(स) मोक्ष नित्य अशरीरत्त्व है।

तृतीय लक्षण के अनुसार मोक्ष स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनो प्रकार के शरीरो के सबध से रहित नित्य आत्मस्वरूप का अनुभव है। यहॉं अशरीर का अर्थ शरीररहित न होकर शरीर-सबध रहित है। इसप्रकार शकराचार्य जीवमुक्ति को स्वीकारते है। उन्होने मोक्ष को व्याख्यायित करते हुए कहा है कि यह परम सत् है, कूटस्थनित्य है, आकाश के समान सर्वव्यापी है, सब प्रकार के विकारो से रहित है नित्य-तृप्त है निरवयव है, स्वयज्योति स्वभाव है। यह धर्म और अधर्म नामक शुभाशुभ कर्मो से तथा (सुख-दु ख रूपी) उनके कार्यो से अस्पृष्ट है। यह कालत्रयातीत है। यह अशरीरत्त्व मोक्ष

कहलाता है।[12]

शकराचार्य ने भक्ति और कर्म को पूर्णत अनुपयोगी नही माना है। उनके अनुसार कर्म से चित्त-शुद्धि होती है तथा भक्ति से चित्त मे एकाग्रता आती है। ज्ञान मे चित्त-शुद्धि और चित्त की एकाग्रता की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अत कर्म और भक्ति ब्रह्मज्ञान के द्वार-हेतु है। यह ज्ञान के सहायक तत्त्व है।

(iv) मोक्ष मार्ग

मोक्ष ब्रह्मभाव या ब्रह्मसाक्षात्कार है। यह जीव द्वारा अपने आत्मन् का साक्षात्कार है। मोक्ष की स्थिति मे जीव स्वय के यथार्थ स्वरूप को धारण कर लेता है। परतु मोक्ष दु खनिवृत्ति मात्र ही नही, आनदानुभूति भी है। शकराचार्य ने मोक्ष की प्राप्ति का साधन ज्ञान को माना है। उनकी मान्यता है कि ज्ञान से ही मुक्ति सभव है। अज्ञान जीव के बधन का कारण है। शकराचार्य ने मोक्ष प्राप्ति के लिए कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग को अस्वीकार किया है। उनका मानना है कि कर्म का फल उत्पाद्य विकार्य, प्राप्य एव सस्कार्य है, कितु मोक्ष न उत्पाद्य, न प्राप्य, न विकार्य और न ही सस्कार्य है। अत कर्म का फल मानने से वह अनित्यत्त्व को प्राप्त होगा। इसीप्रकार भक्ति द्वारा भी मोक्ष की प्राप्ति असभव है। भक्ति के आधार मे द्वैत-बुद्धि या भेद-बुद्धि विद्यमान रहती है। जो आराध्य और आराधक, भगवान और भक्त की भेद बुद्धि को प्रतिष्ठित रखती है, किंतु यही भेद-बुद्धि अविद्याजन्य है अर्थात् अविद्या ही भक्ति का आधार है। अत भक्ति से भी मोक्ष सभव नही है। मोक्ष की प्राप्ति ज्ञानमार्ग से ही सभव है। इसीलिए उन्होने ज्ञानमार्ग को मोक्ष का आधार निरूपित किया है। यद्यपि भक्ति और कर्म की उन्होने उपेक्षा नही की है बल्कि ज्ञान की प्राप्ति मे चित्त की शुद्धि और एकाग्रता पर उन्होने बल दिया है। उनकी स्थापना है कि चित्त की शुद्धि कर्म द्वारा तथा एकाग्रता भक्ति द्वारा प्राप्त की जा सकती है। ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया मे कर्म एव भक्ति की सायुज्यता का होना उन्होने आवश्यक बताया है।

---

12 इद तु परामार्थिक, कूटस्थनित्य व्योमवत सर्वव्यापि, सर्वविक्रियारहित नित्य तृप्त निरवयव स्वयज्योति स्वभावम यत्र धर्माधर्मो सह कार्येण कालत्रय च नोपावर्तेते तदेतत् अशरीरत्त्व मोक्षारण्यम्।

ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 1 4

शकराचार्य के अनुसार ज्ञान मोक्ष का सीधा साधन है।[13] ज्ञान का अर्थ ब्रह्मत्त्व या आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करना है।[14] ब्रह्म-ज्ञान के साधन द्वारा ही अमृत्त्व की प्राप्ति हो सकती है। ब्रह्म या आत्मा का ज्ञान अथवा दोनो का एकल दर्शन मानव जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने का एकमात्र साधन है कितु यह मात्र मौखिक ज्ञान नही है। इस एकत्व का अव्यवहित अनुभव ही वास्तविक ज्ञान है। उनका मानना है कि ज्ञानियो मे भी थोडे से लोगो को ही तत्त्वदर्शन की प्राप्ति होती है, सभी को नही।[15] वास्तविक ज्ञान हेतु हृदय और बुद्धि के समस्त दोषो को पूरी तरह दूर करना आवश्यक है। मौखिक ज्ञान का जीवन मे कोई स्थान नही है। वास्तविक ज्ञान के लिए नैतिक तथा आध्यात्मिक सयम के साथ, लक्ष्य के अनुरूप सत्निष्ठा के साथ निरतर साधना करनी पडती है। ज्ञान प्राप्ति के साधनो मे अभ्यास और साधना है यह मोक्ष या आत्म साक्षात्कार की अपेक्षा गौण साधन है।

शकराचार्य ने इन्हे ज्ञान प्राप्ति के साधन मानते हुए दो भागो मे विभाजित किया है– (1) अतरग साधन इनका सबध ज्ञान से सीधे और निकट रूप से है तथा (2) बहिरग साधन इनका सबध जिज्ञासा से है, सीधे ज्ञान से नही।[16] निष्काम कर्मयोग बहिरग साधन का एक दृष्टात है।[17] मन तथा अत करण की शुद्धि हेतु बहिरग साधन आवश्यक है।[18] अत करण के निर्मल होने पर उसमे आत्मज्ञान प्रकाशित होने लगता है। कर्म भी ज्ञान-प्राप्ति मे परोक्षत सहायक है। इनसे ज्ञान-प्राप्ति की जिज्ञासा जाग्रत होती है, सीधे ज्ञान नही होता। कहा जा सकता है कि कर्म, ज्ञान का बहिरग साधन है।

ज्ञान के अतरग साधन चार है। इन्हे साधन चतुष्टय कहते है। यह व्यक्ति के चित्त को शुद्ध करके ज्ञान मार्ग के योग्य बनाते है। यह ज्ञान मार्ग के आवश्यक तत्त्व वैराग्य को उत्पन्न करते है। साधन चतुष्टय निम्नवत है

---

13 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 2 1 4 गीता शाकर भाष्य 6 36

14 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 1 4

15 गीता शाकर भाष्य 4 34

16 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 3 4 27

17 गीता शाकर भाष्य 6 2

18 वही 6 12

1 **नित्यानित्य वस्तुविवेक**	साधक मे नित्त्य और अनित्त्य पदार्थो का विवेक होना आवश्यक है।
2 **इहामुन्नार्थभोगविराग**	मोक्षार्थी को लौकिक एव पारलौकिक भोगो से अनासक्त होना चाहिए।
3 **शमदमादि साधनसपत्**	मोक्षार्थी को शम दम श्रद्धा समाधान उपरति और तितीक्षा इन छह गुणो से युक्त होना चाहिए। मन का सयम शम है। इद्रियो का नियत्रण दम है। श्रद्धा शास्त्र मे निष्ठा है। चित्त को ज्ञान के साधन मे लगाना तथा तर्क द्वारा शकाओ का निराकरण करना समाधान है। विषय वासना से दूर हटना उपरति है। शीतोष्ण सहन करने का अभ्यास तितीक्षा है।
4 **मुमुक्षुत्त्व**	मोक्षार्थी को मोक्ष प्राप्त करने के लिए दृढ़ सकल्प से युक्त होना चाहिए।

शकराचार्य का मत है कि इन चारो योग्यताओ को रखनेवाला साधक ही ज्ञान मार्ग का अधिकारी होता है। ज्ञान मार्ग वस्तुत श्रवण, मनन और निदिध्यासन का मार्ग है। उनका मानना है कि यह तीनो प्रक्रियाएँ एक साथ चलती है। श्रुतियो के उपदेशो का नियमित स्वाध्याय करना चाहिए। किसी योग्य गुरु से उपनिषदो की शिक्षाओ को सुनना श्रवण है। वस्तुत, श्रुति ही अतिम सत्य का ज्ञान कराती है, कितु श्रवण आवश्यक होते हुए भी पर्याप्त नही है। उसके बाद मनन भी आवश्यक है। श्रवण से प्राप्त ज्ञान पर तर्कपूर्वक चितन करना चाहिए, जिससे श्रद्धा से प्राप्त ज्ञान व्यक्तिगत आस्था या बौद्धिक आस्था मे परिणत हो सके। मनन आत्मज्ञान मे सभाव्य सशय के निवारण के लिए आवश्यक है। मनन की अनेक विधियो मे अध्यारोप तथा अपवाद विधि सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इनके द्वारा निष्प्रपच ब्रह्म का व्याख्यान होता है। मनन से बौद्धिक आस्था होने के बाद निदिध्यासन या ध्यान करना चाहिए। 'तत्त्वमसि' से 'अहब्रह्मास्मि का ध्यान, जीव और ब्रह्म के तादात्म्य का ध्यान करते रहना ही निदिध्यासन है। निदिध्यासन का अभ्यास ब्रह्मात्मैकत्त्व' की

अपरोक्ष अनुभूति होने तक करना चाहिए। इस ऐक्य की अपरोक्ष अनुभूति होने पर मुमुक्षु जीवन्मुक्त हो जाता है।

शकराचार्य ने आत्म-साक्षात्कार के जिन साधनो पर बल दिया, उन्हे वस्तुत स्वार्थपरक या आदर्शपरक मूल्य समझना चाहिए क्योकि वे समाज तथा समस्त मानवता के लिए शुभ होने के स्थान पर वैयक्तिक शुभ, और साधक के उच्च आदर्श को प्राप्त करने मे सहायक है। प्रोफे मित्रा के शब्दो मे, इन्हे विषयिनिष्ठ नैतिकता या मनोवैज्ञानिक नैतिकता कहना उचित होगा।[19] यह मुख्यत मानव की विषयनिष्ठ शुद्धता और सकल्प का आतरिक प्रकर्ष है। किंतु यह भी सत्य है कि व्यक्ति और समाज के हित मे कोई विभाजक भेद नही है। जो मूल्य वैयक्तिक शुभ के लिए उपयोगी है वही सामाजिक शुभ के लिए भी है। इसीलिए स्वार्थवादी मूल्य भी आदर्शवादी मूल्य से अलग नही है। स्वार्थवादी आत्मसाक्षात्कार मे भी सामाजिक मूल्य निहित है। जो व्यक्ति स्वय के लिए भला है, वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समाज के लिए भी भला होता है। वैयक्तिक शुभ से समाज का अपकर्ष सभव है। जिसका हृदय या मन कलुषित है वह समाज के लिए अहितकर होता है। अत शकराचार्य के आत्मसाक्षात्कार के साधन वैयक्तिक जीवन की नैतिकता के साथ ही सामाजिक नैतिकता की स्थापना भी करते है।

शकराचार्य के आत्मसाक्षात्कार के साधनो का परार्थपरक नैतिक पक्ष भी है। यहॉ पर साधारण तथा वर्णाश्रम धर्म के पालन हेतु किये जाने वाले कर्मो को भी मूल्य माना गया है। इन साधारण धर्मो का पालन मानव को वैयक्तिक क्षमता सामाजिक स्थिति जाति-पाति तथा राष्ट्रीयता के भेद से ऊपर उठकर करना होता है।[20] सत्य, अस्तेय, अक्रोध, क्षमा, धेय, विद्या, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि सद्‌गुण है। वर्णाश्रम या विशेष धर्म मानव के सामाजिक स्तर और स्थिति के अनुकूल होते है। प्रोफे मित्रा के अनुसार, ये हिदुओ की परार्थपरक नैतिकता है।[21]

---

19 प्रोफे मित्रा द एथिक्स ऑफ द हिन्दूज पृष्ठ 4

20 वही पृष्ठ 4

21 वही पृष्ठ 4

शकराचार्य ने मोक्ष की दो अवस्थाओ जीवन मुक्ति और विदेह-मुक्ति, को स्वीकार किया है। इसी जीवन मे प्राप्त होने वाली मुक्ति जीवन मुक्ति है। वे मानते है कि शरीर रहते हुए भी मानव मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। जीवन मुक्ति की भी दो अवस्थाएँ है। पहली अवस्था समाधि की है। यह अतर्मुखी होती है और स्वय को ब्रह्म मे लीन करने की स्थिति मे रहती है। इस अवस्था मे जीव का स्वतत्र अस्तित्व समाप्त होकर ब्रह्म मे लीन हो जाता है। दूसरी अवस्था को व्युत्थान अवस्था कहा गया है जिसमे जगत का मिथ्या प्रपच सामने उपस्थित रहता है लेकिन जीव उनसे प्रभावित नही होता है। ससार मे रहते हुए भी उससे निर्लिप्त तथा सारे क्रिया-कलाप करते हुए भी उससे दूर रहता है। जीवन-मुक्ति सघर्ष तथा द्वद्व से परे की अवस्था है। यहाँ आवेग और इच्छा का कोई स्थान नही है। कर्म अनायास ही होते है। सुरेश्वर का कहना है कि जीवन-मुक्ति को दया आदि का आचरण करने के लिए प्रयास की आवश्यकता है। सदाचरण तो उसका दूसरा स्वभाव है।[22] जिसप्रकार केचुल उतारकर फेक देने पर सर्प की उसमे कोई आसक्ति नही होती है, उसीप्रकार जीवन्मुक्त को अपने शरीर से कोई आसक्ति नही होती है।[23]

कितु जीवन्मुक्त जब भौतिक उपाधियो (शरीरादि) से अलग हो जाता है तो उस अवस्था को विदेह मुक्ति कहते है। अर्थात् शरीर पात के अनतर प्राप्त होने वाली मुक्ति विदेह मुक्ति है। शकराचार्य के अनुसार, ब्रह्मज्ञान हो जाने पर सचित कर्म का क्षय हो जाता है तथा क्रियमाण कर्म बधनकारी नही होते है। यद्यपि प्रारब्ध कर्मो का निवारण इससे नही होता। इनका निवारण मात्र भोग द्वारा ही सभव है। प्रारब्ध कर्मो के भोग के लिए कुछ समय तक उसका शरीर बना रहता है। यह जीवन्मुक्ति की स्थिति है। जब जीवन्मुक्त के प्रारब्ध कर्मो का भोग समाप्त हो जाता है तब उसका शरीर नही रहता, क्योकि यह शरीर प्रारब्ध कर्मो का ही तो फल है। अत स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरो के अत के फलस्वरूप जीवन्मुक्त की अवस्था को विदेह-मुक्ति कहते है। परतु सर्वज्ञात्ममुनि सहित कुछ दार्शनिको ने जीवन्मुक्ति के स्थान पर केवल विदेह-मुक्ति को ही माना है। उनके अनुसार, जीवन्मुक्ति के प्रतिपादन मे शास्त्र का कोई प्रयोजन नही होने के कारण अर्थवाद मात्र है। यह मुमुक्षु मे मोक्ष की प्रेरणा

---

22 नैष्कर्म्य सिद्धि 4 69

23 वृहदारण्यक उपनिषद 4 4 7

भरता है। वस्तुत शरीर तो अविद्या के कारण है। अविद्यानिवृत्ति ही मोक्ष है। ऐसे मे मोक्षावस्था मे शरीर का होना व्याघात पूर्ण है। इसीलिए शरीर के अत होने पर ही मोक्ष की प्राप्ति सभव है किंतु शकराचार्य इससे सहमत नही है। वस्तुत जीव तो ज्ञान की प्राप्ति के साथ ही मुक्त हो जाता है। शरीर की अवस्था बनी रहती है क्योकि मुक्ति प्राप्त कर लेने पर भी कुछ अविद्या रहती है, इसे अविद्यालेश कहते है। इसी के कारण मुक्त पुरुष का शरीर कुछ समय तक बना रहता है। जिसप्रकार कुभकार का चाक एक बार चलाने के बाद भी तब तक घूमता रहता है जब तक उसमे वेग का सस्कार रहता है।[24] इसी तरह अविद्या निवृत्ति के बाद भी प्रारब्ध कर्म के कारण अविद्या के विक्षेपाश को अविद्यालेश कहते है। इसके कारण जीवन्मुक्त को कुछ समय तक शरीर धारण करता पडता है।

शकराचार्य ने सद्य मुक्ति का प्रतिपादन करते हुए क्रममुक्ति को अस्वीकार किया है। ज्ञान प्राप्त होते ही मुक्त होना सद्य मुक्ति है। शकराचार्य की जीवन्मुक्ति की अवधारणा भी सद्य मुक्ति पर आधारित है। इसे प्राप्त करने वाला जीव पुन जन्म मरण के चक्र मे नही पडता है।

शकराचार्य एकजीव के सिद्धात पर विश्वास करते है। उनका मानना है कि जीव जब एकात्म हो जाय तो वही ब्रह्म या आत्मा है। उसका अनेक दिखना तो भ्रममात्र है। इसीलिए एकजीव की ही मुक्ति होती है। वास्तव मे अन्य जीव होता ही नही है। सर्व का ज्ञान अज्ञानजन्य है। मोक्ष के द्वारा यह अज्ञान दूर हो जाता है। अत एक मुक्ति ही वास्तविक मुक्ति है। शकराचार्य के एक जीववाद का विरोध नाना जीववादी करते है। उनका तर्क है कि प्रत्येक जीव अपना मोक्ष प्राप्त करता है। इस स्थिति मे एक जीव की मुक्ति से अन्य जीवो को मोक्ष प्राप्त नही होता। एक मुक्ति होने पर भी सर्वमुक्ति नही होती है। यह मतातर शकराचार्य के मत को सही ढग से व्याख्यायित न करने पर उत्पन्न होता है। मुक्ति प्राप्त होने वाली वस्तु नही है। यह समस्त जीव मे विद्यमान रहती है किंतु अज्ञान के आवरण से वास्तविक स्वरूप को हम नही समझ पाते। यह ब्रह्म की माया है, जो जीव को अनेकत्त्व के बोध से ग्रस्त करती है।

---

24 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 4-1 15

शकराचार्य ने मोक्ष को परम मूल्य मानते हुए यही पर आचार सिद्धात की स्थापना भी किया है। व्यावहारिक जगत की सौख्य स्थिति और परम मूल्य की प्राप्ति के सदर्भ मे उनके दर्शन का आधार सबधी दृष्टिकोण विश्व समाज के लिए उपयोगी है। शकराचार्य ने आचार सिद्धात जो वेदात का ही अग है को एक ओर व्यावहारिक जीवन की सफलता का साधन सिद्ध किया है तो दूसरी ओर पारपरिक परम मूल्य यानी कि मोक्ष का हेतु भी माना है। इसलिए उनके आचार सिद्धात की स्पष्ट व्याख्या आवश्यक है।

शकराचार्य के वेदातिक आचार सिद्धात मे ज्ञान और कर्म तथा व्यवहार और परमार्थ का समन्वय दृष्टिगत होता है। शकराचार्य ने स्पेसर के न्यू जेरूसलम' की तरह काल्पनिक, काण्ट के आदर्श लोक की स्थापना न करके, साध्य के रूप मे एक ऐसी आध्यात्मिक सत्ता की कल्पना की है, जिसमे मानव चरम पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। उन्होने व्यवहार और परमार्थ दोनो के साधक कर्म सिद्धात की स्थापना की है। शकराचार्य के अनुसार राग द्वेष रहित निष्काम कर्म का सदेश मानव समाज के लिए श्रेयष्कर है। मलिनचित्त आत्मबोध नही कर पाता है, किंतु काम्यरहित नित्य कर्म के अनुष्ठान से चित्त की शुद्धि होती है, जिससे बिना किसी बाधा के जीव आत्मस्वरूप का बोध करता है।[25] इसप्रकार आत्मज्ञान मे सहायक नित्यकर्म मोक्ष के साधक है।

शकराचार्य ने स्पष्टत कहा है कि कर्म द्वारा सस्कृत होने पर ही विशुद्धात्मा आत्मबोध मे समर्थ होती है।[26] सकाम कर्म का अनुष्ठान तथा अभ्यास मानव को पशुत्त्व की ओर ले जाता है, वही निष्काम कर्म मानव को देवत्त्व मे परिणत कर देता है। यह देव कर्म एक ओर आध्यात्मिक उपलब्धि मे सहायक है। दूसरी ओर, आदर्श समाज का प्रतिस्थापक भी है। निष्काम कर्म चित्त शुद्धि के माध्यम से जीव को मोक्ष के पथ पर ले जाता है। यह सत्य है कि शकराचार्य ने कर्म को मुक्ति मे बाधक माना है। अपने

---

25 गीता शाकर भाष्य

26 कर्मभि सस्कृताहि विशुद्धात्मान शक्नुवत्यात्मानमुपनिषत प्रकाशितमप्रतिबधेन वेदितुत एव काम्य वर्जित नित्य कर्मजात सर्वमात्मज्ञानोत्पत्ति द्वारेण मोक्षसाधनत्व प्रतिपद्यते।

वृहदारण्यक उपनिषद् भाष्य 4 4 22

वृहदारण्यक भाष्य[27] तथा ब्रह्मसूत्र भाष्य[28] मे उन्होने कर्म को मुक्ति मे बाधक बताया है, किंतु कर्म की निरर्थकता की बात नही कहा है। गीता भाष्य मे शकराचार्य ने स्पष्टत कहा है कि मनुष्य का कर्म कभी व्यर्थ नही जाता है। जो जिस भावना से कर्म करता है ईश्वर उसको वैसा ही फल देते है।[29] उन्हे मीमासको के अनुसार सीधे कर्म से अथवा ज्ञानकर्मसमुच्चय से मुक्तिलाभ स्वीकार्य नही है।[30] लेकिन उन्होने पूर्ववर्ती दार्शनिको की भॉति कर्म को भी मुक्ति का साधन कहा है। मुमुक्षु के अत करण की शुद्धि के लिए कर्म व्यर्थ नही है। आत्मबोध के लिए तो चित्त की शुद्धि परमावश्यक है। सब जगह विद्यमान होने पर भी आत्मा सर्वत्र आभासित नही होती है। आत्मा सभी मे है किंतु सबको आत्मसाक्षात्कार नही होता है। इसके लिए उसी तरह के निर्मल चित्त की आवश्यकता है, जिस तरह किसी वस्तु के प्रतिबिब के लिए स्वच्छ दर्पण की।[31] यद्यपि मोक्ष मुख्यत ज्ञान से सभव है, किंतु कर्मादि भी उसकी प्राप्ति मे सहायक होते है।

भारतीय दर्शन मे कर्म तीन प्रकार के माने गये है। पहला सचित कर्म, जो पूर्वकाल के जमा कर्म है। दूसरा सचयीमान कर्म जो कर्म इस जीवन मे जमा हो रहे है। तीसरा प्रारब्ध कर्म, पूर्वकाल के वे कर्म जिनका फल-भोग हो रहा है। सचित कर्म अर्थात् पहले के कर्म, सचयीमान कर्म भविष्य मे उत्पन्न करने वाला कर्म है तथा प्रारब्ध कर्म का भोग अनिवार्य है। सचित और सचयीमान कर्मो का विनाश कर्मयोग, ध्यान, सत्सग, जप, अर्थ और परिपाक के अवलोकन से हो जाता है।[32] निष्काम कर्म का अनुष्ठान पुण्य-पाप आदि

---

27 वृहदारण्यक उपनिषद भाष्य 3 3 1

28 ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य 1 1 4

29 गीता शाकर भाष्य 4 11

30 ऐतरेय उपनिषद भाष्य का उपोदघात

31 सदासर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्रावभासेत।
बुद्धावेवाव भासेत स्वच्छेषु प्रतिबिबवत्॥
आत्मबोध 17

32 कर्मतो योगतो ध्यानात् सत्सगाज्जापतोऽर्थत ।
परिपाकावलोकाच्च कर्मनिर्हरण जगु ॥
विज्ञानदीपिका 22

कर्मो के नाश का हेतु है। यही पुण्य पापादि भूत, स्थूल तथा सूक्ष्म के विलय के हेतु भी है।[33] यह कर्म मुमुक्षु के लिए आवश्यक है, क्योकि काम वासना और वासना जीव बधन का कारण है। मोक्ष लाभ हेतु कर्म-निर्हरण अत्यत आवश्यक है। इसप्रकार शकराचार्य का परम मूल्य मोक्ष की आधारशिला आचारसिद्धात को स्थापित करता है। इसमे व्यवहार और परमार्थ दोनो का समन्वय है। यह दार्शनिक प्लेटो की शुभकामना और अरस्तू के नैतिक गुण के सिद्धात को भी स्थापित करता है।[34] स्पष्ट है कि शकराचार्य की मोक्ष सबधी अवधारणा भारतीय दर्शन मे महत्त्व का स्थान रखती है।

शकराचार्य के कर्म सिद्धात मे कार्य कारण नियम तथा ऊर्जा सरक्षण नियम की अनुकूलता मिलती है। कार्य-कारण सिद्धात का मानव व्यवहार के क्षेत्र मे प्रयोग ही कर्म सिद्धात है। यह सिद्धात, जगत मे कुछ भी बिना कारण के अचानक नही है, इस मान्यता पर टिका है। यदि कार्य कारण नियम को प्रकृति मे व्यापक रूप से लागू करे तो नैतिक दृष्टि से उचित होगा। प्रोफे मैक्समूलर के अनुसार कोई भला या बुरा कर्म व्यर्थ न जाने का विश्वास भौतिक जगत मे ऊर्जा सरक्षण के नियम पर टिका है। [35] यदि कोई शक्ति नाशवान नही है तो नैतिक शक्ति ही उसका अपवाद क्यो हो?[36] ऐसे मे शकराचार्य नैतिक शक्ति को उसीप्रकार अविनाशी मानते है, जैसे किसी अन्य शक्ति को। कृतविप्रनाश और अकृताभ्यागम (अर्थात् किये हुए का विनाश और न किये हुए की प्राप्ति) के सिद्धातो से सहमत न होने के कारण शकराचार्य कार्य-कारण नियम व ऊर्जा सरक्षण नियम के सरक्षक सिद्ध होते है।

---

33 विज्ञानदीपिका 30

34 Plato recommends for philosophers the persuit of wisdom, which has for its final fruit the vision of the idea of the good, and for others true openion, which is to one's station and its duties

Similarly Aristotle recommeds for the ordinary man 'moral virtues , which are emphetically human affairs and for those who aim at immortality the exercise of reason which approchends things noble and devine

राधाकृष्णन इडियन फिलासफी भाग 2 पृष्ठ 615

35 प्रोफे मैक्समूलर थ्री लेक्चर्स आन वेदात फिलासफी पृष्ठ 165

36 फिलासाफिकल क्वार्टरली, अप्रैल 32 पृष्ठ 72 (प्रोफे एन वेकटरमन का लेख सनातन धर्म)

इन कर्म सिद्धातो से नैतिक न्याय की माग भी पूरी होती है। यह नैतिक बुद्धि ही स्पष्ट वाणी है। इस पर अविश्वास करने से सत् कर्म अच्छे व्यवहार की सोच समाप्त हो जायगी। उचित अनुचित कर्मो के अनुसार फल मिलने से नैतिकता का भाव बना रहता है। कर्मफलदाता के रूप मे न्यायपूर्ण ईश्वर मे विश्वास रहता है।

(v) आत्मन् एव ब्रह्म का सबध

तत्पदार्थ और त्वपदार्थ रोधन अर्थात मोक्ष प्राप्ति के बाद एक ओर ब्रह्म तक तो दूसरी ओर आत्मा तक पहुँचते है। लेकिन ब्रह्म एव आत्मा को अलग-अलग दो मान लेने पर शकराचार्य द्वैतवादी सिद्ध होगे। जबकि वे पूर्णतया अद्वैतवादी है। उनके अनुसार, ब्रह्म और आत्मन् भिन्न सत्ता न होकर एक ही है। उन्होने इस सिद्धात को स्थापित करने के लिए युक्तियॉ भी प्रस्तुत की है जो इसप्रकार है

पहला तर्क यह है कि ब्रह्म जगत के मूल कारण अर्थात् अधिष्ठान के रूप मे सिद्ध है, जो अचेतन न होकर चेतन है। चैतन्य का विस्तार न होने के कारण वह असीम सत्ता है। व्युत्पत्ति के अनुसार ब्रह्म वह है, जो वृहत्तम हो।[37] वृहत्तम सत्ता निरपेक्ष होती है अत ब्रह्म निरपेक्ष है। आत्मा आतरिक जगत का अधिष्ठान है जो एक व्यापक सत्ता है, क्योकि जो व्यापक है वही आत्मा है।[38] व्यापक होने से आत्मा भी एक निरपेक्ष सत्ता है। परतु तर्कशास्त्र मे दो निरपेक्ष सत्ताऍ नही हो सकती है। निरपेक्ष सत्ता ब्रह्म या आत्मा मे से कोई एक हो सकती है। अत आत्मा और ब्रह्म दो न होकर एक है।

दूसरे तर्क के अनुसार, शकराचार्य ने वस्तुनिष्ठ विज्ञानवादी दर्शन की स्थापना की जिसमे चैतन्य से स्वतत्र किसी अन्य वस्तु की सत्ता स्वीकार्य नही होती है। यदि चैतन्य के बाहर किसी अन्य वस्तु का अस्तित्व मान भी ले, तो ज्ञेय न होने के कारण उसके विषय मे

---

37 निरतिशय भूमाख्य वृहत्वाद ब्रह्मोति विद्धि ।
केनोपनिषद भाष्य, 1 5

38 आप्नोतेर्व्याप्तिकर्मण आत्मा ।
तैत्तिरीय उपनिषद भाष्य पृष्ठ 43

कुछ भी नही कहा जा सकता है। यह निर्देशित करता है कि आत्मा के अतिरिक्त ससार मे अन्य किसी वस्तु की सत्ता नही है। आत्मा और ब्रह्म एक ही है।[39]

तीसरे तर्क के अनुसार ब्रह्म और आत्मा की एकता का प्रतिपादन श्रुति भी करती है। श्रुति कहती है - तत्त्वमसि अर्थात् वह तू ही है। इस महावाक्य द्वारा जीव (त्व) और ब्रह्म (तत्) की एकता का प्रतिपादन किया जाता है। देखा जाय तो जीव (उपहित चैतन्य) और ब्रह्म (अनुपहित चैतन्य) की एकता का प्रतिपादन करना ही वेदात का प्रमुख विषय है।[40]

ब्रह्म और आत्मन् की एकता को व्यक्त करने वाले महावाक्य तत्त्वमसि की व्याख्या अभिधा शक्ति के आधार पर की जायगी तो उसका मूल आशय स्पष्ट नही होगा। शकराचार्य ने भी इसका प्रयोग अभिधा अर्थ मे नही किया है। वस्तुत अभिधा, लक्षणा और व्यजना तीनो शब्द शक्तियॉ क्रमश वाच्य लक्ष्य तथा व्यग्य अर्थ का बोध कराती है। व्यजना का प्रयोग काव्य मे होता है। शास्त्रो मे मुख्यत अभिधा का प्रयोग ही होता है। परतु शास्त्रो के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कभी कभी लक्षणा का प्रयोग भी होता है। शब्द की अभिधा शक्ति से जिस वाच्यार्थ का ज्ञान होता है, उसे मुख्यार्थ कहते है। यही लोकप्रसिद्ध अर्थ होता है। लेकिन कभी कभी मुख्यार्थ का अन्वय ठीक न बैठने पर लक्षणा का सहारा लिया जाता है। तत्त्वमसि' का अर्थ भी मुख्यार्थ से नही, लक्ष्यार्थ से ही सिद्ध होता है।

सुरेश्वराचार्य ने तत्त्वमसि महावाक्य की व्याख्या तीन सबधो के आधार पर की है, जो निम्नलिखित है

1 दोनो (तत् और त्व) पदो का समानाधिकरण्य भाव।

2 दोनो (तत् और त्व) पदो का विशेषणविशेष्य भाव।

3 प्रत्यगात्मा और दोनो (तत् और त्व) पदो के वाच्यार्थ मे लक्ष्यलक्षण भाव।

---

39 नहि आत्मव्यतिरेकेण अन्यत किंचिदस्ति। यदि अस्ति न तद विदित स्यात। न तु अन्यद् अस्ति, आत्मैव तु सर्वम। तस्मात सर्वम आत्मनि विदिते विदित स्यात।

वृहदारण्यक उपनिषद भाष्य, 2 4 5

40 विषयो जीव ब्रह्मैक्य शुद्ध चैतन्य प्रमेय तत्रैव वेदाताना तात्पर्यात।

वेदातसार 1

1 समानाधिकरण्य भाव सबध भिन्न प्रवृत्ति निमित्त वाले शब्दो की एक ही अर्थ मे प्रवृत्ति समानाधिकरण्य भाव है। (भिन्न प्रवृत्तिनिमित्तयो शब्दयोएकस्मिन्नर्थे प्रवृत्ति समानाधिकरण्यम)। जैसे– सोऽय देवदत । माना कि देवदत्त नाम के किसी व्यक्ति से पिछले वर्ष हम बनारस मे मिले थे। वह आज हमे प्रयाग मे घूमते दिख गया। उसे देखकर हमे याद आया कि यह वही देवदत्त है (सोऽय देवदत्त)। इसमे स का वाच्यार्थ तत्कालतद्देशविशिष्ट (भूतकाल और बनारस विशिष्ट) देवदत्त है। फिर अय का वाच्यार्थ एतत्कालएतद्देशविशिष्ट (वर्तमान और प्रयाग विशिष्ट) देवदत्त है। यद्यपि स और अय' पदो का प्रवृत्ति निमित्त अर्थ परस्पर भिन्न है कितु दोनो पद समानाधिकरण्य सबध से एक ही देवदत्त का ज्ञान कराते है।

इसीप्रकार तत्त्वमसि महावाक्य मे तत् का वाच्यार्थ परोक्षत्वसर्वज्ञत्वादिविशिष्ट चैतन्य है। फिर त्वम् का वाच्यार्थ अपरोक्षत्व अल्पज्ञत्त्वादि विशिष्ट चैतन्य है। अत तत्' और त्वम् पदो के वाच्यार्थ परस्पर भिन्न अवश्य है कितु समानाधिकरण्य सबध से एक ही अखण्ड चैतन्य तत्त्व का बोध कराते है। अर्थात् समानाधिकरण्य सबध द्वारा तत्' और त्वम पदो से 'चैतन्यस्वरूप ब्रह्म का बोध होता है।

2 विशेषण-विशेष्य भाव सबध जो शब्द अपने विशेष्य को अन्य पदो से व्यावृत्त करता है वह 'विशेषण है तथा जो पद व्यावृत्त होता है उसे 'विशेष्य' कहते है। उदाहरण के लिए– सोऽय देवदत । इसमे अय का वाच्यार्थ एतत्कालएतद्देश-विशिष्ट देवदत्त तथा स ' पद का वाच्यार्थ तत्कालतद्देश-विशिष्ट देवदत्त से भिन्न नही है। इस अवबोध के साथ ही स के लिए तत् शब्द तथा 'अय के लिए 'इद' शब्द विशेषण हो जाते है। इसके साथ ही इद' शब्द तत् शब्द का विशेष्य है। अत विशेषण-विशेष्य सबध से सोऽय देवदत्त ' (यह वही देवदत्त है) का अर्थ ज्ञात होता है। इसी तरह तत् (स) पदवाच्य तत्कालतद्देश विशिष्ट देवदत्त इद (अय) पदवाच्य 'एतत्कालएतद्देश-विशिष्ट देवदत्त' से भिन्न नही है। अर्थात् यह वह देवदत्त है' के ज्ञान के समय इद' तत् पद का विशेषण होता है तथा तत् इद का विशेष्य होता है। परस्पर भेद-व्यावर्तक होने से 'स और अय दोनो पद परस्पर विशेषण और विशेष्य होकर यही देवदत्त है का बोध कराते है। अर्थात् विशेषण-विशेष्य भाव सबध से स और अय से एक ही देवदत्त का तात्पर्य

प्रगट होता है।

इसीप्रकार 'तत्त्वमसि महावाक्य मे त्व पदवाच्य अपरोक्षत्त्व अल्पक्षत्त्वादि विशिष्ट चैतन्य तद् पद्वाच्य परोक्षत्वसर्वज्ञत्वादि विशिष्ट चैतन्य है। ऐसे मे तत्शब्द का अर्थ त्व पद के अर्थ का भेद निवारक होने के कारण विशेषण बनाता है और त्व पद विशेष्य होता है। इसीप्रकार तद पदवाच्य परोक्षत्वसर्वज्ञत्वादि विशिष्ट चैतन्य त्व पदवाच्य अपरोक्षत्व-अल्पज्ञत्वादि विशिष्ट चैतन्य की अभिन्नता के ज्ञान से त्व विशेषण और तत् विशेष्य बनता है। अत तत् एव त्व पदो से विशेषण-विशेष्य भाव सबध के आधार पर अखण्ड चैतन्य रूप एक ही तत्त्व का बोध होता है।

3 **लक्ष्यलक्षण भाव सबध** लक्षणावृत्ति या लक्ष्यलक्षण सबध के आधार पर भी तत्त्वमसि महावाक्य को व्याख्यायित किया जाता है। लक्षणावृत्ति के तीन भेद होते है

(अ) जहल्लक्षणा–वाच्यार्थ का पूर्णरूपेण परित्याग करके उससे सबद्ध अन्य अर्थ का ज्ञान कराने वाली प्रवृत्ति को जहल्लक्षणा कहते है। इसमे लक्षण-लक्षणा वृत्ति का समावेश होता है। उदाहरण के लिए गगाया घोष ' (गगा मे घर है)। इसमे गगा शब्द के वाच्यार्थ प्रवाह का पूर्णतया त्याग करके गगा तट-रूप अर्थातर का ज्ञान लक्षणा से होता है, कितु तत्त्वमसि महावाक्य इसका उदाहरण नही है।

(ब) अजहल्लक्षणा–वाच्यार्थ का त्याग न करके उससे सबद्ध अर्थ का बोध कराने वाली वृत्ति को अजहल्लक्षणा कहते है। यह उपादानलक्षणा भी है। जैसे 'शोणो धावति (लाल दौडता है)। इसमे शोणवर्ण जड होने के कारण दौडने की क्रिया के कर्त्ता रूप मे वाच्यार्थ से नही जुडता है। अत वाच्यार्थ मे अन्वय की सिद्धि के लिए शोण' शब्द अपने वाच्यार्थ का परित्याग न करके उससे सबद्ध शोण अश्व का लक्षणा से ज्ञान कराता है। तत्त्वमसि महावाक्य का अर्थ इससे भी नही प्राप्त होता है।

(स) जहदजहल्लक्षणा–वाच्यार्थ के एक अश का परित्याग करके उसके अवशिष्ट अश का बोध कराने वाली वृत्ति को जहदजहल्लक्षणा कहते है। यह भागलक्षणा भी है, क्योकि इसमे वाच्यार्थ के विरोधी अश का त्याग करके अविरोधी अश को ग्रहण करते है। उदाहरण के लिए सोऽय देवदत्त' मे 'स ' पद का वाच्यार्थ 'तत्कालतद्देश विशिष्ट देवदत्त

तथा अय का वाच्यार्थ एतत्कालएतद्देश विशिष्ट देवदत्त है। इस महावाक्य मे देवदत्ताश मे कोई विरोध नही है। विरोध मात्र तत्कालतद्देशविशिष्टाश और एतत्काल-एतद्देशविशिष्टाश मे है। इसप्रकार जहदजहल्लक्षणा वृत्ति से विरुद्धाश का त्याग करके अविरुद्धाश देवदत्त का बोध होता है।

इसतरह तत्त्वमसि महावाक्य मे तत् का वाच्यार्थ परोक्षत्वसर्वज्ञत्वादि विशिष्ट चैतन्य तथा त्व का वाच्यार्थ अपरोक्षत्व-अल्पज्ञत्वादि विशिष्ट चैतन्य है। दोनो पदो के चैतन्याश मे कोई विरोध नही है। विरोध मात्र परोक्षत्व-अपरोक्षत्वादि अशो मे है। अत जहदजहल्लक्षणा वृत्ति से विरुद्धाशो (परोक्षत्व अपरोक्षत्वादि) का त्याग होकर अविरुद्धाश अखण्ड चैतन्य रूप ब्रह्म का ज्ञान होता है। आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने तत्त्वमसि महावाक्य के सम्यक बोध हेतु जहदजहल्लक्षणा वृत्ति' का समर्थन किया है।

सार रूप मे कहा जा सकता है कि शकराचार्य के अद्वैत दर्शन मे परम मूल्य मोक्ष को स्वीकार किया गया है। यह व्यावहारिक जगत मे नैतिकता की स्थापना करता है तथा आध्यात्मिक स्तर पर अद्वैत ब्रह्म को स्थापित करता है। मायावी जगत के ज्ञान के साथ ही परम मूल्य मोक्ष प्राप्त होता है। अत अखण्ड ब्रह्म के ज्ञान का एकमात्र साधन मोक्ष है।

ब श्रीअरविद के अनुसार परम मूल्य

(1) दर्शनशास्त्र व्यवहार सिद्धात (मूल्य मापदण्ड)

दर्शनशास्त्र मूलत मनुष्य के जीवन एव अनुभवो का सिद्धात है। इसमे व्यावहारिक जीवन के अनुभव होते है। दर्शनशास्त्र व्यवहार का दर्शन है। सभी दर्शन मूल रूप से जीवन-दर्शन है। यह वैचारिक और व्यावहारिक दोनो है। दर्शन केवल बुद्धि के अमूर्तिकरण की शक्ति का व्यायाम नही है, अपितु सीमित मानवीय जीवन की वास्तविक दुनिया से भावनात्मक सबध स्थापित करता है।[41]

---

41 विलियम जेम्स प्रैगमेटिज्म पृष्ठ 20

वस्तुत दर्शनशास्त्र मे व्यावहारिक शब्द को मुख्यतया दो भिन्न अर्थो मे ग्रहण किया गया है। किसी विचार या आचरण को व्यावहारिक कहने का अर्थ है कि वह जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य की पूर्ति मे सहायक बनता है। दूसरे वह किसी निम्नतर लक्ष्य के साधन के रूप मे उपयोगी सिद्ध होता है। यही से मानव व्यावहारिकता के क्षेत्र मे मूल्य के भाव को पकडता है। वह जीवन के साध्य और साधन मूल्यो मे भेद करता है तथा जो दर्शन जीवन के सर्वोच्च मूल्यो को लक्ष्य बनाता है वह निश्चय ही निम्नतर उपयोगिताओ की पूर्ति का लक्ष्य रखने वाले दर्शनो से भिन्न अर्थ मे व्यावहारिक कहा जाता है।

रेखाकित करने लायक है कि जीवन के सर्वोच्च आदर्शो की प्राप्ति मे निम्नतर साध्यो की महत्ता पर ध्यान नही दिया जाता कितु उच्चतम मूल्य को पाने के लिए मानव को भौतिक, जैविक तथा मानसिक मूल्यो की अवहेलना नही करनी चाहिए। उच्चतर आदर्श मे जीवन के समस्त मूल्यो का समावेश रहता है। इस दृष्टिकोण से जीवन का कोई भी मूल्य त्याज्य नही है। वस्तुत जीवन के समस्त मूल्यो मे एक तारतम्य होता है। भौतिक, जैविक आदि मूल्य स्वय-साध्य है अर्थात् इनसे भिन्न कोई अन्य साध्य मूल्य भी हो सकते है, जिनसे यह निम्नतर मूल्य व्युत्पन्न होते है। आरोहरण के क्रम मे उच्चतम मूल्य ही जीवन के सर्वोच्च आदर्श होते है। भारतीय दर्शन मे इसे परम पुरुषार्थ कहा गया है। मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है।

(ii) मानवीय अभीप्सा

मानवीय अभीप्सा के सदर्भ मे भावात्मक पक्ष की अपेक्षा अभावात्मक पक्ष निश्चय ही अधिक महत्त्वपूर्ण है। किसी भी भौगोलिक परिवेश, समाज के किसी भी स्तर या किसी भी आदर्श का उपासक मानव अपनी वर्तमान स्थिति मे असतोष की भावना से जीता है। उसके भीतर एक उच्चतर स्थिति की अभीप्सा भी बनी रहती है। उसमे एक अज्ञात पुकार विद्यमान रहती है। वर्तमान जीवन उसके लिए एक पिजर के समान होता है, जिसे तोडना उसकी प्रवृत्ति होती है।

भारतीय आत्म-द्रष्टा ऋषियो को जीवन के इस परम मूल्य की उपलब्धि अवश्य हुई, लेकिन उसे वे स्पष्ट भाषा मे व्यक्त करने मे असफल रहे। उनकी आध्यात्मिक

अनुभूतियो का शाब्दिक वर्णन गूँगे के इशारो के समान ही अब तक करते रहे है। कुछ कहने का प्रयास उन्होने अवश्य किया कितु असफल रहे। बौद्धिक भाषा से उनका वक्तव्य अधूरा ही रह गया। इस मानवीय अभीप्सा को कुछ हद तक निषेधात्मक रूप मे व्यक्त करने मे सफल रहे है। यह श्रीअरविंद के दर्शन की सबसे बडी विशेषता है कि उन्होने मानवीय अभीप्सा को भावात्मक रूप मे चित्रित करने का प्रयास किया जो अभी तक मूक की भाषा के समान मानव हृदय मे गुजारित रही। श्रीअरविंद ने इसी मृत्युलोक मे अमृतत्व का आश्वासन दिलाया है। इसी पार्थिव जीवन मे रक्त मास युक्त शरीर मे मृत्यजयी दिव्य जीवन की निश्चित सभावना का तर्क युक्तियो से सिद्ध किया है।

श्रीअरविद के दर्शन मे इस महान आशावादिता का मूल स्रोत मानवीय जीवन तथा उसकी सभावनाओ के सबध मे उनकी गहन अतर्दृष्टि रही है। मानवीय अभीप्सा की अस्फुट ध्वनि से प्रेरित होकर वैज्ञानिक की तरह उन्होने मानव जीवन के विश्लेषण से योग साधना की अनुभूतियो को परीक्षित किया। परीक्षण से यह निष्कर्ष निकाला कि मानव का वर्तमान जीवन विश्व विकास मे बौद्धिक मानव, अतिम मानव का स्वरूप नही हो सकता है। एक उज्ज्वल अनागत भविष्य उसके लिए प्रतीक्षारत है। उसे अभी अपने अतिम स्वरूप को विकसित करना है।

वस्तुत श्रीअरविद मनुष्य को सामान्य मनुष्य के रूप मे नही देखते है। मानव का वर्तमान स्वरूप समस्त सासारिक मापदण्डो के अनुरूप नही होता है। उनके अनुसार यह समग्र विश्व एक उच्चतर विकास की सभावनाओ को अपने अदर समाहित रखता है। दिव्य स्वरूप मे जगत के सर्वागीण परिवर्तन की उनकी धारणा तथा निम्नतर प्रकृति के लिए जीव-जतु, वनस्पति जगत के लिए उनकी सहानुभूति उनकी विश्व-जननी मानवता की अपेक्षा अधिक प्रमुख तथा शक्तिशाली है।

श्रीअरविद के मन मे मानव के उच्चतर भविष्य के प्रति दृढ़ प्रत्यय और पूर्ण आस्था थी क्योकि प्रत्येक मानव मे पूर्णता के लिए अभीप्सा और अपने वर्तमान जीवन से असतोष की भावना रहती है। यह मानवीय अभीप्सा का भावात्मक चित्रण है। वर्तमान जीवन का असतोष व्यक्त करता है कि आज का यह मानव, मानव का अतिम रूप नही हो सकता। वस्तुत पूर्णता के प्रति अभीप्सा मानव के दिव्य-स्वरूप की अतिम प्रेरणा है। अज्ञान के

अधकार मे, अनेक दु ख एव कष्ट को झेलते हुए मानव मे पूर्णता की चाह और प्रेरणा से आशा का सचार होता है। मानव अपनी वर्तमान स्थिति से कदापि खुश नही है वह और कुछ चाहता है, कुछ अधिक बनना चाहता है। उसकी कुछ चाह पूरी होती है, वह कुछ और आगे बढता है कि फिर से असतोष के घेरे मे आ जाता है। क्योकि कुछ और अधिक चाहने लगता है। इसतरह ससार के अनगिनत दु खो को झेलते हुए भी उसकी भूख मिटती नही है, उसका सघर्ष चलता रहता है। वस्तुत यही मनुष्य के अनागत दिव्य स्वरूप की कुजी है।[42] श्रीअरविद मे इस मानवीय अभीप्सा के कारण मानव के पूर्णता प्राप्त करने का दृढ प्रत्यय उत्पन्न हुआ। वर्तमान मानवीय दु ख अस्थायी है जो विकास की प्रगति मे ससीमता से उत्पन्न होता है। मानव का विकास सत्, चित् आनद की पूर्णता की ओर ले जा रहा है। अपने महान ग्रथ दिव्य जीवन के पहले ही वाक्य मे उन्होने कहा है कि अपने प्रबुद्ध विचारो के उषा काल मे मनुष्य जिस विषय मे अभिनिविष्ट हुआ – वह ईश्वर के पूर्वभास मे, पूर्णता की प्रेरणा मे विशुद्ध सत्य और विशुद्ध आनद की खोज मे और प्रच्छन्न अमृतत्त्व के बोध मे व्यक्त होता है।

(iii) योग तथा तत्र का प्रभाव

श्रीअरविद के विचारो मे पातजलि योग और तत्रो का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। उनका दर्शन मानवीय सभावनाओ पर जोर देने के साथ-साथ उसके व्यावहारिक पक्ष को भी महत्त्व देता है। उनका सर्वागीण योग आत्मा और परमात्मा का, मानव व अतिमानव का प्रपच व परमार्थ के योग का सपादन करता है। यहाँ ब्रवेस्टर कहते है कि श्रीअरविंद अपने पाठको मे जीवन तथा उसकी सभावनाओ की एक महत्तर एव समृद्धतर धारणा को, जीवन की प्रक्रियाओ की एक तर्कनिष्ठ उपलब्धि को, अपने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और सर्वागीण योग मे सन्निहित अपूर्व सदेश के प्रति विश्वास को जाग्रत करने मे समर्थ हुए। उनका दर्शन अतर्व्याप्त को विश्वातीत से सभूति को सत्ता से और मानव जाति को दिव्यता से युक्त

---

42 अभयचद्र भट्टाचार्या श्रीअरविंद दर्शन पृष्ठ 209

करता है। [43] उनके सर्वांगीण योग का अर्थ परमेश्वर के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण के अभ्यास से दिव्य जीवन मे उत्थान [44] के प्रयत्नो मे निहित है।

श्रीअरविद का मानना है कि विकास एक प्रगति है अग्रगति की दौड है। जब तक जड जगत मे चेतना का उदय नही होता, तब तक साध्य या लक्ष्य नही मिलता। अध कार्य-कारण से जगत की व्याख्या असभव है। विकास प्रक्रिया के साध्य अतिम लक्ष्य तथा प्रेरक तत्त्व पर तर्कपूर्ण विचार प्रस्तुत करते हुए श्रीअरविंद कहते है कि ईश्वर स्वय निम्नतर प्रकृति तथा जड मे निवर्तित होते है। इसीकारण अब तक जड से मन और प्राण का विकास हुआ है। उसका अतिम लक्ष्य उसी ईश्वर मे पुन समाहित होना है। ईश्वरीय शक्ति मानव के मन मे प्रच्छन्न रहकर उसकी अपूर्ण स्थिति के लिए उसमे बेचैनी उत्पन्न करती है। यही पूर्णता की अभीप्सा के रूप मे उत्पन्न होती है। श्रीअरविद ने मानव-जीवन की उज्ज्वल सभावनाओ को प्रस्तुत किया है। उन्होने हेगेल के समान सीमित दर्शन नही दिया, अपितु इन सभावनाओ का भावात्मक चित्रण करके योग-साधना के माध्यम से इनकी प्राप्ति का मार्ग बताया है।

श्रीअरविद के प्रारभिक राजनैतिक जीवन के निबधो मे भी राष्ट्र और समाज के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण मिलता है। भारत की पुनर्जागृति के सदर्भ मे भी उनका दृष्टिकोण व्यावहारिक था। पुनर्जागरण को स्पष्ट करते हुए वे कहते है कि एक नवीन शक्ति-सपन्न देह मे भारत की आत्मा का पुनर्जन्म, जन्मजात तथा प्राचीन अध्यात्म-सत्ता, प्रज्ञा पुराण का एक नया रूप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे जो कुछ भी किया गया है, उसे कही अधिक पूर्ण और सर्वांगीण रूप प्रदान करने पर अवश्य बल दे। [45] आत्मिक शक्ति पर अटूट विश्वास के साथ श्रीअरविंद ने देशवासियो को सर्वव्यापी आध्यात्मिकता से जीवन के हर पहलू को रूपातरित करने का आह्वान किया था। उन्होने आत्मिक शक्ति के विषय मे कहा है कि

---

43 ई एच ब्रवेस्टर द फिलॉसफी ऑफ श्रीअरविंद घोष रिव्यू ऑफ फिलॉसफी एण्ड रीलिजन अप्रैल 1941

44 अनिल वरण राय श्रीअरविंद एण्ड न्यू एज पृष्ठ 52

45 A rebirth of the soul of India into a new body of energy, a new form in its innate and ancient spirit, Prajna purani must insist much more fully and integrally that it has as yet done on its spiritual turn on the greater and greater action of the spiritual motive in every sphere of our living

श्रीअरविंद द रेनेसाँ इन इण्डिया पृष्ठ 68

भाग्य-विपर्यय की हर घडी मे इसी शक्ति ने भारत की निश्चित रूप से रक्षा की है।[46] इसप्रकार श्रीअरविद की सर्वात्म आध्यात्मिकता सन्यास नही है अपितु यह हमारे प्राचीन आध्यात्मिक आदर्श के आधार पर सर्वतोन्मुख परिवर्तन है।

(iv) मानव चक्र के तीन स्तर

श्रीअरविद ने अपने साइकॉलॉजी ऑफ सोशल डेवलपमेट ग्रथ मे जो बाद मे ह्यूमन साइकल (मानव-चक्र) के नाम से प्रकाशित हुआ सर्वतोन्मुखी परिवर्तन का वर्णन किया है। आध्यात्मिक विकास के तीन स्तर होते है – अधोमानसिक, मानसिक और अतिमानसिक या आध्यात्मिक। अतिम अर्थात् आध्यात्मिक स्तर का चरम विकास अधोमानसिक तथा मानसिक विकास की पूर्णता मे कमी न रहने पर ही हो सकता है। श्रीअरविद का मानना है कि अभी तक मानव जाति का आध्यात्मिक विकास स्थायी रूप से नही हो पाया है। स्थायी आध्यात्मिक उत्थान के लिए आतरिक प्रकाश से जीवन के भौतिक जैविक और मानसिक स्तरो का पूरी तरह रूपातरण होना आवश्यक है। मानव का परम मूल्य इसी मे निहित है। वैदिक ऋषि के आत्म प्रत्यय के साथ श्रीअरविद कहते है, 'यदि समाधान न हो, तो कोई समाधान नही है, यदि मार्ग यह न हो तो मानव जाति के लिए कोई मार्ग नही है।'[47]

श्रीअरविंद ने इस परम मूल्य की प्राप्ति के लिए व्यावहारिक साधन-मार्ग पूर्णाग योग को अपनाया है। उनके अनुसार यही एकमात्र मार्ग सपूर्ण मानव जाति को अज्ञान अधकार तथा मृत्यु से ज्ञान प्रकाश तथा अमरता की ओर ले जाने मे समर्थ है। इसका लक्ष्य मानव का मोक्ष न होकर दिव्य मनस् चेतना को मन, प्राण और भौतिकता के अज्ञान मे उतारना है, जिससे दिव्य स्वरूप को इसी धरातल पर अभिव्यक्त कर सके। श्रीअरविंद के योग दर्शन

---

46 Spirituality was certainly that saved India always at every critical moment of her destiny

श्रीअरविंद द रेनेसॉं इन इण्डिया, पृष्ठ 6

47 If this is not the solution, then there is no solution If this is not the way, then there is no way for the humankind

श्रीअरविंद ह्यूमन साइकल पृष्ठ 274

का सबध मानव के विचार या बुद्धि से नही है, और न ही उससे उत्पन्न हुआ है। यह वास्तव मे अभ्यास या साधना का विषय है। योग की व्याख्या करते हुए वे कहते है आत्मत्याग तथा आत्मसमर्पण द्वारा अति मानसिक दिव्य सत्ता के अवतरण को नीचे तक लाने के लिए तथा उसके फलस्वरूप मन प्राण और शरीर के रूपातरण के लिए अहकार एव शरीर की सीमाओ के बाहर चेतना का यह एक प्रसारण है। [48]

श्रीअरविद ने पूर्णाग योग मे सासारिक मानव के जीवन की अवहेलना भी नही की है। वास्तविक मुक्ति' शब्द के सदर्भ मे उनका कहना है कि यह पार्थिव जीवन का बहिष्कार नही आध्यात्मिक आत्मविनाश से व्यक्ति का पलायन ही है, ठीक वैसे ही जैसे वास्तविक त्याग केवल परिवार और समाज का भौतिक परिहार नही है। यह तो ईश्वर के साथ आतरिक तादात्म्य है।[49] इस ससार को स्वर्गिक सुख-शाति का, ज्योति का, पुण्य-धाम बना देना है परमेश्वर के दिव्य प्रकाश से इसे आलोकित करना है।

(v) परम मूल्य का स्वरूप

श्रीअरविद ने पार्थिव जीवन के बहिष्कार की स्वीकृति नही दी है। इसी जीवन को दिव्य बनाना मानव का ध्येय तथा चरम मूल्य माना है। इसीलिए उन्होने अपने मूल ग्रथ को दिव्य जीवन नाम दिया है। निस्सदेह उनका दर्शन, उनके विचार, दु ख-ताप से हताश मानव जाति के अधेरे जीवन मे ज्योति का सचरण करने मे सफल है। यह आगे भी आशा तथा सयम जगाता रहेगा। इस मृत्युलोक मे अमृतत्त्व प्रदान करने मे सहायता करेगा। वर्तमान मानव समाज मे दिव्य समाज के आविर्भाव तथा भौतिक, जैविक और मानसिक

---

48 A widening of consciousness out of the limits of ego and the body to bring down the descent of the supramental Divine through self giving and surrender with a consequent transformation of mind, life and body

श्रीअरविंद रिडिल आफ द वर्ल्ड पृष्ठ 32

49 The true salvation is not the rejection of the terrestrial life or the individual's escape by a spiritual self annihilation, even as the true renunciation is not the mere physical abandonment of family and society, it is the inner identification with the Divine

श्रीअरविंद दि सिंथेसिस आफ योगा पृष्ठ 276

जीवन के समस्त स्तरो के चैत्यीकरण के सदर्भ मे श्रीअरविद का मानना है कि वर्तमान मे मानव जाति विकास प्रक्रिया की सकटकालीन स्थिति से गुजर रही है और इसी मे उसकी परमगति का चुनाव छिपा है।[50]

दिव्य जीवन के स्वरूप के विषय मे श्रीअरविद का मानना है कि उसका वास्तविक रूप यद्यपि बहुत स्पष्ट नही हो पाया है किंतु वर्तमान की अपेक्षा वह निस्सदेह उच्चतर स्थिति का है। आज विश्व मे विज्ञान की अभूतपूर्व प्रगति तथा भौतिक जीवन मे आश्चर्यजनक उन्नति ने मानवीय बुद्धि को बहुत परिष्कृत किया है। यद्यपि यह मानवीय बुद्धि का एकागी विकास है, जिसमे उसकी आध्यात्मिक शक्ति का ह्रास हो रहा है। वर्तमान मे मानवीय आत्मा अतृप्त है, बोझिल है। अनेक बुद्धिजीवियो को यह विश्वास हो रहा है कि यह सभ्यता थोडे समय मे समाप्त हो जायगी, क्योकि बुद्धि-निर्मित वैज्ञानिक सभ्यता के बोझ को सभालने मे सीमित बुद्धि अशक्त हो रही है। विशेष करके इसे सही दिशा मे ले जाने और उपयोग मे लाने के लिए नैतिक और आध्यात्मिक विकास का होना अति आवश्यक है। इस सकटकालीन परिस्थिति मे श्रीअरविंद ने अपना अपूर्व सदेश मानव सभ्यता को दिया। उनका मानना है कि मानव की परिपूर्णता मानव है, परतु वह परिपूर्ण मानव इस बौद्धिक मानव से भिन्न है। वह इतना भिन्न है कि आज के मानव की तुलना मे वह अतिमानव प्रतीत होगा। उसी मे मानव का परम मूल्य निहित है।[51]

यह रेखाकित करने वाला तथ्य है कि अतिमानसिक परिवर्तन नैतिक उन्नति से अलग है। अतिमानस स्वय अति नैतिक है, क्योकि नैतिकता विकास की किसी विशेष अवस्था मे केवल उत्पन्न होती है। इस सीमाबद्ध अवस्था मे मानव को नैतिकता की आवश्यकता होती है। लेकिन अतिमानसिक स्तर पर जिस समय वह सीमाओ को पार कर लेगा उस समय नैतिकता की आवश्यकता ही नही रह जायगी।

नैतिक दृष्टिकोण के बारे मे श्रीअरविंद का कहना है कि, "(विश्व सृष्टि की) एक

---

50 At present mankind is undergoing an evolutionary crisis in which is concealed a choice of its destiny

श्रीअरविंद दि लाइफ डिवाइन पृष्ठ 125

51 अभयचद्र भट्टाचार्या श्रीअरविंद दर्शन, पृष्ठ 214

सामान्यता से दूसरी सामान्यता तक पहुँचने के मार्ग मे यह प्रयुक्त होता है जो अति महत्त्वपूर्ण होने पर भी अस्थायी है। विश्व समस्या के पूर्ण समाधान के लिए हम इसका प्रयोग नही कर सकते है। '[52] मानव अपनी सीमित एव अविकसित दशा मे नैतिक सिद्धातो से प्रकृति के रहस्य को समझने का असफल प्रयास करता है क्योकि पूर्णता प्राप्त मानव-जगत उन लोगो द्वारा सघटित नही हो सकता है, जो स्वय ही अपूर्ण है।[53] इसलिए अतिमानसिक स्तर पर स्थित प्रज्ञान पुरुष अपूर्णता से अलग होने के कारण नैतिकता से भी परे है।

अतिमानस के अवतरण के साथ ही समग्र विश्व मे आमूल और सर्वागीण परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारभ होगी यह कल्पना श्रीअरविद करते है। तब भौतिक, जैविक तथा मानसिक सभी स्थितियो का पूरी तरह आध्यात्मीकरण होगा। इस सर्वागीण परिवर्तन के फलस्वरूप मानसिक मनुष्य प्रज्ञान पुरुषो के रूप मे सामने आयेगा। यह मानव अज्ञान से पूर्णतया मुक्त होगा तथा ज्ञान के प्रकाश से दीप्त होगा।[54] श्रीअरविंद का मानना है कि वर्तमान मानसिक स्तर मे तथा मानसिक विकल्पो की भाषा से अति मानसिक अवस्था या प्रज्ञान पुरुषो की अवस्था का वर्णन सभव नही है। इतना अवश्य है कि अधिमानस से अतिमानस मे परिवर्तन के सूचक कुछ अर्थो का अनुमान किया जा सकता है। यह निश्चित है कि श्रीअरविद ने अति मानसिक स्थिति का वर्णन अनुमान के आधार पर किया है, लेकिन जिस विस्तार और प्राजल भाषा मे प्रज्ञान पुरुषो की प्रत्येक गतिविधि का वर्णन किया है, उससे स्पष्ट है कि यह उनके साक्षात् योगज दर्शनो की शाब्दिक अभिव्यक्ति है।

श्रीअरविद का मानना है कि अति मानसिक मनुष्यो का समाज बहुत थोडे से ज्ञान प्राप्त व्यक्तियो का समाज नही है। अर्थात् प्रज्ञान पुरुषो के समाज को भूल से जीवनमुक्त ब्रह्मज्ञानियो का समाज नही मान लेना चाहिए। श्रीअरविंद ने अति मानसिक विकास मे किसी

---

52 The ethical standpoint applies only to a temporary though all important passage from one Universality to another, we cannot apply it to the total solution of the problem of the Universe

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 116

53 A perfected human world cannot be created by men or composed of men, who are themselves imperfect

वही पृष्ठ 215

54 अभयचद्र भट्टाचार्य श्रीअरविंद दर्शन पृष्ठ 215

व्यक्ति का अकेले नही वरन् सामूहिक रूप से लक्ष्य तक पहुँचने का समर्थन किया है। मुक्तआत्मा अपने एकीभूत प्रत्यक्ष को समान तथा ऊर्ध्व दोनो स्तरो से प्रसारित करता है। विश्व के बहुत्त्व के साथ जब तक उसकी एकता नही हो जाती है, विश्वातीत एक के साथ भी इसका एकत्त्व तब तक अधूरा रहता है।[55] ध्यातव्य है कि अति मानसिक परिवर्तन समस्त जगत प्रक्रियाओ की वैश्विक क्राति है।

श्रीअरविद मानते है कि दिव्य आत्माएँ अपने अनुरूप आत्माओ मे स्वय को ही उत्पन्न करती है। जिस तरह जीव (शरीर) अपने अनुरूप जीवो (शरीर) मे उत्पन्न करता है। इसीकारण जैसे ही एक आत्मा मुक्त होती है वैसे ही वह दिव्य आत्म चेतना पार्थिव मानव जाति की अनुकूल अन्य आत्माओ के भीतर भी सचरित होता है। बल्कि कहा जाय कि वह एकदम से फूट पडती है और कौन जाने, शायद पार्थिव चेतना के परे भी ऐसा ही हो।[56] इसलिए अति मानसिक सत्ता मे एव दिव्य जीवन मे आरोहण करने पर ही मानव को परम मूल्य की प्राप्ति हो सकती है।

वस्तुत अति मानसिक चेतना अवतरित होकर सपूर्ण विश्व को एक साथ परिवर्तित नही कर देगी। श्रीअरविद का तर्क है कि सबसे पहले उन्ही व्यक्तियो मे इसका अवतरण होता है जो इसे ग्रहण करने मे समर्थ होते है। प्रज्ञान चेतना का सदर्भ उन सभी चेतनाओ से जुडा है जो अस्तित्व के सत्य पर आश्रित है न कि अज्ञान अथवा निर्ज्ञान मे डूबे हुए है।[57] इस स्थिति मे भी उन जीवधारियो का अस्तित्व रहेगा, जो मनस् की सीमा को

---

55 The lıberated soul extends ıts perceptıon of unıty horızontally as well as vertıcally Its unıty wıth the transcendent one ıs ıncomplete wıthout ıts unıty wıth Cosmıc Many

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 49

56 The dıvene soul reproduces ıtself ın sımılar lıberated souls as the anımal reproduces ıtself ın sımılar bodıes Therefore, whenever even a sıngle soul ıs lıberated, there ıs a tendency to an extensıon and even to an outburst of the same dıvıne self consciousness ın other ındıvıdual souls of our terrestrıal humanıty and–who knows?—Perhaps even beyond the terrıstrıal consciousness

वही पृष्ठ 49 50

57 The descııptıon of gnosıs applıes to all consciousness that ıs based upon Truth of beıng and not upon the Ignorence or Nescıence

वही भाग 2 पृष्ठ 152

अतिक्रमित करने को तैयार रहते है और अतिमानस के उच्च शिखर पर चढने को तैयार नही होते। ऐसे मे प्रज्ञान पुरुषो का कार्य शेष ससार को ऊपर उठाने का है। श्रीअरविद स्वीकारते है कि एक स्थायी अति मानसिक स्थिति मे पहुँचने के लिए यद्यपि शताब्दियो तक प्रयास करना पड सकता है[58] लेकिन वह स्थिति आकर रहेगी। ससार की परमागति एक अवश्यभावी घटना है।

(vi) अतिमानस की प्राप्ति

श्रीअरविद ने अपने ग्रथ 'मानव चक्र मे स्थायी अतिमानसिक प्रज्ञान चेतना मे पहुँचने के लिए कुछ आवश्यक शर्तो का वर्णन किया गया है। वे शर्ते है

सबसे पहले तो दो शर्तो का एक समय मे पूरा होना जरूरी है। व्यक्ति ऐसा होना चाहिए जो अध्यात्म की प्रतिमा मे स्वय को देख सके, विकसित कर सके और फिर से ढाल सके। साथ मे अपनी भावनाओ और शक्तियो को सर्वसाधारण तक सक्रमित कर सके। दूसरी शर्त को भी पहली के साथ ही पूरा होना है। दूसरी शर्त के अनुसार, सामान्य व्यक्ति को उन सक्रमित भावनाओ एव शक्तियो को ग्रहण करने मे तथा क्रियाशील रूप से आत्मसात करने मे समर्थ होना चाहिए। सामाजिक अक्षमता ही अतिमानसिक अवतरण मे सबसे बडी बाधा सिद्ध होती है।

अतिमानसिक स्थायी अवतरण की तीसरी शर्त समग्र मानव जाति का निम्नतर विकास पूरा करना है। यद्यपि अतिमानसिक विकास का प्रारभ कुछ अल्पसख्यक प्रज्ञान चेतना प्राप्त व्यक्तियो से होता है, लेकिन इसके स्थायी रूप लेने के लिए समस्त मानव जाति को आध्यात्मिक चेतना के एक सुदृढ़ बुनियाद पर व्यापक रूप से ऊपर की ओर बढते हुए विकास की पूर्णता को प्राप्त करना है। यदि इस आध्यात्मिक प्रगति ने सामूहिक मन को अपने साथ नही लिया तो इससे मानवीय अस्तित्व की सभी दिशाओ मे भयानक क्राति उत्पन्न होगी। यह एक सर्वागीण विकास है जिसमे मनुष्य के भौतिक, जैविक और बौद्धिक मे

---

58 It would take long centuries of efforts to come into some kind of permanent birth
श्रीअरविंद द ह्यूमन साइकल पृष्ठ 332

से किसी एक पक्ष का भी विकास कम या अधूरा नही रह सकता है। शरीर, प्राण और मन तीनो का आध्यात्मीकरण होना जरूरी है। यदि समाज का व्यापक अश अधोमानसिक स्थिति मे रहता है या फिर भी आध्यात्मिक विकास करता है तो उसे पहले की अवस्था मे लौटना होगा और मानव-चक्र की एक बार फिर से उसे परिक्रमा करनी होगी।[59]

चौथी शर्त के अनुसार अतिमानसिक विकास का ज्ञान के हर क्षेत्र मे समान रूप से विस्तृत होना आवश्यक है। अतिमानस की विस्तृत परिधि मे भौतिक एव मानसिक विज्ञान नीतिशास्त्र अर्थशास्त्र सौदर्यशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र आते है। आध्यात्मिक समाज मे इन समस्त शास्त्रो का मूल लक्ष्य और झुकाव आत्मविकास तथा आत्मान्वेषण की ओर मोडना है। व्यष्टि और समष्टि मे दिव्यात्मा को प्राप्त करना तथा मन, प्राण और शरीर मे उसे व्यक्त करना इसके साथ ही समस्त मानवो के आतरिक जीवन और बाह्य क्रियाओ मे उसकी महत्तम व्यापकतम उच्चतम तथा गहनतम सभावनाओ को उपलब्ध करना ही एकमात्र लक्ष्य होगा।[60]

इस सबके साथ एक आवश्यक शर्त यह भी है कि अतिमानसिक स्तर पर मानवीय मन ईश्वर, मुक्ति एव एकता रूपी तीन तत्त्वो से सचालित हो। ईश्वर परमात्मा होने के साथ ही समस्त जीवो मे आत्मा के रूप मे विद्यमान रहता है। वस्तुत व्यक्तिगत आत्मा उस परमात्मा का स्फुलिग है। इसीलिए उनका स्वतत्र होना आवश्यक है। सामुदायिक आत्माओ मे भी आतरिक स्वतत्रता का होना आवश्यक है। लेकिन स्वतत्रता का अर्थ अलग-अलग व्यक्तिगत क्रियाओ या भिन्न भिन्न जातियो की विरोधी क्रियाओ से समाज का विघटन होना नही है। इसीलिए तीसरे तत्त्व को एकता माना गया है। वस्तुत समस्त आत्माएँ स्वरूप की दृष्टि से एक होने से उनके कार्यो मे भिन्नता नही होती है। आध्यात्मिक जीवन चेतना और विभेदीकृत एकता का एक पुष्प है।

इन शर्तो के अलावा व्यक्तिगत मनुष्यत्त्व को आध्यात्मिक प्रारूपो के सॉचो मे गत्यात्मक रूप मे पुन ढल जाना चाहिए। आध्यात्मिकता स्वभावत यात्रिक न होकर

---

59 अभयचद्र भट्टाचार्या श्रीअरविंद दर्शन पृष्ठ 217

60 वही पृष्ठ 218

आत्मनिष्ठ है। प्रतीक प्रारूप प्रथाएँ या प्रत्यय पर्याप्त नही है। आध्यात्मिक सत्य ही सदैव विद्यमान रहता है। श्रीअरविद जोर देते हुए कहते है कि यहाँ इस पृथ्वी पर मनुष्य को बनना है। यही पर सशरीर और इसी जीवन मे बनना है। यदि मानव स्वय सत्य का मूर्त विग्रह नही बनता तो उसका प्रभाव मानव जाति पर कदापि नही पडेगा। श्रीअरविद के अनुसार, मरणोपरात मुक्ति वास्तविक नया जन्म नही है, जिसके लिए मनुष्य जाति अपने तमसाच्छन्न कष्टकर मार्ग से गुजरता हुआ, परम उत्थान के रूप मे प्रतीक्षमान है।[61]

इसप्रकार श्रीअरविद अतिमानसिक चेतना को स्थायी रूप से प्राप्त करने हेतु इन शर्तो का उल्लेख करते है। उन्होने स्वीकारा है कि मानव की परमागति का मार्ग अत्यत कठिन है कितु यही मानव जीवन की चरम सार्थकता है। वे कहते है कि इस निष्कर्ष पर पहुँचने के पीछे कोई ऐसी तार्किक आवश्यकता नही है कि यह परिवर्तन शुरू ही नही हो सकता हॉ इसे ला पाना तत्काल सभव नही है।[62]

(vii) नॉस्टिक बीइग का स्वरूप

मानव की अतिम नियति या परमागति के वर्णन मे अतिमानसिक स्तर पर मनुष्य के स्वरूप का वर्णन भी आवश्यक है। दिव्य जीवन के द्वितीय भाग के द्वितीय खण्ड मे काव्यमय भाषा मे श्रीअरविद ने अतिमानसिक मानव या प्रज्ञान पुरुष का वर्णन किया है। वस्तुत नास्टिक बीइग (Gnostic Being) या प्रज्ञान पुरुष रहस्यवेत्ता मनुष्य का एक रूप है। ईसाई धर्मशास्त्र मे रहस्यानुभूति को नॉसिस (Gnosis) कहा गया है। प्राचीन ईसाई समाज मे उन व्यक्तियो को नॉस्टिक कहते थे जो परम तत्त्व ज्ञान और रहस्यानुभूति को जानने का दावा करते थे। अति मानसिक स्तर पर मानव को 'नॉस्टिक रेस (Gnostic Race) या अतिमानसिक मनुष्य को 'नॉस्टिक बीइग कहते थे। श्रीअरविंद द्वारा इसे नॉस्टिक

---

61 Not some post mortem salvation is the real new birth for which humanity waits as the crowning movement of its long obscure and painful course

श्रीअरविंद द ह्यूमन साइकल पृष्ठ 329

62 After all there is no logical necessity for the conclusion that the change cannot begin at all because its perfection is not immediately possible

वही, पृष्ठ 274

बीइग कहने का एकमात्र उद्देश्य ऐसे शब्द का प्रयोग करना है जो पाश्चात्य अध्येताओ के लिए सहज रूप से बोधगम्य हो और सभी के लिए भाव व्यजक भी हो। इस सदर्भ मे मुक्तात्मा शब्द का प्रयोग कम हुआ है क्योकि मुक्ति शब्द का प्रयोग जीवन्मुक्ति और विदेह मुक्ति दोनो के लिए होता है, कितु अतिमानसिक मानव इन दोनो मे से कुछ नही है। यह जीवन्मुक्त के समान प्रारब्ध कर्मो के कारण देह-धारण नही करते है। ईसाईयो मे नॉस्टिक ससार मे रहने वाले पूर्ण तत्व ज्ञानी है। यद्यपि वे अतिमानसिक मानव की तरह शरीर, प्राण और मन के पूर्ण आध्यात्मीकरण से पार्थिव वर्तमान जीवन मे अमृतत्त्व को नही प्राप्त करते है। फिर भी नॉस्टिक शब्द को जीवन्मुक्त शब्द से अधिक भावव्यजक समझना होगा क्योकि नॉस्टिक विदेह सारूप्य-मुक्ति के लिए प्रतीक्षारत नही होता और प्रारब्ध कर्म के क्षय के लिए जीवित नही रहता है।[63]

वस्तुत नॉस्टिक बीइग के लिए प्रज्ञान पुरुष शब्द अधिक प्रचलित है। इसीलिए यहॉ पर बहुप्रचलित शब्द को ही लिया गया है। यह स्पष्ट है कि श्रीअरविंद के नॉस्टिक बीइग से तत्त्वज्ञान की उस अवस्था का सकेत मिलता है, जिसे स्वामी श्रीरामकृष्ण विज्ञानी' की अवस्था कहते है।[64] विज्ञानी ज्ञान अज्ञान से परे होता है। नेति-नेति के विचार से ज्ञानी ब्रह्म के अक्षर अचल तथा निष्क्रिय रूप को ही सत्य समझता है और इस क्षर जगत को मिथ्या कहता है। लेकिन इस सबके ऊपर भी एक अवस्था है, जहॉ यह क्षर तथा परिवर्तनशील जगत मिथ्या नही होता। यही परमसत्ता जगत के रोम रोम मे व्याप्त है।

जिसप्रकार श्रीरामकृष्ण कहते है कि किसी ने दूध सुना है तो किसी ने दूध देखा भी है और कोई ऐसा भी होता है जिसने दूध पिया है और पीकर हृष्ट-पुष्ट हुआ है।[65] अर्थात् विज्ञानी परोक्ष एव अपरोक्ष ज्ञानी की तरह परम तत्त्व का श्रवण या दर्शन मात्र नही करता है अपितु स्वय को उसी तत्त्व का मूर्त-विग्रह बना लेता है। श्रीअरविंद का भी यही मानना है कि आध्यात्मिक सत्य अनत काल से अस्तित्त्व मे है, लेकिन मानव जाति के लिए इससे कोई फर्क नही पडता है। यदि हर मानव सत्य का मूर्त-विग्रह नही बनता, तो

---

63 अभयचद्र भट्टाचार्या श्रीअरविंद दर्शन, पृष्ठ 219 220

64 वही पृष्ठ 220

65 श्री म श्रीरामकृष्ण वचनामृत भाग 2 पृष्ठ 88 89

अतिमानसिक स्तर पर मानव सत्य-स्वरूप बन जाता है।'[66] विज्ञानी के रूप मे श्रीरामकृष्ण के जो आध्यात्मिक अनुभव लिपिबद्ध है वह श्रीअरविंद के नॉस्टिक बीइग से मिलते है। अत नॉस्टिक बीइग और विज्ञानी समान है।

अतिमानस के अवतरण होते ही सारे विश्व मे सर्वागीण परिवर्तन होता है। फलस्वरूप वर्तमान मनुष्य प्रज्ञान पुरुष मे बदल जाता है। परतु अतिमानस के अवतरण के साथ समस्त परिवर्तन एक साथ नही होते। पहले कुछ मनुष्य उस अवस्था को प्राप्त करते है, धीरे-धीरे अतिमानस का प्रकाश सारे विश्व को आच्छादित कर लेता है। श्रीअरविद का यह भी मानना है कि अतिमानसिक स्थिति प्राप्त कर लेने से विकास की प्रक्रिया समाप्त नही हो जाती है। विकास क्रम आगे आनद, चित् शक्ति तथा शुद्ध सत् के सोपानो तक बढता रहेगा। नॉस्टिक बीइग अर्थात् प्रज्ञान पुरुष के स्वरूप की स्पष्ट व्याख्या श्रीअरविद ने की है, जो इस प्रकार है

जब तक अज्ञान अथवा निश्चेतना से विकास का क्रम अतिमानस तक नही पहुँचता, तब तक आत्मा की ऊपरी चेतना और अवगूढ़ चेतना के मध्य भेद रहता है। मानव की ऊपरी चेतना अर्थात् अन्नमय प्राणमय या मनोमय पुरुष का विकास धीरे-धीरे विकसनशील चैत्य पुरुष के प्रभाव मे होता है, लेकिन अवगूढ चेतना अर्थात् चैत्य पुरुष स्वय नीचे से विकास करते हुए ऊपर के प्रकाश (अतिमानस की प्रज्ञान चेतना) से विशेषत विकसित होता है, कितु अतिमानस के प्रकटीकरण के साथ इस नियम मे परिवर्तन हो जाता है। ऐसा इसलिए कि अब नीचे की निश्चेतना के विकास की सभावना समाप्त हो जाती है। निश्चेतना अतिचेतना मे रूपातरित हो जाती है। इसी अति चेतना से प्रज्ञान पुरुष का जन्म होता है।

अतिमानस के प्रगटीकरण से मात्र मनोमय पुरुष का ही चैत्यीकरण नही होता, अपितु विकास के निम्नतर स्तर भी इससे प्रभावित होते है। अतिमानस के प्रकाश एव शक्ति, भौतिक एव जैविक स्तरो तक जाकर उन्हे और क्रियाशील बनाते है तथा उनके प्रच्छन्न सत्य को जगाते है।

वस्तुत अतिमानसिक अवस्था मे प्रज्ञान पुरुष का ज्ञान अतरानुभूति से सचालित होता है। इस अवस्था मे सभी के प्रति तथा एक-दूसरे के प्रति समझ सहानभूति और प्रेम मे

---

66 अभयचद्र भट्टाचार्या श्रीअरविंद दर्शन, पृष्ठ 220

वृद्धि होती है। वर्तमान समय मे प्रकाश और अधकार की लडाई के बजाय प्रज्ञान पुरुष कम से अधिक प्रकाश की तरफ गमन करता रहेगा।

श्रीअरविद ने माना है कि एक प्रज्ञान पुरुष दूसरे से भिन्न होता है। 'अतिमानसिक या प्रज्ञान पुरुषो की जाति किसी एक ही प्रारूप के अनुसार निर्मित या किसी एक निश्चित सॉचे मे ढाली गयी जाति नही होगी।[67] अतिमानस अवस्थाओ मे विभेद का कारण अतिमानस का स्वय विविधताओ मे एकता सपादनकारी तत्त्व होना है। इसी कारण प्रज्ञान चेतना अनत विभेदताओ मे दृष्टिगत होता है। यद्यपि मूल चेतना एक ही रहती है।

श्रीअरविद की सोच मे अतिमानसिक मानव आध्यात्मिक मानव की प्रतिपूर्ति है। इसकी सत्ता पूर्णत सर्वात्मक आध्यात्मिक शक्ति से सचालित होगी। सभी आत्माऍ एक-दूसरे को अपने समान ही मानती है। अतिमानसिक मानव ही व्यक्ति है, क्योकि सच्चा व्यक्ति कोई अलग सत्ता नही है, उसकी वैयक्तिकता वैश्विक होती है। वह विश्व को वैयक्तिक रूप देता है। वह विश्व मे एव विश्व का होगा, किंतु अपनी चेतना मे इनसे परे भी होगा। वह विश्व मे स्वतत्र होगा तथा स्वतत्र होकर व्यक्ति के रूप मे भी रहेगा।

अतिमानस का एकमात्र लक्ष्य स्वय की आत्मा की ओर निर्देशित करना है। उसके लिए विश्व आत्मा मे, आत्मा के लिए आत्मा की प्राप्ति है। धार्मिक नैतिक राजनैतिक सामाजिक, आर्थिक सुखवादी अथवा मानसिक जैविक, भौतिक समस्त ज्ञान कर्म एव विचार जीवन के लक्ष्य कदापि नही है। प्रज्ञान पुरुष के लक्ष्य एव कर्म आत्मा से ही उत्पन्न होते है और आत्मा से ही नियत्रित भी होते है। प्रज्ञान पुरुष एक ओर सार्वभौम चेतना और दूसरी ओर सर्वगत तथा वैयक्तिक आत्माओ मे पूर्ण सामजस्य बनाकर कार्य करता है। उसका स्वय का सकल्प समुदाय के सकल्प से कभी भिन्न नही हो सकता है। इसीलिए उसके व्यक्तिगत और सामुदायिक कर्म मे सदैव सगति रहती है। वह अहकार मुक्त होने के कारण सभी से सामजस्य स्थापित किये रहता है।

प्रज्ञान पुरुष के सत्तावान होने से ही सत्ता के उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है। सत्ता की

---

67 A supramental or a gnostic race pattern

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन द्वितीय भाग पृष्ठ 155

चेतना ही चेतना का उद्देश्य है एव उसका आनद आनद का उद्देश्य है। उसमे किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा और आवश्यकता नही होती। उसके लिए सभी ज्ञान आत्म-ज्ञान होगा सभी शक्ति आत्म-शक्ति होगी तथा सभी आनद आत्म-आनद होगे।

मानव की आत्मिक क्रिया का माध्यम शरीर है। वस्तुत शरीर की स्वय की क्रियाएँ होने से आत्मा का उस पर कोई अधिकार नही है। लेकिन अतिमानसिक अवस्था मे मानव भौतिक शरीर को ग्रहण करेगा। उसके लिए सुख दु ख का कोई महत्त्व नही है। ऐसे मे प्रज्ञान चेतना का सार्वभौम आनद भौतिक जैविक तथा मानसिक समस्त स्तरो पर दृष्टिगत होगा। वह सबकुछ को आनद का ही प्रकाश समझेगा।

(viii) प्रज्ञान पुरुष तथा जीवन्मुक्त के स्वरूप मे अतर

श्रीअरविद के अतिमानसिक मानव या नॉस्टिक बीइग के स्वरूप का विश्लेषण किया जाय तो भारतीय दर्शन मे प्रचलित जीवन्मुक्त की अवधारणा से उसकी भिन्नता प्रतीत होती है। वस्तुत यह दोनो अवधारणाएँ पूर्णतया भिन्न है। शकराचार्य द्वारा स्थापित जीवन्मुक्त और श्रीअरविद द्वारा स्थापित प्रज्ञान पुरुष की अवधारणा को ही देखे तो इनमे पर्याप्त अतर है। अतर के कुछ बिंदु इसप्रकार है

पहला अतर तो यह है कि प्रज्ञान पुरुष जीवन्मुक्त की तरह प्रारब्ध कर्म के कारण विश्व मे निर्विकार होकर नही रहता है। वह मानसिक तथा शारीरिक नियमो से सचालित नही होता है। वह केवल आध्यात्मिक नियमो से ही सचालित होता है। इसीकारण जीवन्मुक्त के समान दोनो नियमो से आसानी से निकल जाता है। वस्तुत प्रज्ञान पुरुष का शरीर, इद्रियाँ अथवा मन पूर्ण आध्यात्मिक नियत्रण से नयी दिशाओ मे नये विकास की ओर सचालित होता है, जबकि ऐसी कोई सभावना जीवन्मुक्त के साथ नही होती है।

शकराचार्य का जीवन्मुक्ति का सिद्धात भारतीय दर्शन के मुक्ति के सिद्धात पर आधारित है, जबकि श्रीअरविंद ने सर्वमुक्ति के सिद्धात का प्रतिपादन किया है। शकराचार्य के अनुसार व्यक्तिगत मुक्तिकामी साधको के प्रयत्नो से कोई-कोई ही जीवन्मुक्त की अवस्था तक पहुँच पाता है। सपूर्ण विश्व मे अज्ञान के व्याप्त होने पर भी एक या कुछ जीवन्मुक्त स्वय मे ब्रह्मज्ञान को सीमित रखते है। श्रीअरविद का सिद्धात सर्वमुक्ति पर आधारित है।

अत व्यक्तिगत साधना के परिणामस्वरूप भी प्रज्ञान पुरुष नही हो सकता है। प्रज्ञान पुरुषो की एक पहचान होती है जो प्रत्येक सर्वगति चैतन्य को स्वय मे तथा स्वय को चैतन्यमय जगत मे देखते है।

शकराचार्य ने जीवन्मुक्ति को विदेह-मुक्ति से पूर्व की अवस्था स्वीकार किया है। प्रारब्ध क्षय हेतु जीवन्मुक्त देह-धारण किये रहता है। देहावसान के बाद ब्रह्मलीन होकर सारूप्य मुक्ति प्राप्त करता है। इसलिए शकराचार्य ने जीवन्मुक्ति को मानव के चरम उत्कर्ष और परिपूर्णता की स्थिति माना है। इसके आगे विकास की कोई सभावना नही है। लेकिन श्रीअरविद का मानना है कि अतिमानसिक स्तर को प्राप्त करने के बाद भी विकास की प्रक्रिया रुकती नही है। प्रज्ञान पुरुषो की जाति तारतम्य के साथ आगे बढ़ती रहेगी, मानो किसी उज्ज्वल सोपान के कदमो पर चढती रहेगी। अतिमानस के अवतरण होने तक विकास की प्रक्रिया अज्ञान से ज्ञान की ओर बढती रहेगी, किंतु जब अतिमानस के शुद्ध ज्ञान को मानव प्राप्त कर लेगा तब विकास आत्म-चरितार्थ ज्ञान मे फिर भी चलता रहेगा। अत वह जीवन्मुक्त विकास का अतिम छोर न होकर आत्मचरितार्थ ज्ञान हेतु ब्रह्मानद का रसास्वादन तथा उपभोग अनेक प्रकार से करता है।

अतिमानस की स्थिति मे पहले कुछ प्रज्ञान पुरुषो की उत्पत्ति ससार मे होती है उसके बाद उनकी दिव्य चेतना दूसरो मे स्वत सचरित होती जाती है। भारतीय आध्यात्म चितन मे साधु-सग या सत्सग की महिमा का सर्वत्र वर्णन मिलता है। आत्मद्रष्टा महापुरुषो के सपर्क से आध्यात्मिकता की स्फूर्ति पैदा होती है किंतु इसकी सभावना बहुत कुछ पात्रता पर भी निर्भर करती है। श्रीअरविद ने माना है कि स्थायी अतिमानसिक परिवर्तन हेतु प्रज्ञान पुरुषो से सचारित दिव्य चेतना को स्वय मे धारण करने वाले पात्रो की आवश्यकता है। श्रीअरविद के समर्थको का मानना है कि साधक जब शकराचार्य के जीवन्मुक्ति की अवस्था को प्राप्त कर लेता है तब उसके साथ न तो ऐसी कल्पना की जा सकती है और न ही ऐसा कोई उल्लेख कही प्राप्त होता है।[68]

जीवन्मुक्त कर्म शरीर के कारण जीवित रहता है, उसकी समाप्ति के साथ ही विदेह-मुक्ति हो जाती है। विदेह मुक्ति के साथ उसकी स्वय की वैयक्तिकता भी समाप्त हो

---

68 अभयचद्र भट्टाचार्या श्रीअरविंद दर्शन पृष्ठ 226

जाती है। वह ब्रह्म से एकाकार हो जाता है। यहॉ श्रीअरविंद प्रज्ञान पुरुष की वैयक्तिकता जीवन्मुक्त की तरह अस्थायी नही मानते है। वह अति चेतन अवस्था मे स्थायी रूप से सशरीर अमरत्व को प्राप्त करके जीवित रहता है। प्रज्ञान पुरुष की वैयक्तिकता मानव जैसी सीमित नही होती है। उसमे अहकार का लेश मात्र भी नही होता है। इसीलिए वह समस्त विश्व के साथ एक होकर भी स्वय को विद्यमान रखता है। वह शरीर, प्राण मन आदि के साथ स्थायी रूप से एक बना रहता है।

शकराचार्य और श्रीअरविद के परम मूल्य की तुलना

शकराचार्य के दर्शन मे जीव का परम मूल्य मोक्ष है। आत्मा स्वभावत शरीर इद्रियादि से स्वतत्र है किंतु अज्ञानवश वह स्वय को इन्ही से बॅधा हुआ समझती है। वह मायायुक्त समाज मे अनेक प्रकार के सुख दु खादि झेलती है। इस अज्ञानता के नाश के लिए ज्ञान का प्रकाश होना चाहिए। आत्मा का ब्रह्म से एकाकार भाव के साथ ही परममूल्य मोक्ष की प्राप्ति होती है।

जबकि श्रीअरविद का मत है कि पारमार्थिक सत् एकमात्र अद्वितीय सत्ता है, जिसके अनेकता की प्रतीति अज्ञानता है। सीमाबद्ध लौकिक तर्को को सत् मानना एव उनके द्वारा जीवात्मा और परमेश्वर को अलग-अलग पारमार्थिक मानना, निराकार एव साकार मे शाश्वत भेद मानना अज्ञानता के द्योतक है। श्रीअरविद के अनुसार मानव का एक विशिष्ट और प्रमुख स्थान है। मानव आत्म-ज्ञान के माध्यम से पारमार्थिक सत् के निकट होने तथा उससे अपनी अभिन्नता का अनुभव करता है। इस सत् के साक्षात्कार मे व्यक्ति अपने स्व को विलीन न करके और सुदृढ करता है। पारमार्थिक सत् की अभिव्यक्ति के रूप मे स्वय को समर्थ पाता है।

शकराचार्य का मोक्ष विशुद्ध ज्ञान स्वरूप है। वे जीवन्मुक्ति, अर्थात् यह सिद्धात कि मोक्ष शरीर रहते भी प्राप्त हो सकता है और उसका शरीर की उपस्थिति के साथ कोई विरोध नही है, कट्टर समर्थक है। शकराचार्य के अनुसार, मोक्ष स्वय का ब्रह्म से अभेद ज्ञान है। आवश्यक नही कि ऐसा ज्ञान शरीर त्याग करने के पश्चात् ही प्राप्त हो। उनके अनुसार, व्यावहारिक जीवन का भ्रम केवल ज्ञान से दूर होता है, न कर्म से, न ज्ञान और

कर्म के समुच्चय से और न भक्ति से। इसीप्रकार ब्रह्म-जगत का भ्रम भी केवल ज्ञान से ही दूर हो सकता है। इस भ्रम का दूर होना ही मोक्ष ही प्राप्ति है। शकराचार्य का निश्चित मत है कि मोक्ष का प्रत्यक्ष साधन केवल यह अनुभूति (ज्ञान) है कि तात्विक रूप से ब्रह्म ही सत्य है मै ब्रह्म से अभिन्न हूँ और नामरूपात्मक यह जगत मिथ्या है क्योकि वह ब्रह्म पर आरोपण है। मोक्ष केवल इस सत्य की अनुभूति है कि यह जगत ब्रह्म है और जीव का ब्रह्म से अभेद है।[69]

अत मे यह कहा जा सकता है कि शकाराचार्य का परम मूल्य मोक्ष श्रीअरविंद के ऐक्य दर्शन मे व्यक्त विचारो से भिन्न नही है। विश्लेषण मे यह तथ्य सामने आता है कि वस्तुत ऐक्य दृष्टि से उन तत्त्वो की श्रीअरविद ने नयी व्याख्या प्रस्तुत की है। कोई निराकरण उन्होने नही दिया है। शकराचार्य और श्रीअरविद के परम मूल्य का अध्ययन तथा विवेचन करने पर स्पष्ट होता है कि दोनो ने वस्तुत एक ही परम मूल्य मोक्ष' को स्वीकार किया है, साथ ही पारमार्थिक सत् की प्राप्ति मे मानव की सद्गति माना है। किंतु इस परम मूल्य की प्राप्ति के मार्ग एव साधन मे भिन्नता होने के साथ ही दोनो की व्याख्या मे भी अतर है। शकराचार्य का दर्शन तार्किकता, वैज्ञानिकता तथा आस्तिकता का पूर्ण सामजस्य रखता है, किंतु श्रीअरविद के दर्शन मे मात्र वैज्ञानिकता का नवीन प्रभाव ही दृष्टिगत होता है।

□□□

69 डॉ मृदुला आर प्रकाश दार्शनिक चिंतन प्रवाह पृष्ठ 121 124

उपसंहार

उपसंहार

शकराचार्य तथा श्रीअरविद के मतो की विवेचना और महत्ता का आकलन करने के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि इन मतो की परस्पर समानता और विभिन्नता का भी अध्ययन किया जाय। दोनो मे से जिसके विचार अधिक तर्कसगत, प्रासगिक और मूल्यवान हो, उसी चितनधारा की श्रेष्ठता स्थापित हो सकती है। इस परिप्रेक्ष्य मे देखा जाय तो शकराचार्य का समस्त दर्शन श्रुत्यानुगत सिद्ध होता है। तर्कशिरोमणि शकराचार्य ने सघन तर्को के सहारे श्रुतियो की व्यावहारिक परपरा, उच्चता और प्रासगिकता की स्थापना की है। श्रुतियो के विपरीत अनुगमन करना उन्हे स्वीकार न था।

शकराचार्य और श्रीअरविद के दार्शनिक सिद्धातो और उनके मतो की तुलना करते समय उनमे परस्पर विरोध दृष्टिगत होता है। शकराचार्य ने व्यावहारिक जगत के नानारूपो को अस्वीकार किया है लेकिन श्रीअरविद ने प्रस्तुत जगत को मान्यता देते हुए इसे सत् कहा है। शकराचार्य के लिए नानारूपो वाला यह जगत माया' या भ्रममात्र है। ब्रह्म ही एकमात्र सत् है। ब्रह्म का ज्ञान न होने पर जगत सत लगता है। लेकिन अज्ञान का आवरण नष्ट होते ही ब्रह्म की प्रतीति होती है। शकराचार्य के मत की सम्यक् समीक्षा की जाय तो ज्ञात होगा कि उनके लिए जगत आकाश-कुसुम तथा बध्या-पुत्र के समान असत् नही है। यहॉ असत्, ब्रह्म के अतिरिक्त किसी अन्य सत्ता के न होने के अर्थ मे है। शकराचार्य ने सत्ता के आधार पर सत् के तीन रूप बताया है – प्रातिभासिक, व्यावहारिक और पारमार्थिक। व्यावहारिक अज्ञान से आच्छादित होने के कारण ही मानव को नानारूपात्मक जगत का अस्तित्व दिखता है। जगत वस्तुत ब्रह्म ही है। ब्रह्म पारमार्थिक सत् है। यह अनिर्वचनीय जगत न सादि है और न सात है। यह ब्रह्म मे अवस्थित ब्रह्म का ही रूप है।

इसी के साथ यदि श्रीअरविद के मत की समीक्षा करे तो ज्ञात होगा कि उन्होने भी ब्रह्म को ही एकमात्र पारमार्थिक सत् माना है। ब्रह्म की अभिव्यक्ति जगत है। श्रीअरविद की दृष्टि मे व्यावहारिक जगत असत् अथवा माया नही है। इस जगत के व्यवहार, इसकी सरचना इसके अतर्गत सृजन होने वाला साहित्य और सस्कृति निरर्थक नही है। यह सब तो पारमार्थिक सत् को जानने के आधार है। श्रीअरविद की धारणा है कि वस्तुत ब्रह्म का ज्ञान होने पर यह जगत और भी परिपुष्ट तथा सत् प्रतीत होता है।

शकराचार्य जब यह कहते है कि ब्रह्म एकमात्र सत्य है, तब उनका आशय भी शायद यही है कि जितना भी दृष्टिगत जगत है, ब्रह्म ही है। ब्रह्म ज्ञान होने पर मनुष्य की यह मेरा और यह पराया है भेद-दृष्टि का तिरोभाव हो जाता है। ऐसे ब्रह्मवेत्ता को सपूर्ण जगत मे एकमात्र ब्रह्म के ही दर्शन होते है। इनका व्यवहार और आचरण जगत के व्यवहार से भिन्न हो जाता है। वह देखकर भी नही देखता है, सुनकर भी नही सुनता है, खाकर भी नही खाता है। इसप्रकार जहॉ श्रीअरविंद आगमनात्मक पद्धति का सहारा लेते है वहॉ शकराचार्य ने निगमनात्मक पद्धति का अनुगमन किया है। लेकिन वर्ण्य-विषय के सदर्भ मे श्रीअरविद ने उन्ही तथ्यो को वर्णित किया है, जिन्हे शकराचार्य ने मायावाद मे अभिहित किया है।

यदि शकराचार्य की समकालीन परिस्थितियो को ध्यान मे रखा जाय तो उनके दर्शन को व्याख्यायित करना अधिक आसान होगा। वह युग बौद्ध दर्शन के विकृत स्वरूप, मठो के पतन, ज्ञान तथा योग के स्थान पर भोग के महत्त्व से परिव्याप्त था। मिथ्या पाखण्ड और धूर्तता ही पाण्डित्य का साधन बन गया था। साधना की अनेक पद्धतियॉ प्रचलित हो गयी थी, जिनमे विकृतियॉ थी। ऐसी परिस्थिति मे शकराचार्य ने भोग विलास को परे रखकर योग साधना, वेदोपनिषद् आदि का सदेश देकर, समाजसुधारक तथा पथप्रदर्शक का कार्य किया। उन्होने सामान्य जन को बताया कि व्यावहारिक जगत असत् है तथा सच्चिदानद रूप जगत ही सत् है। स्वय मे जगत का कोई अस्तित्व नही है। सर्वत्र ब्रह्म ही व्याप्त है। उन्होने कहा कि ब्रह्मवेत्ता तत्त्वमसि' तथा 'अह ब्रह्माऽस्मि' का अनुभूतिकर्त्ता है।

इसप्रकार शकराचार्य ने अज्ञान के जगत की अवहेलना करके ब्रह्मवेत्ता के जगत की

स्थापना की है। लेकिन श्रीअरविद और उनके अनुयायियो ने शकराचार्य के मायावाद की आलोचना करके पूर्वग्रह का परिचय दिया है। उन्होने अपने मत की स्थापना मे शकराचार्य के विचारो की उचित व्याख्या नही की है। वस्तुत शकराचार्य के दर्शन महासागर मे जिस भाव से चाहे गोता लगाकर मोती निकाल सकते है। यह भी रेखाकित करने लायक है कि इसमे अपरिपक्व बुद्धि भाव से गोता लगाने पर कुछ हाथ नही लगता है। सच्चिदानद भाव प्राप्त करने के लिए तो ब्रह्मवेत्ता की आवश्यकता है, ऐसे ज्ञानी पुरुष की आवश्यकता है जो जगत और ब्रह्म के वास्तविक अर्थ को समझ सके, उसके तत्त्व को आत्मसात कर सके।

शकराचार्य का मायावाद पूरी तरह तर्कसगत दार्शनिक परपरा से अनुस्यूत है, जिसकी विवेचना होनी चाहिए पूर्वग्रही आलोचना नही। ज्ञान की उच्च तपोभूमि मे पार्थिव शरीर को भस्मीभूत-सा करके सत् का साक्षात्कार करने वाले मनीषियो ने वेदोपनिषद् के महामत्र अह ब्रह्माऽस्मि' को प्रस्तुत किया। शकराचार्य ने वेदोपनिषदो को ही दर्शन का आधार माना है। वेदोपनिषद् सदैव ज्ञानराशि आध्यात्मिकता के शुभ सदेश और सत्य, शिव, सुदर की अनुभूति के अमूल्य भडार रहे है। यही से शकराचार्य ने मायावाद की स्थापना की है।

शकराचार्य और श्रीअरविद के ब्रह्म सबधी विचारो का तुलनात्मक अध्ययन करने पर समानता दिखायी देती है। शकराचार्य ने ब्रह्म को अव्यक्त, अचित्य एव विकार रहित बताया है।[1] श्रीअरविद ने भी लगभग शकराचार्य के मत का ही अनुगमन करते हुए पारमार्थिक सत् को अद्वैत कहा है और यह स्थापित किया है कि पारमार्थिक सत् के अलावा अन्य कोई ऐसी वस्तु नही है जो सर्वव्यापी सत्ता का अतिक्रमण कर सके।[2]

शकराचार्य ने जगत को भ्रम या माया सासारिक रूप से ग्राह्य जगत के अर्थ मे कहा है। यह जगत ब्रह्म से पृथक रूप मे ग्रहण किया गया है। 'द लाइफ डिवाइन' मे

---

1 श्रीमदभागवदगीता शाकर भाष्य, 2-25

2 There is nothing that is not the omnipresant Reality

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 295

श्रीअरविंद ने ब्रह्म और जगत के सबध को स्पष्ट करते हुए, जगत को भौतिक रूप मे सीमित होने के कारण, ब्रह्म से विपरीत और असत् कहा है। जगत ब्रह्म की अभिव्यक्ति के अर्थ मे ही सत् है। इसप्रकार श्रीअरविद ने भी ब्रह्म को पारमार्थिक अर्थ मे स्वीकारा है।[3] उन्होने भी शकराचार्य के समान ही ब्रह्म को एकमात्र सत् माना है। अत वाह्य सभी स्थानो मे ईश्वर है। समस्त परिणामो मे पारमार्थिक सत् है। वही शक्ति है। समस्त भौतिक पदार्थो मे स्वय वही अवस्थित है।[4]

श्रीअरविद ने ब्रह्म को उसी रूप मे स्वीकार किया, जिस रूप मे शकराचार्य ने किया है। इन दोनो दार्शनिको मे दूसरी समानता यह है कि श्रीअरविंद ने जगत की ब्रह्म से भिन्न सत्ता को असत् कहा है तो शकराचार्य ने भी जगत को मिथ्या सिद्ध किया है। मतातर केवल इतना है कि श्रीअरविंद द्वारा जगत को सत् एव शकराचार्य द्वारा भ्रम कहा गया है। यहाँ वस्तुस्थिति कुछ भिन्न हो जाती है। वस्तुत श्रीअरविद ने शकराचार्य के मत की सही व्याख्या न करके कुछ दूसरा अर्थ ग्रहण किया है। श्रीअरविंद का ऐक्य ज्ञान शकराचार्य की तरह पारमार्थिक सत् की सत्ता को ही सर्वत्र अवलोकित करता है। श्रीअरविंद अतिमानस की स्थिति मे जगत के मिथ्याभाव के स्थान पर स्वय की सत्ता को देखते है। यही व्याख्या शकराचार्य ने भी की है। उनका जगत को मिथ्या कहने का तात्पर्य इतना ही है कि जगत असत् है। मात्र ब्रह्म ही सत् है। वही सारी विभिन्नता का आधार है। श्रीमद्भागवद्गीता के भाष्य मे शकराचार्य ने स्पष्टत कहा है कि जगत के समस्त ऐश्वर्य युक्त पदार्थ ईश्वर के अश है। शकराचार्य ने सपूर्ण जगत को ईश्वर के एक पद से धारण किया हुआ, उसी का एक अवयव माना है।[5]

---

3 Even ıf the Unıverse ıs only a phenomenal realıty, stıll ıt ıs a manıfestatıon or phenomenon of Brahman, for sınce all ıs Brahman

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 417

4 It ıs one exıstence, one force, one delıght of beıng whıch concentrates ıtself at varıous poınts, says of each This ıs I'

वही पृष्ठ 105

5 इद कृत्स्न जगद एकाशेन एकावयवेन एक पादेन सर्वभूतस्वरूपेण इति एतत स्थित अहम् इति ।

श्रीमदभागवदगीता शाकर भाष्य, 10 42

स्पष्ट है कि शकराचार्य ने व्यावहारिक जगत को भ्रम या माया कहा है, जिसमे ब्रह्म एक पृथक इकाई है। जीव तथा जगत ब्रह्म मे सन्निहित होने पर भ्रम नही है। जिस प्रकार घटाकाश की महाकाश से पृथक सत्ता नही है घट की सत्ता रहने तक ही घटाकाश है घट के टूटने के साथ ही वह महाकाश हो जाता है। जीव जगत की भी पृथक सत्ता अज्ञान की स्थिति तक ही रहती है। ब्रह्म के पूर्ण ज्ञान के साथ ही जीव जगत उसी मे समाहित हो जाते है।[6] उनकी पृथक सत्ता नही रहती तथा पूर्व सीमाबद्ध जगत भ्रम या माया आभासित होता है।

श्रीअरविद ने जगत को पारमार्थिक सत् की अभिव्यक्ति होने के कारण सत् माना है, लेकिन यदि जगत को ब्रह्म से भिन्न कर दिया जाय तो उनके लिए जगत को सत् मानना असभव हो जायगा। वस्तुत ब्रह्म ही जगत का स्रोत है। श्रीअरविंद की विचारधारा मे भी जगत का अस्तित्व ब्रह्म से अभिव्यक्त होने और उसी मे समाहित होने से है।[7] यह रोचक तथ्य है कि श्रीअरविद के दर्शन की गभीरता से विवेचना करने पर निष्कर्ष के रूप मे प्राय उन्ही विचारो की पुनरावृत्ति मिलती है, जिनकी स्थापना शकराचार्य ने पहले ही कर दी है। शकराचार्य के अनुसार भी ब्रह्म कामना एव आसक्ति से रहित अपने बल पर पृथ्वी मे प्रविष्ट होकर जगत को धारण करता है।[8]

शकराचार्य ने जगत को ब्रह्म का अश माना है। इसके साथ ही जगत को ब्रह्म के क्षर रूप मे अभिहित किया है। पृथ्वी अतरिक्ष और स्वर्ग समस्त लोको मे ब्रह्म उपस्थित

---

6 यथा वा घटादयुपाधिपरिछिन्नो घटादयाकाश आकाशाश सन घटादिनिमित्तपाये आकाश प्राप्यन निवर्तते इति एवम अत उपपन्नम ।

श्रीमदभागवदगीता शाकर भाष्य, 15-7

7 The Universal then is real by virtue of the Absolute of which it is a self manifestation

श्रीअरविंद द लाइफ डिवाइन पृष्ठ 587

8 यद बल कामरागविवर्जित ईश्वर जगद्विधारणाय पृथिव्या प्रवष्ट येन गुर्वी पृथ्वी न अध पतति न विदीर्यते च।

श्रीमदभागवदगीता शाकर भाष्य 15 13

होकर अपनी स्वरूपसत्ता से उन्हे धारण करता है। वही इनका शासन कर्त्ता है।[9] इसप्रकार शकराचार्य ने जगत को ब्रह्म से उद्भूत मानकर उसकी विस्तृत व्याख्या की है। यहाँ जगत को भ्रम या माया, मानव को इसमे लिप्त न होने के तात्पर्य से कहा गया है। जगत को असत् तथा ब्रह्म को सत् मानने का एकमात्र कारण परम तत्त्व को परम पद अर्थात् सर्वोच्च पद देना है।[10] डॉ इद्रसेन के अनुसार शकराचार्य ने ब्रह्म की एकमात्र सत्ता स्वीकारा है किंतु इसका अर्थ यह नही है कि जगत आकाशकुसुम की तरह असत है। उन्होने स्वय विज्ञानवाद की आलोचना की है। उनका मानना है कि किसी बडे वस्त्र तथा स्तभ को देखते हुए भी उसके अस्तित्व को न मानना भोजन करते हुए भी उसके स्वाद को न स्वीकारने के समान है।[11]

शकराचार्य के समर्थन मे प्रोफे मलकानी और प कोकिलेश्वर शास्त्री ने जगत को ब्रह्म से अभिन्न स्वीकारा है। श्री शास्त्री के अनुसार, ब्रह्म नानारूपात्मक जगत मे अभिव्यक्त होता है तथा उसी के भीतर विद्यमान रहता है। ब्रह्म जगत का पूर्ण कारण है।[12] यहाँ स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि जब जगत ब्रह्म से उद्भूत है तथा ब्रह्म उसमे व्याप्त है तो जगत को असत् या मिथ्या कहने का तात्पर्य क्या है? इसका उत्तर देते हुए प कोकिलेश्वर शास्त्री ने कहा है कि शकराचार्य ने जगत को एक विशेष अर्थ मे असत कहा है। यदि जगत को ब्रह्म से उद्भूत होने का अर्थ ले, तो कारण रूप ब्रह्म कार्यरूप जगत मे परिवर्तित होगा।

---

9 योलोकत्रय भूर्भुव स्वराज्य स्वीयया चैतन्य बल शकत्या आविश्य प्रविश्य विभर्ति ।
श्रीमदभागवदगीता शाकर भाष्य 15 17

10 विशिष्ट जन्म प्रसूतेन ब्राह्मणेन यत कर्त्तव्य तत सर्व भगवत्तत्वे विदिते कृत भवेद इत्यार्थ ।
वही 15 20

11 The illusary is not consciously imagined, but consciously perceived It is a case of conception confused with perception What we realy conceive, we believe that we perceive or intuit we realy intuit Brahman also and yet through error we belive that we intuit the world
Philosophical Qucoterly 1944, Page 241

12 पूर्व सिद्धोऽपि हि सन आत्मा विशेषेण विकारात्मना परिणामयाभास आत्मानम् ।
प्रोफे. के. शास्त्री अद्वैतिक फिलॉसफी पृष्ठ 5

कारण रूप, कार्य रूप जगत मे नाना अवयवो मे परिणत होता है, लेकिन इस रूप मे जगत को स्वीकार करना शकराचार्य के लिए अमान्य था। इसीलिए उन्होने जगत को भ्रम या माया कहा है।[13]

विचारधारा और विरोध के टकराव के निराकरण हेतु यह टिप्पणी आवश्यक है कि शकराचार्य ने जगत मिथ्या (मायावाद) के सिद्धात के अतर्गत ब्रह्म को ही एकमात्र सत् वही माना है जहॉ पर जगत को ब्रह्म से अलग स्वीकार किया गया है। उनके मायावाद का चर्चित विषय वही विचारधारा और लौकिक व्यवहार है, जिसमे जगत को ब्रह्म से भिन्न सत् इकाई के रूप मे स्थापित किया गया है। इसी दृष्टिकोण से जगत को भ्रम अथवा माया कहा गया है। उन्होने ब्रह्म के अश के रूप मे जगत को कभी भ्रम नही घोषित किया है।

सक्षेप मे कहा जाय तो शकराचार्य का मायावाद एक तर्कसगत और युक्तिपूर्ण विचारधारा है। इसलिए इनके मायावाद का श्रीअरविद द्वारा किया गया खण्डन बहुत सगत नही जान पडता है। वस्तुत शकराचार्य के मायावाद की श्रीअरविंद ने ठीक से व्याख्या नही की। अपने सिद्धात को श्रेष्ठतर मानते हुए उन्होने पूर्व सिद्धातो का खण्डन किया है। ध्यान दिया जाय तो श्रीअरविद ने भी लगभग उन्ही विचारो एव मतो को दूसरे तरीके से, शब्दो के हेर फेर से, स्थापित किया है जिसे शकराचार्य स्वीकार करते है। स्पष्ट है कि श्रीअरविंद द्वारा शकराचार्य के मायावाद का खण्डन तार्किक धरातल पर खण्डन न होकर उनका मण्डन ही है।

भारतीय वेदात दर्शन के सदर्भ मे शाकर-वेदात को ही महत्ता दी जाती है। शकराचार्य की दार्शनिक मूल्यवत्ता और महत्ता का वास्तविक कारण उनका मायावाद का सिद्धात है। उन्होने मायावाद की स्थापना के लिए किसी विशेष ग्रथ की रचना नही की,

---

13 The falsity only comes in if you regard the nature of the underlying cause actually lost in these effects emerging from it if the nature is resolved into and these absolutely identified with the changes as if it has become something other itself - as if the underlying Brahman is actually conserted into the aggregate of the empirical changes, and these become अनेकात्मक – Shanker has everywhere in his Bhasya, called the world unreal or false in the sense alone
प्रोफे के शास्त्री अद्वैतिक फिलॉसफी पृष्ठ 171

बल्कि प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र) पर भाष्य के सदर्भ मे ही माया सबधी विचारो को रखा है।

शकराचार्य से पहले मायावाद का सिद्धात अस्तित्व मे था या नही यह विवाद का विषय है। इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनसे पहले वैदिक पौराणिक तात्रिक और दार्शनिक साहित्य मे मायावाद की पृष्ठभूमि रही है। यद्यपि उसमे मायावाद के सैद्धातिक रूप का अभाव है। प्रस्तुत शोध प्रबध के प्रथम अध्याय मे 'माया के इतिहास का विवेचन करते समय रेखाकित किया गया है कि वैदिक काल से लेकर शकराचार्य के समय तक अनेक प्रसगो मे माया का उल्लेख मिलता है। यद्यपि शकर से पहले माया शब्द का अर्थ भिन्न था। वह शकराचार्य की माया के अर्थ मे प्रयुक्त नही हुआ है। इस सदर्भ मे प्रभुदत्त शास्त्री का यह कथन कि शाकर-मायावाद मूलत ऋग्वेद सहिता से प्राप्त है, बहुत सगत नही जान पडता है। इसीतरह थीबो का कथन कि शाकर-मायावाद उपनिषद्वर्ती मायावाद का विकास मात्र है भी उचित नही है। डॉ राधाकृष्णन ने पौराणिक माया अथवा प्रकृति को ईश्वर की प्रियसगिनी के रूप मे सृष्टि रचना का प्रमुख कारण माना है।[14] लेकिन शाकर-मायावाद मे प्रकृति अथवा माया ईश्वर से भिन्न न होकर उसकी शक्ति है।[15] इसके साथ ही शकराचार्य की मिथ्याभूता सनातनी माया तात्रिको की चित् स्वरूपिणी मायाशक्ति से भिन्न है।[16]

बौद्ध दर्शन मे भी माया का एक स्वरूप मिलता है। बौद्ध साहित्य मे माया' प्रवचना के अर्थ मे प्रयुक्त है। बुद्धघोष ने माया का प्रयोग ऐद्रजालिक शक्ति के अर्थ मे किया है।[17] किंतु बौद्ध दर्शन मे माया की जो अवधारणा है, उसमे शकराचार्य की माया की शक्ति और

---

14 Maya or Prakrtı becomes ın the Puranas the lovıng consort of Isvara and the prıcıpal ınstrument ın the act of creatıon

डॉ राधाकृष्णन इडियन फिलासफी भाग 2 पृष्ठ 573

15 ईश्वरस्यमायाशक्ति प्रकृति ।

ब्रह्मसूत्र शाकरभाष्य 2 1 14

16 Woodraffe garland of letters, Page 137-138

17 Dasgupta Indıan Phılosophy, Vol I, Page 470

व्यावहारिक पक्ष का अभाव है। योगवासिष्ठ' ग्रथ मे भी माया का वर्णन अनेक स्थलो पर हुआ है। लेकिन योगवासिष्ठ की मुख्य स्थापना कल्पनावाद है,[18] जबकि शकराचार्य का सिद्धात मायावाद का है। योगवासिष्ठ मे जिस जगत को काल्पनिक माना गया है, वह शकराचार्य मे मायाजनित होने के कारण व्यावहारिक सत्ता के अनुरूप है इसीलिए सत् है। शकराचार्य के परमगुरु गौडपादाचार्य कृत् माण्डूक्य कारिका' मे 215 कारिकाओ मे माया' शब्द की व्याख्या है। यह सही है कि शकराचार्य को गौडपादाचार्य की कारिकाओ मे वर्णित माया से मायावाद की स्थापना का आधार मिला किंतु उनका स्वप्न और जाग्रत अवस्थाओ का साधर्म्य शकराचार्य को मान्य नही था। उन्होने स्वप्न और जाग्रत अवस्थाओ मे वैधर्म्य स्थापित कर साधर्म्य का खण्डन किया है।[19]

शकराचार्य को अपने पूर्ववर्ती दार्शनिको के विचारो और ग्रथो से मायावाद की स्थापना का सबल आधार तो मिला, लेकिन सिद्धातत उनसे शकराचार्य का मायावाद भिन्न है। मायावाद की सक्षिप्त रूपरेखा देते हुए उसे और भी स्पष्ट करने का प्रयास यहाँ किया जा रहा है।

शाकर वेदात मुख्यत केवलाद्वैतवाद का सिद्धात है। इसके अनुसार पारमार्थिक रूप से ब्रह्म की सत्यता प्रमाणित है। ब्रह्म के अतिरिक्त सपूर्ण जगत मिथ्या है। प्रत्यक्ष दिखने वाले व्यावहारिक जगत को असत् अथवा मिथ्या कहना अस्वाभाविक लगता है। यह दार्शनिक दुर्बलता का प्रतीक है। इसी दुर्बलता से बचने तथा जगत की व्यावहारिकता को बचाने हेतु शकराचार्य ने मायावाद के सिद्धात की स्थापना की। उन्होने माया को परमात्मा की शक्ति मानकर 'अव्यक्तनाम्नी परमेश शक्ति '[20] कहा है।

इस माया-शक्ति के मुख्यत दो रूप है – आवरण शक्ति और विक्षेपण शक्ति। यह दोनो शक्तियॉ ही अविद्या और माया के व्यावहारिक भेद की सूचक है। आवरण शक्तिरूपा अविद्या जीव पर ऐसा आवरण डालती है कि अज्ञानवश वह आत्मबोध मे असमर्थ हो जाता

---

18 डॉ आत्रेय योगवासिष्ठ और उसके सिद्धात पृष्ठ 193 197

19 ब्रह्मसूत्र शाकरभाष्य 2 2 29

20 विवेक चूड़ामणि पृष्ठ 108

है। विक्षेप शक्ति द्वैत जगत की सृष्टि करती है। इसप्रकार शाकर-दर्शन मे जगत माया है किंतु यह माया' शशश्रृग की तरह असत् न होकर व्यावहारिक दृष्टि से सत् है। इसीलिए मायिक जगत की व्यावहारिक सत्ता अद्वैत वेदात की आधारशिला है।

शकराचार्य ने मिथ्याभूता सनातनी माया का परमेश्वर के साथ सबध व्याख्यायित करने हेतु ब्रह्मसूत्र भाष्य मे ऐद्रजालिक उपमान से मायावाद को समझाने की चेष्टा की है। जिसप्रकार मायावी ऐद्रजालिक स्वय प्रसारित माया से प्रभावित नही होता, उसीप्रकार परमात्मा भी सासारिक माया से प्रभावित नही होता है।[21]

किसी ऐद्रजालिक के इद्रजाल की तरह माया से उत्पन्न जगत भी पारमार्थिक स्तर पर भ्रम ही है। जिसप्रकार जादूगर द्वारा प्रस्तुत अनेक वस्तुएँ दर्शक के लिए सत्य है, उसी प्रकार अविद्या से ग्रस्त अज्ञानी को भी जगत सत् प्रतीत होता है। शकराचार्य के अद्वैत वेदात मे पारमार्थिक सत् का अभाव शून्यता नही है। पारमार्थिक सत्ता के साथ शकराचार्य ने मायावादी व्यावहारिक और प्रातिभासिक सत्यो को भी स्थापित किया है। यद्यपि पारमार्थिक स्तर पर ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है किंतु मायिक जगत की व्यावहारिक सत्यता भी अनदेखी नही की जा सकती। दृश्यगत जगत पारमार्थिक दृष्टि से मिथ्या अवश्य है किंतु व्यावहारिक दृष्टि से सत्य भी है। इसीकारण शकराचार्य ने माया को अभाव रूप ही न मानकर भावरूप भी माना है।

माया की भावरूपता के कारण शकराचार्य के दर्शन को द्वैतवादी कहना गलत है। माया अथवा अविद्या आध्यात्मिक रूप है। सपूर्ण मायिक जगत अध्यास मात्र है तथा ब्रह्म उसका अधिष्ठान है। सारे प्रपच ब्रह्म मे सर्परज्जु के समान अध्यस्त है। जिसप्रकार अज्ञानावस्था मे रज्जु की प्रतीति न होकर सर्प की प्रतीति होती है, उसीप्रकार अध्यास के कारण ब्रह्मरूप अधिष्ठान मे अध्यस्त मिथ्या प्रपच भी सत्य प्रतीत होता है। अविद्या निवृत्ति के साथ ही ज्ञानी को अखिल प्रपच का मिथ्यात्त्व ज्ञात हो जाता है। यहाँ स्पष्ट है कि एक ओर माया अध्यास रूप के माध्यम से अज्ञानी के लिए जगत की सत्यता को स्थापित करती है, दूसरी ओर, ज्ञान के स्तर पर वह ब्रह्मज्ञान का साधन है। माया

---

21 ब्रह्मसूत्र शाकरभाष्य 2 1 9

अनिवर्चनीय है। भ्रमात्मक जगत की अनिर्वचनीय ख्याति द्वारा समाधान प्रस्तुति शकराचार्य के दार्शनिक व्याख्या की अनुपम देन है। सत् तथा असत् से इस विलक्षण जगत को 'अनिवर्चनीय कहा गया है। जगत को मिथ्या कहने का उनका तात्पर्य यही है कि वह अनिर्वचनीय है।[22]

शकराचार्य के अनुसार, जीव की बधनकारी प्रवृत्तियो के मूल मे अविद्या अथवा माया है जो जीव की सत्ता को ब्रह्म से अलग करके उसे सासारिक सुख-दुख के बधनो मे बाँधे रखती है। लेकिन जीव और ब्रह्म मे उसीप्रकार एकता और अभिन्नता है जिसप्रकार बिंब और प्रतिबिंब मे होती है। यह ज्ञान प्राप्त हो जाने पर कि माया की सत्ता है ही नही, जीव का ब्रह्म से अभेद हो जाता है। जीव और ब्रह्म दो नही एक ही है। इसी विचारभूमि पर शकराचार्य ने जीवो ब्रह्मैव नापर सिद्धात की स्थापना की है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उन्होने मायावाद के सहारे ही अद्वैतवाद की स्थापना की है।

प्रस्तुत शोध प्रबध के तृतीय अध्याय मे शाकर-मायावाद तथा श्रीअरविंद के मायावाद का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए इनकी समानताओ और विषमताओ का विश्लेषण किया गया है। वहॉ विश्लेषित है कि यद्यपि दोनो ने एक ही भाव को व्यक्त किया है, लेकिन व्याख्या करने और अर्थ देने के इनके तरीके अलग अलग है। दोनो मनीषियो की मायावादी विवेचना मे शकराचार्य का मायावाद अधिक तर्कसगत एव अकाट्य प्रतीत होता है। माया की विशेषताओ की व्याख्या जिस ढग से शकराचार्य ने की है वह बहुत सीमा तक मौलिक है। उनके मायावाद की विशेषताएँ निम्नलिखित बिदुओ से समझी जा सकती है।

शाकर मायावाद मे माया परमेश्वर की शक्ति है। वह जगत की बीज शक्ति है। मायावी ईश्वर अपनी माया शक्ति से विविधताओ वाले जगत की रचना करता है। इसीलिए माया की विशिष्टता से सयुक्त ब्रह्म को ही ईश्वर की सज्ञा से अभिहित किया गया है। सपूर्ण व्यावहारिक जगत माया की देन है। माया और मायिक जगत अनादि है, किंतु अनादि होते हुए भी निवर्त्य है। जीव की अविद्या-निवृत्ति होने पर जब प्रवृत्ति-फल वाले कर्मो

---

22 मिथ्याशब्दोऽनिवर्चनीयतावचन इति पचपादिकावचनात ।
अद्वैतसिद्धि पृष्ठ 48

का भोग समाप्त हो जाता है तो जीव माया के बधन से मुक्त होकर विदेह-मुक्ति प्राप्त करता है।

शकराचार्य की माया का मिथ्यात्त्व एक अद्‌भुत विशेषता है। मायावादी की माया परमार्थ मे मिथ्या है, लेकिन व्यावहारिक रूप मे वह सत् है। इसप्रकार माया की पहली विशेषता उसका मिथ्यात्त्व और दूसरी विशेषता उसकी व्यावहारिकता है। यह माया का भावरूप है। शकराचार्य ने माया को अनिर्वचनीय भी कहा है, जिसका प्रतिपादन उन्होने अध्यास के आधार पर किया है।[23] सत् ब्रह्म से पारमार्थिक आधार पर असत् माया अध्यस्त होती है। इसीकारण शकराचार्य ने समस्त प्रपच को अध्यस्त तत्त्व के रूप मे स्वीकार किया है। उनकी मायावाद की यह विशेषता अन्य किसी माया सबधी धारणा मे परिलक्षित नही होती है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि शकराचार्य द्वारा स्थापित मायावाद का सिद्धात एक मौलिक और स्वतत्र सिद्धात है।

शकराचार्य के मायावादी सिद्धात के विरोध मे कतिपय परवर्ती दार्शनिको, जैसे रामानुज निम्बार्काचार्य मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य आदि ने अपना सिद्धात प्रस्तुत किया। इनका विवेचन द्वितीय अध्याय मे किया गया है। इन दार्शनिको के मायावादी विचारो का तटस्थ आकलन किया जाय तो पता चलेगा कि इनमे निजी मतो के प्रतिपादन के अनुसार ब्रह्मसूत्र की भाष्य रचना की गयी है। इसे उपनिषद् ग्रथ के आधार के रूप मे नही देखा गया है। यह कहना अनुचित नही होगा कि सूत्रकार वादरायण के सूत्रो से प्रचारित वही दार्शनिक पद्धति उपयुक्त होगी, जो उपनिषद् दर्शन के साथ सामजस्य स्थापित करके चल सके। शकराचार्य का मत इनमे सर्वथा उपयुक्त लगता है, जो कि उपनिषद्-दर्शन के सगुण तथा निर्गुण ब्रह्म के मध्य सबध स्थापित करते हुए अद्वैतवाद की स्थापना करता है। परवर्ती दार्शनिको मे भी शकराचार्य का मायावादी सिद्धात तार्किक तथा व्यावहारिक होने के कारण मान्य बना रहा और वेदात के मतो को व्यवस्थित रूप देकर स्थापित करने मे सफल रहा।

समकालीन दार्शनिको द्वारा भी शकराचार्य का मायावाद ग्राह्य माना गया। इसकी

---

23 ब्रह्मसूत्र शाकरभाष्य उपोद्‌घात

समकालीन सदर्भ मे व्याख्या भी की गयी है। आधुनिक तथा नव्यवेदाती दार्शनिको ने मायावाद का सिद्धात विकसित किया है। इसकी चर्चा यहॉ आवश्यक है।

नव्यवेदाती दार्शनिको मे स्वामी विवेकानद प्रमुख है। इनकी दृष्टि मे माया जगत का एक तथ्यात्मक विवरण है। तथ्य जिस रूप मे है उन्हे सूचित करने का यह एक माध्यम है। वस्तुत जगत मे हमारे अस्तित्त्व का आधार विरोधो और व्याघातो मे है। जहॉ शुभ है, वही अशुभ भी है। सुख दुख है। जीवन और जगत मे विरोधी तत्त्व भरे पडे है। जगत मे स्थित विरोधो और व्याघातो का बोध माया से होता है। सामान्य जीवन सत् असत् है-नही है होने नही होने के बीच चलता रहता है। समस्त जीवन एक चक्र मे घूमता है। इस चक्र से निकलना कठिन होता है। यही जीवन की वास्तविकता है और यही माया है। वस्तु को जड तत्त्व और मन को आत्मा कहते है। जगत के समस्त विरोधो का केद्रीय तत्त्व माया ही है।

तुलना करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वामी विवेकानद का माया विवरण' अद्वैत वेदात से कुछ भिन्न होते हुए भी उसका विरोधी नही है। विवेकानद के अनुसार माया ईश्वरीय शक्ति है जो शुभ या अशुभ न होकर तटस्थ है। तटस्थता ही माया की विशेषता है। ध्यान मे यह रखना चाहिए कि माया की वास्तविकता ब्रह्म की वास्तविकता से अलग है। माया व्याप्त जगत की वास्तविकता एक विशेष परिप्रेक्ष्य मे है। उनका निष्कर्ष यह है कि विशिष्ट व्यक्ति ज्ञान प्राप्त कर लेने के साथ ही जगत के विरोधो को समझ लेते है। 'माया से ऊपर उठने की सभावना तो है किंतु ऊपर उठने मे भी माया का पूरी तरह निषेध सभव नही है। भ्रम निवारण के बाद भी माया की उपस्थिति रहती है, क्योकि माया सागर की लहरो के समान है। यदि माया से परे चले जायॅ, तो भी यह ज्ञात रहता है कि मायारूपी लहरे ब्रह्मरूपी सागर मे थी, जो अब शात हो गयी है। इस विशिष्ट अवस्था को स्वामी विवेकानद ने अनिर्वचनीय' कहा है।

शकराचार्य की तरह स्वामी विवेकानद भी जगत के आविर्भाव और परिवर्तन के पीछे माया को ही मूलभूत कारण मानते है। यह विचार शकराचार्य के मायावाद को स्थापित करने के लिए पर्याप्त है।

अन्य वेदातियो मे रवीद्रनाथ टैगोर का नाम भी महत्त्वपूर्ण है। उन्होने 'ईश्वर तथा

जगत विचार मे माया सिद्धात को प्रमुखता दी है तथा ससार की प्रतीति को माया पर आधारित माना है। माया सबसे व्यापक अज्ञान अर्थात् विश्व भ्राति कारक' है। सत्य एकरूप है तथा माया भ्रमकारक है। रवीद्रनाथ टैगोर मानते है कि जब सृष्टि को सृष्टिकर्त्ता या सृष्टि की विविध वस्तुओ को उनके निर्माता से पृथक् करके देखा जाय तो जगत का कोई मूल्य नही रह जाता है, जिसप्रकार अबोध वनवासी को बैक की नोट मूल्यवान न लगकर रद्दी कागज प्रतीत होती है किंतु जब सृष्टिकर्ता के साथ सृष्टि के सबध को जोडकर देखते है तो जगत की वास्तविकता का ज्ञान होता है। जगत को विकारग्रस्त दृष्टि से ही देखना ही माया है।

माया कोई सत् तत्त्व नही है और न ही यह ईश्वरीय रूप को सीमित कर सकती है। ईश्वरीय शक्ति का अपने आप स्वीकारा गया बधन माया है। वह इस आनद के सृष्टिरूपी खेल का उपकरण मात्र है। टैगोर ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि एक पिता (ब्रह्म) अपने पुत्र (माया) को थोड़ी छूट भी देता है, जिसकी सीमा के अतर्गत वह कार्य करने को स्वतत्र है। टैगोर की दृष्टि मे माया भ्रममूलक भाव न होकर वास्तविक है, किंतु यह भ्रम की ही वास्तविकता है। भ्रम की प्रतीति भ्रमात्मक न होकर वास्तविक लगती है। भ्रम इस कारण है कि बाद मे उसे नकारा जा सके, उससे मुक्त हुआ जा सके उससे ऊपर उठा जा सके।

शकराचार्य की माया और रवीद्रनाथ टैगोर की माया मे ऊपरी भिन्नता है, वैसे तो आधारभूत एकता व समानता है। यह ऐसी दृष्टि है जो जगत को भ्रम और पारमार्थिक ब्रह्म को सत्य रूप मे स्वीकार करती है।

माया पर विचार करने वालो मे डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन् का मत भी महत्त्व रखता है। वे ईश्वर को जगत प्रक्रिया के सचालक के रूप मे देखते है। वह सचालन के लिए माया शक्ति का उपयोग करता है। यही एक तरह से ईश्वर की रचनात्मक शक्ति है। यह ब्रह्म की लीला है एक आनदपूर्ण खेल है, किंतु इस आनदपूर्ण खेल को रोचक बनाये रखने के लिए कुछ बधन भी निर्धारित किये गये है। यह खेल मात्र है, वास्तविकता नही है। इसकी सत्यता सिर्फ व्यावहारिक है। निरपेक्ष सृष्टिकर्त्ता ईश्वर है और वही सृष्टि का खेल खेलता है। यह सृष्टि आकस्मिक है कुछ समय के लिए है। यथार्थ ज्ञान के साथ यह नष्ट

हो जाती है। इस विचारधारा मे भी शाकर मायावाद की और अद्वैतवाद की झलक साफ-साफ दिखती है।

समकालीन दार्शनिक विवेचना पर भी शकराचार्य के मायावाद का प्रभाव यत्किंचित् पडा है। इसका कारण यह है कि शाकर मायावाद तार्किक और वैज्ञानिक होने के साथ-साथ व्यावहारिक भी है। भिन्न भिन्न सदर्भो और आयामो मे इसकी प्रासगिकता सिद्ध होती है। चितन का यह व्यावहारिक पक्ष ही शकराचार्य को समकालीन और उनके दर्शन को वृहत्तर स्वरूप प्रदान करता है।

वेदात दर्शन के क्षेत्र मे शकराचार्य तथा उनके मायावादी सिद्धात का स्थान सर्वोपरि है। शकर को वेदात दर्शन के आकाश का प्रखर सूर्य तथा उस सूर्य का अविद्यानिवर्तक विलक्षण आलोक मायावाद को कहे, तो शायद गलत न होगा। शकराचार्य की महत्ता का कारण मायावाद के साथ साथ उनकी विलक्षण प्रतिभा भाष्यरचना की सरल-सुगम शैली, तटस्थ आलोचना दृष्टि, तार्किक मेधा और समाज सुधारक का सकल्प है।

अपने इन्ही गुणो से वे वेदात दर्शन के अन्य आचार्यो से उच्च स्थान प्राप्त करते है। बागला लेखक राजेद्रनाथ घोष ने शकराचार्य की प्रतिभा के सबध मे कहा है कि वे असाधारण तीक्ष्ण बुद्धि सपन्न तथा श्रुतिधर थे। इसलिए वे एक बार जो कुछ सुनते थे, उसे याद कर लेते थे। इतना ही नही गुरुजन दूसरे शिष्यो को जो पढाते थे, शकराचार्य गुरु सेवा के बदले मे गुरु के निकट रहकर वह सब भी याद कर लेते थे।[24]

भारतीय दर्शन मे शकराचार्य ने मुख्यत मायावाद की स्थापना करके जटिल वेदात दर्शन को तर्कपूर्ण एव ग्राह्य बनाया। उपनिषदो[25] के सिद्धातो मे परस्पर इतना विरोधाभास है कि उनसे किसी एक सिद्धात का सही बोध नही हो पाता। उदाहरण के लिए, कठोपनिषद्[26]

---

24 क्षेत्रपाल घोष द्वारा सपादित आचार्य शकर और रामानुज द्वितीय सस्करण, पृष्ठ 37

25 वेदातो नामोपनिषद्प्रमाणम ।

वेदातसार 3

26 कठोपनिषद 3 8 3 12

मे यदि ब्रह्म को निर्गुण माना गया है तो मुण्डकोपनिषद्[27] मे इसके विपरीत ब्रह्म को सगुण रूप मे प्रस्तुत किया गया है। वृहदारण्यक[28] मे जो जगत असत् है, उसे तैत्तिरीय उपनिषद्[29] मे ब्रह्म द्वारा उत्पन्न बताया गया है। जिस ब्रह्म को कठोपनिषद,[30] केनोपनिषद्[31] और वृहदारण्यक उपनिषद्[32] मे अज्ञेय कहा गया है, वही ब्रह्म तैत्तरीय उपनिषद[33] मे ज्ञेय है। छादोग्य उपनिषद्[34] मे यदि जीव और ब्रह्म मे ऐक्य का अर्थ समाहित है तो कठोपनिषद्[35] मे जीव और ब्रह्म का भेद दिखाया गया है।

इस विवेचना और दृष्टात से स्पष्ट हो जाता है कि उपनिषद् दर्शन मे बहुतायत से परस्पर विरोध है। वेदात दर्शन की अस्पष्टता का मुख्य कारण विरोधमूलक अर्थ है। किंतु शकराचार्य ने मायावाद की स्थापना से इन विरोधो को समाप्त करके उपनिषदीय सिद्धातो मे सामजस्य लाने का प्रयास किया। मायावाद की स्वीकारोक्ति के साथ विरोधो का स्वत ही शमन हो जाता है। मायावादी सिद्धात के अनुसार एकमात्र निर्गुण ब्रह्म ही परमार्थत सत्य है। माया ब्रह्म की अनिर्वचनीय शक्ति है। मायायुक्त ब्रह्म ईश्वर की सज्ञा से अभिहित किया जाता है। यह ब्रह्म का सगुण रूप है। इसप्रकार मायावाद ने ब्रह्म के सगुण और निर्गुण, दोनो रूपो को मान्यता दी है।

इसके साथ ही असद्रूपा मिथ्याभूता सनातनी माया ही जड जगत का उपादान कारण है। परमार्थ मे असद्रूपा माया से उत्पन्न होने से मायिक जगत भी असत् ही होता है किंतु अध्यारोप न्यास के माध्यम से उसीप्रकार ब्रह्म जगत का कारण भी बन जाता है,

---

27 मुण्डकोपनिषद 1 1 9

28 वृहदारण्यक उपनिषद 4 4 99

29 तैत्तरीय भृगुवल्ली 1

30 कठोपनिषद 3 12

31 केनोपनिषद 1 5 क 7 8

32 वृहदारण्यक उपनिषद, 415 15

33 तैत्तरीयोपनिषद् 2 1 1

34 छादोग्योपनिषद 6 16 3

35 कठोपनिषद 3 1

जिसप्रकार रज्जु सर्प का कारण है। अविद्या-निवृत्ति के साथ ही सर्प तथा जगत स्वत समाप्त हो जाते है। माया द्वारा ब्रह्म की ज्ञेयता अज्ञेयता भी सिद्ध हो जाती है। वृत्तिगत ज्ञान के द्वारा ब्रह्म ज्ञान मे बाधक अविद्या का आवरण हट जाता है इस कारण ब्रह्म ज्ञेय हो जाता है। लेकिन वृत्ति ज्ञान ब्रह्म-ज्ञान कराने मे वैसे ही असमर्थ है जैसे दीपक सूर्य का दर्शन कराने मे। यहॉ ब्रह्म अज्ञेय सिद्ध होता है।

ब्रह्म ज्ञान की अवस्था मे ज्ञाता और ज्ञेय की भेद सत्ता नष्ट हो जाती है। मायावादी अविद्योपाधिक ब्रह्म को ही जीव मानते है। जीव और ब्रह्म के भेद का एकमात्र कारण अविद्या है। अविद्या-निवृत्ति होने पर जीव ब्रह्म-भाव को प्राप्त कर लेता है। इस दृष्टि से दोनो मे अभेद है। निस्सदेह शकराचार्य का मायावाद वेदात दर्शन की जटिल समस्याओ के समाधान का सरल तथा सफल प्रयास है। यह सत्य है कि रामानुजाचार्य जैसे आचार्यो ने भी अपने तरीके से उपनिषद दर्शन मे सामजस्य लाने का प्रयास किया, लेकिन ये आचार्य उपनिषद् प्रतिपाद्य निर्गुण अद्वैतवाद ब्रह्म के स्वरूप प्रतिपादन मे असफल रहे है।

मायावाद की प्रक्रिया का अनुसरण करके प्रातिभासिक व्यावहारिक और पारमार्थिक सत्ताओ की स्थापना द्वारा प्राप्त व्यावहारिकता, कर्मण्यता और आचारात्मकता ने वेदात दर्शन की महत्ता और उपयोगिता को बढाया है। साथ ही तार्किक एव सहज भाष्य रचना के द्वारा शकराचार्य ने दार्शनिक जगत मे जिस समृद्ध परपरा का सूत्रपात किया, परवर्ती रामानुज आदि आचार्यो की 'श्रीभाष्य भाष्य रचना उसी का परिणाम है। यह आचार्य के उदात्त व्यक्तित्व का ही प्रभाव है कि आज लगभग बारह शताब्दी के बाद भी विश्व के दार्शनिक शाकर दर्शन की पुनर्व्याख्या और पुनर्स्थापना मे लगे हुए है। समकालीन सदर्भो मे उसे फिर से विवेचित करने की दिशा मे प्रयासरत है। यह शकराचार्य के शाश्वत विचार-दर्शन का अकाट्य प्रमाण है।

□□□

परिशिष्ट

शोध-सामग्री

मूल ग्रथ

सहायक ग्रथ

शोध पत्रिकाएँ

शोध-सामग्री

मूल ग्रथ

शकराचार्य विरचित भाष्य ग्रथ

ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य

कठोपनिषद् शाकर भाष्य

केनोपनिषद् शाकर भाष्य

मुण्डकोपनिषद् शाकर भाष्य

छादोग्योपनिषद् शाकर भाष्य

वृहदारण्यकोपनिषद् शाकर भाष्य

ऐतरेयोपनिषद् शाकर भाष्य

श्वेताश्वतरोपनिषद् शाकर भाष्य

प्रश्नोपनिषद् शाकर भाष्य

तैत्तरीयोपनिषद् शाकर भाष्य

शारीरक शाकर भाष्य

माण्डूक्य कारिका शाकर भाष्य

श्रीमद्भागवद्गीता शाकर भाष्य

जेमिनीसूत्र शाकर भाष्य

शकराचार्य विरचित प्रकरण ग्रथ

सौदर्य लहरी

आनद लहरी

स्वात्मप्रकाशिका

विवेक चूडामणि

आत्मानद विवेक

सर्वसिद्धात सार सग्रह

सर्ववेदात सिद्धात सार सग्रह

श्रीअरविद विरचित मूल ग्रथ

द लाइफ डिवाइन, दो खण्ड

द ह्यूमन साइकल

द रिडिल आफ दिस वर्ल्ड

द सिथेसिस ऑफ योगा

एसेज आन गीता

द सुपरमेटल मैनिफेस्टेशन अपान अर्थ

एट उपनिषदाज

लेटर्स

सहायक ग्रथ

अभयचद्र भट्टाचार्य	श्रीअरविंद दर्शन
अभेदानद	शकरोत्तर वेदात मे अद्वैत का निरूपण
ए बी शास्त्री	स्टडीज इन पोस्ट शाकर डायलेक्टिक्स
ए सी दास	श्रीअरविंदो एण्ड द फ्यूचर आफ मैनकाइड
ए सी अडरवुड	कटेम्प्रोरी थाट्स आफ इडिया
ए बी राय	श्रीअरविंद एण्ड द न्यू एज
ए एन ह्वाइटहेड	प्रॉसेस एण्ड रीयलिटी
ए सी मुखर्जी	द नेचर आफ सेल्फ
ए महादेव शास्त्री	वेदात डाक्ट्रिन आफ शकराचार्य
अनतकृष्ण शास्त्री	शतभूषणी
अनिल कुमार रायचौधरी	द डाक्ट्रिन आफ माया
आलिवर लॉज	इवोल्यूशन एण्ड क्रियेशन
आत्रेय	योगवाशिष्ठ और उसके सिद्धात
बलदेव उपाध्याय	भारतीय दर्शन
ब्रैडले	अपीयरेस एण्ड रीयलिटी
बिनय गोपाल रॉय	कटेम्प्रोरी इडियन फिलासफर्स
बालशास्त्री (सपा)	भामती
भारती तीर्थ विद्यारण्य	पचदशी
सी ई एम जोड	इट्रोडक्शन टू माडर्न फिलासफी
डी डी पाल	कासेप्ट आफ माया
डी डी पाल	वेदात दर्शन (अनु प्रोफे सगम लाल पाण्डेय)
डी पी चट्टोपाध्याय	इडियन फिलासफी

दे ति तात्याचार्य	शरीरसिद्धि
दे ति तात्याचार्य	विशिष्टाद्वैतसिद्धि
गगानाथ झा	शाकर वेदात
गगाप्रसाद उपाध्याय	अद्वैतवाद
गोपीनाथ कविराज	भारतीय सस्कृति और साधना
गौडपादाचार्य	माण्डूक्य कारिका
एच वर्गसा	क्रियेटिव इवोल्यूशन
हरिदास चौधरी	द इटीग्रल फिलासफी आफ श्रीअरविद
हाफडिग	ए हिस्ट्री आफ माडर्न फिलासफी
जार्ज थिबाउत	द वेदात सूत्र, दो भाग
जी आर मलकानी	अज्ञान
जी आर मलकानी	वेदात एपिस्टमालोजी
जी आर मलकानी	मेटाफीजिक्स आफ अद्वैत
जगदीश सहाय श्रीवास्तव	वेदात की तार्किक भूमिका
के सी भट्टाचार्य	फिलासफिकल स्टडीज, भाग 1, 2
के शास्त्री	एन इट्रोडक्शन टू अद्वैत फिलासफी
के सच्चिदानद मूर्ति	रिवीलीशन एण्ड रीलिजन इन अद्वैत वेदात
लायड मारगन	इमरजेट इवोल्यूशन
मध्वाचार्य	अणु भाष्य
मध्वाचार्य	न्याय सुधा
एम हिरयन्ना	आउटलाइस आफ इडियन फिलासफी
एम हिरयन्ना	द एशेसियल्स आफ इडियन फिलासफी
एम एन शास्त्री	ए स्टडी आफ शकर
एम एन सरकार	द सिस्टम आफ वेदातिक थाट एण्ड कल्चर

एम टी सहस्रबुद्धे	ए सर्वे ऑफ द प्री शकर अद्वैत वेदात
म म गिरधर शर्मा	दर्शन अनुचितन
मार्गरेट चटर्जी	कटेम्प्रोरी इडियन फिलासफी
मैक्समूलर	थ्री लेक्चर्स आन द वेदात फिलासफी
मृदुला आर प्रकाश	दार्शनिक चितन प्रवाह
नरेद्र सिह	मायावाद के आधुनिक खण्डन की समीक्षा
न श शास्त्री	अद्वैत तत्वशुद्धि
एन वी बनर्जी	कसर्निग ह्यूमन अडरस्टैडिग
एन बी चक्रवर्ती	द अद्वैत कासेप्ट आफ फाल्सिटी
एन के देवराज	इट्रोडक्शन टू शकर्स थ्योरी आफ नालेज
एन के देवराज	इडियन फिलासफी टुडे
पी डी देवानदन	द कासेप्ट आफ माया
पी डी शास्त्री	द डाक्ट्रिन आफ माया
आर डी रानाडे	वेदात फिलासफी
आर डी रानाडे	वेदात–द कल्मिनेशन आफ इडियन थाट
आर एस मिश्र	द इटीग्रल अद्वैतिज्म आफ श्रीअरविद
रामप्रताप सिह	द वेदात आफ शकर
रामस्वरूप सिह नौलखा	आचार्य शकर–ब्रह्मवाद
राम बिहारी दास	इट्रोडक्शन टू शकर
राममूर्ति शर्मा	शकराचार्य
राज्यश्री अग्रवाल	दर्शन, मानव और समाज
सरोज कुमार दास	स्टडी आफ द वेदात
सगमलाल पाण्डेय	शकराचार्य के दर्शन का उज्जीवन
सगमलाल पाण्डेय	आधुनिक दर्शन की भूमिका

सगमलाल पाण्डेय	भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण
एस एम एस चारी	अद्वैत एण्ड विशिष्टाद्वैत
एस सी चटर्जी *एव*	
डी एम दत्ता	इड्रोडक्शन टू इडियन फिलासफी
एस के मैत्र	एन इट्रोडक्शन टू द फिलासफी आफ श्रीअरविद
एस के मैत्र	स्टडीज इन श्रीअरविंदाज फिलासफी
एस के मैत्र	मीटिग आफ ईस्ट एण्ड वेस्ट इन श्रीअरविदाज फिलासफी
एस राधाकृष्णन	इडियन फिलासफी भाग 2
एस राधाकृष्णन	द वेदात-एकार्डिग टू शकर एण्ड रामानुज
एस राधाकृष्णन	इडियन फिलासफी
एस राधाकृष्णन	हेरिटेज आफ शकर
सुरेद्रनाथ दासगुप्ता	भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग 2, 3
सुरेश्वराचार्य	नैष्कर्म्यसिद्धि
श्रीहर्ष	खण्डनखण्ड खाण्ड्य
टी एम महादेवन	द फिलासफी आफ अद्वैत
टी एच ग्रीन	प्रोलीगोमेना टू एथिक्स
वी जे कीर्तिकर	स्टडीज इन वेदात
वी एस घाटे	द वेदात-ए काप्रहेसिव स्टडी
वी एस शास्त्री	इज द वर्ल्ड एन इल्यूजन एकार्डिग टू शकर
वूड अर्नेस्ट	वेदात डिक्शनरी
डब्ल्यू एस आर्गहत	वेदात एण्ड माडर्न थाट
यशदेव शल्य	दार्शनिक विश्लेषण

शोध पत्रिकाएँ

द फिलासफिकल क्वार्टरली

इडियन फिलासफिकल क्वार्टरली

जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी

जर्नल आफ द अमरीकन एशियाटिक सोसायटी

जर्नल आफ ओरियटल रिसर्च

फिलासफी ईस्ट एण्ड वेस्ट

रिव्यू आफ फिलासफी एण्ड रीलिजन

श्रीअरविंद पाठ मदिर एन्युवल

कल्याण वेदाताक

नई दुनिया श्रीअरविद विशेषाक

दार्शनिक

सदर्शन

□□□